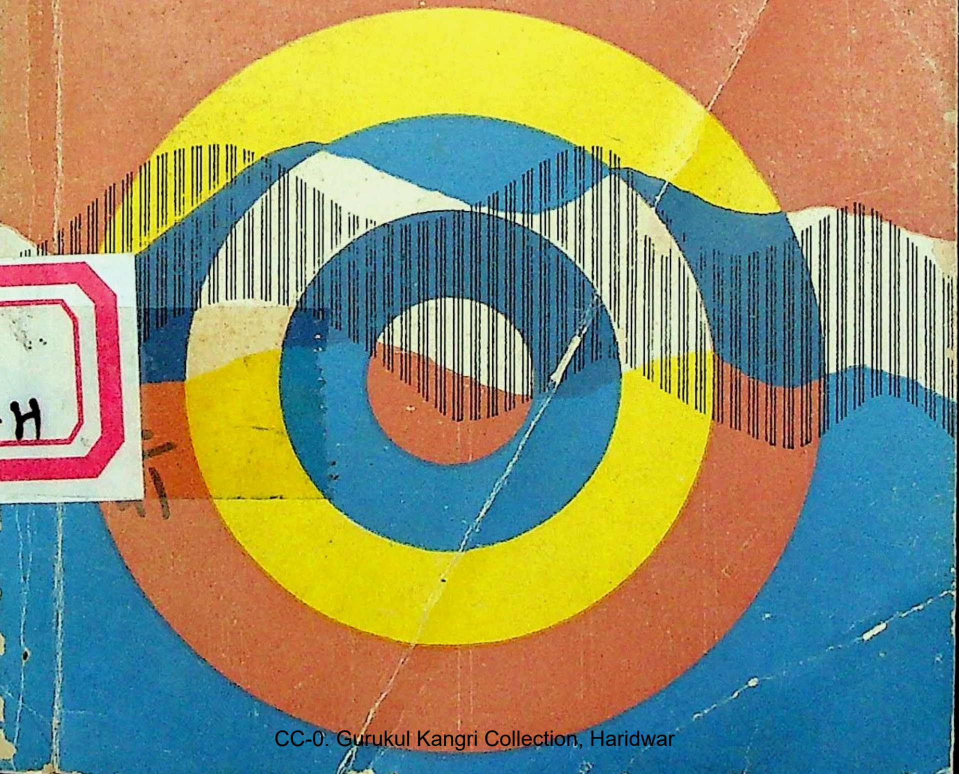
हिंदु समाज के पथभ्रष्टक तुलसीदास



हिंदू समाज के पथभ्रष्टक तुलसीदास

संपादक : विश्वनाथ

विश्व सुलभ साहित्य

विश्वविजय प्रकाशन

मुद्रक व प्रकाशक : विश्वविजय प्रा. लि.,
एम-12 कनाट सरकस, नई दिल्ली-1

विप्र 32.1579

तीसरा संस्करण

तुलसीदास और हिंदू समाज

किसी कृति का मूल्यांकन या तो इस दृष्टि से किया जाता है कि उस ने साहित्य को कहां तक आगे बढ़ाया या फिर इस दृष्टि से कि उस ने समाज को आगे बढ़ने में कहां तक सहायता दी. वैसे सच तो यह है कि ये दोनों दृष्टियां एक ही चीज के दो पहलू हैं, कोई अलगअलग चीजें नहीं. इन में अगर भेद है भी तो उसे केवल तकनीकी अंतर कहा जा सकता है क्योंकि साहित्य और समाज में आधारभूत भेद कुछ नहीं होता. भले ही कोई रचना 'स्वांतःसुखाय' लिखी जाए या 'बहुजनहिताय, लेकिन लिखी जा चुकने के बाद जब वह कृतिकार के पास से हट कर दूसरों के सामने जाती है, उसी क्षण से उस के प्रभाव की प्रक्रिया भी शुरू हो जाती है. और प्रभाव दो ही तरह के हो सकते हैं: एक तो यह कि पढ़ने वाला प्रेरणा पा कर अपने जीवन को उन्नत बना कर आगे बढ़ जाए, दूसरा यह कि निराश हो कर सब हथियार डाल दे, यानी पीछे लौटने का घातक मार्ग चुन ले. हतप्रभ हो कर वहीं का वहीं खड़ा रह जाना भी क्योंकि आगे बढ़ने से विमुख होना है, इसलिए उसे भी पिछड़ जाना या पीछे लौटना ही कहा जाएगा.

यहीं पर यह बात भी साफ कर देनी आवश्यक है कि संसार में कोई भी चीज चिरंतन नहीं होती. यह एक वैज्ञानिक तथ्य है. इसलिए कोई भी सत्य, कोई भी विचार, कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो हर वक्त एक जैसी ही रहे. हर चीज बदलती रहती है, क्षणक्षण बदलती रहती है. हर पल होने वाला परिवर्तन जब तक पुरानी स्थिति की सीमाओं के अंदर रहता है, तब तक उस में मात्रात्मक परिवर्तन (क्वांटीटेटिव चेंज) होते रहते हैं. फिर धीरेधीरे एक वक्त ऐसा आ जाता है जब वह परिवर्तन पुरानी सीमाएं लांघ जाता है. तब स्थिति मूल रूप से बदल जाती है और वह परिवर्तन अपने नए रूप में गुणात्मक परिवर्तन (क्वालिटेटिव चेंज) कहलाने लगता है. परिवर्तन की यही प्रक्रिया दुनिया की हर चीज पर लागू होती है.

इसी तरह पुराने युग और पुराने विचार नए जमाने और नए चिंतन में बदलते रहते हैं. मतलब यह कि विचार का अपना कोई अलग अस्तित्व नहीं होता, बल्कि भौतिक स्थितियां ही विचार को जन्म देती हैं. स्थितियां बदलती रहती हैं, विचार भी बदलते रहते हैं.

इस ज्ञान के अभाव में जो चिंतन चलता है उस के लिए आत्मा और परमात्मा की कल्पना करने के अलावा और कोई चारा नहीं रह जाता. इस चिंतन के अनुसार मनुष्य के विचार भौतिक परिस्थितियों द्वारा प्रभावित नहीं होते, पाप और पुण्य की शक्तियों में संघर्ष होता रहता है. जब मनुष्य पवित्र विचार ग्रहण कर लेता है तो संसार शुभ हो जाता है और धर्म का साम्राज्य स्थापित हो जाता है, और जब वह अधर्म की ओर बढ़ता है तो पाप की शक्तियां संसार पर अधिकार कर लेती हैं. ऐसे विचारकों के कथनानुसार इसी आधार पर सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग का चक्र चलता है और इन का मत है कि आत्मा और परमात्मा ही सत्य है तथा संसार झूठ और माया है.

शायद इसी कारण इस प्रकार के सभी ग्रंथों को मनुष्य द्वारा रचित न कह कर 'दैवी ग्रंथ' घोषित किया जाना जरूरी हो गया क्योंकि संसार तो झूठ और माया है और इस में रहने वाला लेखक भी वैसा ही होगा. तब फिर भला लोगों को उस की बातों पर विश्वास कैसे होगा! बहुत पुराने ग्रंथों की तो बात छोड़ ही दें, अभी केवल चार शती पूर्व अकबर बादशाह के राज्यकाल में लिखे गए ग्रंथ 'रामचरितमानस' के विषय में भी इस तरह की भ्रांतियां जोड़ दी गई हैं कि इस की रचना "साक्षात भगवान श्री गौरीशंकरजी की आज्ञा से हुई तथा इस पर उन्हीं भगवान ने 'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' लिख कर अपने हाथ से सही की...ऐसी दशा में इस अलौकिक ग्रंथ का जितना भी प्रचार किया जाएगा, जितना अधिक पठनपाठन एवं मननअनुशीलन होगा, उतना ही जगत का मंगल होगा—इस में तनिक भी संदेह नहीं है." (हनुमानप्रसाद पोद्दार)

'गोस्वामी तुलसीदासजी की संक्षिप्त जीवनी' शीर्षक के अंतर्गत गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस में बताया गया है कि तुलसीदास "तीर्थाटन करते हुए काशी पहुंचे. मानसरोवर के पास उन्हें काकभुशुंडिजी के दर्शन हुए... वहां उन्हें एक दिन एक प्रेत मिला, जिस ने उन्हें हनुमानजी का पता बतलाया. हनुमानजी से मिल कर तुलसीदासजी ने उन से श्री रघुनाथजी का दर्शन कराने की प्रार्थना की. हनुमानजी ने कहा, 'तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथजी के दर्शन होंगे.'

"इस पर तुलसीदासजी चित्रकूट की ओर चल पड़े. चित्रकूट पहुंच कर... एक दिन उन्हें राम के दर्शन हुए. उन्होंने देखा कि दो राजकुमार घोड़ों पर सवार हो कर धनुषबाण लिए जा रहे हैं. तुलसीदासजी उन्हें देख कर मुग्ध हो गए पर पहचान न सके. पीछे से हनुमानजी ने आ कर उन्हें सारा भेद बताया तो बड़ा पश्चात्ताप करने लगे. हनुमानजी ने उन्हें सांत्वना दी और कहा प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे. संवत 1607 की मौनी अमावस्या, बुधवार के दिन उन

के सामने भगवान श्रीराम पुन: प्रकट हुए. उन्होंने बालक रूप में तुलसीदास से कहा, 'बाबा! हमें चंदन दो'. हनुमानजी ने सोचा, कहीं वह इस बार भी धोखा न खा जाएं, इसलिए उन्होंने तोते का रूप धारण कर के यह दोहा कहा :

चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर,
तुलसीदास चंदन घिसें तिलक देत रघुवीर.

तुलसीदासजी उस अद्‌भुत छवि को निहार कर शरीर की सुधि भूल गए. भगवान ने अपने हाथ से चंदन ले कर अपने तथा तुलसीदासजी के मस्तक पर लगाया और अंतर्धान हो गए."

इसी जीवनी में आगे चल कर यह भी कहा गया है "कि संवत सोलह सौ अठारह में तुलसीदासजी हनुमानजी की आज्ञा से अयोध्या की ओर चल पड़े. उन दिनों प्रयाग में माघ मेला था...पर्व के छ: दिन बाद एक वटवृक्ष के नीचे उन्हें भारद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनि के दर्शन हुए...वहां से वह काशी चले आए और वहां...उन के अंदर कवित्वशक्ति का स्फुरण हुआ और वह संस्कृत में पद्य रचना करने लगे. पर दिन में वह जितने पद्य रचते, रात्रि में सब लुप्त हो जाते. यह घटना रोज घटती. आठवें दिन तुलसीदासजी को स्वप्न हुआ. भगवान शंकर ने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषा में काव्य रचना करो. तुलसीदासजी की नींद उचट गई. वह उठ कर बैठ गए. उसी समय भगवान शिव और पार्वती उन के सामने प्रकट हुए. तुलसीदासजी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया. शिवजी ने कहा, 'तुम अयोध्या में जा कर रहो और हिंदी में काव्य रचना करो. मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी.' इतना कह कर श्री गौरीशंकर अंतर्धान हो गए."

फिर अयोध्या आ कर संवत सोलह सौ एकतीस में तुलसीदास ने जिस दिन रामचरितमानस की रचना शुरू की उस दिन का वैसा ही योग बताया गया है जैसा कि त्रेतायुग में रामजन्म के दिन था. दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन में ग्रंथ की समाप्ति हुई, यानी ठीक वही दिन सिद्ध किया गया है जिस दिन राम का विवाह हुआ था.

उस के बाद "भगवान की आज्ञा से तुलसीदासजी काशी चले आए. वहां उन्होंने भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को रामचरितमानस सुनाया. रात को पुस्तक श्री विश्वनाथजी के मंदिर में रख दी गई. सवेरे जब वह खोली गयी तो उस पर लिखा हुआ पाया गया : सत्यं, शिवं, सुंदरम्. और नीचे भगवान शंकर की सही थी. उस समय उपस्थित लोगों ने 'सत्यं शिवं, सुंदरम्' की आवाज भी कानों से सुनी."

तुलसीदास की कुटिया के बाहर साक्षात राम और लक्ष्मण धनुषबाण लिए पहरा दिया करते थे. इस बात को सिद्ध करने के लिए पुस्तक की पांडुलिपि चुराने के प्रयास का प्रसंग जोड़ दिया गया है. मगर इसी प्रसंग में विरोधी बात यह आ गई है कि 'तुलसीदासजी ने अपने लिए भगवान को कष्ट हुआ जान कर

कुटी का सारा सामान लुटा दिया, पुस्तक अपने मित्र टोडरमल के यहां रख दी.' तो क्या टोडरमल की रखवाली रामलक्ष्मण की पहरेदारी से अधिक सशक्त थी? फिर एक प्रसंग यह आया है कि पंडितों ने परीक्षा लेने के लिए "भगवान विश्वनाथ के सामने सब से ऊपर वेद, उस के नीचे शास्त्र, शास्त्रों के नीचे पुराण और सब के नीचे रामचरितमानस रख दिया. मंदिर बंद कर दिया गया प्रातः काल जब मंदिर खोला गया तो लोगों ने देखा कि रामचरितमानस वेदों के भी ऊपर रखा हुआ है." इस प्रसंग द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि यह पुस्तक वेदों से भी श्रेष्ठ है.

ग्रंथ की रचना के साथ और इस के रचनाकार के संबंध में जो अविश्वसनीय बातें और चमत्कारी प्रसंग जोड़ दिए गए हैं वे सब पुस्तक के अंदर वर्णित सामग्री को देखते हुए कुछ विशेष आपत्तिजनक नहीं रह जाते क्योंकि इसी तरह की अविश्वसनीय बातें पूरे ग्रंथ में भरी पड़ी हैं. बुद्धि या तर्क से किसी चीज का कोई मेल नहीं, मन में जब भी जो कुछ आया कह डाला.

रही बात तुलसी की विचारधारा की, सो उस के बारे में यदि आज का चिंतनशील व्यक्ति यह कहे कि तुलसी ने हिंदुओं में अंधविश्वास, कायरपन, दब्बूपन और गुलामी की भावना पैदा करने में सब से अधिक योग दिया है तो ऐसा कहना अनुचित न होगा. इस बात का विश्लेषण करने के लिए यदि हम एक सिरे से ही रामचरितमानस को ले कर चर्चा करते चलें तो सुविधा रहेगी.

आत्महीनता की भावना को भक्त कवियों ने विशेष गुण माना है. तुलसीदास ने तो आत्महीनता के प्रदर्शन की कोई सीमा ही नहीं रखी. उन का हर ग्रंथ इस का प्रमाण है. 'विनयपत्रिका' में तो सिवा इस के और कुछ है ही नहीं. यदि किसी व्यक्ति में तनिक भी आत्मसम्मान है तो वह रामचरितमानस को पढ़ कर कुढ़े बिना नहीं रह सकता. मंगलाचरण में सभी देवीदेवताओं की वंदना कर के फिर 'पृथ्वी के देवता ब्राह्मणों की चरणवंदना' (बंदेउं प्रथम महीसुर चरना) करने के बाद सब को एक साथ संबोधित किया गया है कि मुझे अपने बुद्धिबल का भरोसा नहीं है, इसी लिए मैं सब से विनती करता हूं. पंक्तियां हैं:

निज बुधिबल भरोस मोहि नाहीं, तातें बिनय करउं सब पाहीं.

साथ ही इस बात का अहसास भी तुलसी को है कि इस सीमा तक का हीनभाव प्रदर्शन देख कर लोगबाग हंसेंगे. तभी तो झेंप उतारते हुए वह झट से कह डालते हैं कि दुष्टों के हंसने से मेरा हित ही होगा. (खल परिहास होई हित मोरा).

आत्मभर्त्सना के दौरे में तुलसी ने यहां तक कह डाला है कि जो रामजी के भक्त कहला कर लोगों को ठगते हैं, जो धन, क्रोध और काम के गुलाम हैं और जो धींगामस्ती करने वाले, धर्मध्वजी यानी धर्म की झूठी ध्वजा फहराने वाले, दंभी और कपट के धंधों का बोझ ढोने वाले हैं, संसार के ऐसे लोगों में सब से पहले मेरी गिनती है. देखिए, जरा इन पंक्तियों को :

बंचक भगत कहाइ राम के, किंकर कंचन कोह काम के.
तिन्ह महं प्रथम रेख जग मोरी, धींग धरमध्वज धंधक धोरी.

रामायण अगर अलौकिक ग्रंथ है और उस पर तथाकथित भगवान के हस्ताक्षर हुए थे तो तुलसी के भगवान को क्या इतना भी भौगोलिक ज्ञान नहीं कि धरती कछुए की पीठ और शेषनाग के फन पर नहीं खड़ी? (कमठ सेष सम घर बसुधा के) उन्हें क्या यह भी मालूम नहीं कि पृथ्वी घूमती है, अचल नहीं है? (बिस्व भार भर अचल छमा सी).

मुगल बादशाह की रियाया के रूप में बसते हुए तुलसी क्या यह भी नहीं जानते थे कि मुसलमान हुक्मरानों ने कितनी बेरहमी के साथ हिंदुओं के कत्लेआम करवाए, लूटपाट की, बलात्कार किए और जजिया कर लगाए. तुलसी तो अभी तक यही मानते चले जा रहे थे कि राजा ईश्वर के अंश से उत्पन्न होता है (ईश अंश भव परम कृपाला). इतना ही नहीं बल्कि वह अपने युग के ज्ञान-विज्ञान को नकारने का प्रयास करते हैं कि कलियुग में न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है (नहिं कलि करम न भगति बिबेकू). जब ज्ञान न होने का उलाहना देने वालों के ज्ञान का यह हाल हो तो फिर लुटतीपिटती और हर जुल्म सहती हुई जनता अपने वक्त के राजा के खिलाफ बगावत करने की प्रेरणा किन से पाएगी? तुलसी के अनुसार राजा तो ईश्वर का अंश था इसलिए ईश्वर के विरुद्ध विद्रोह करने की सामर्थ्य भला किस में हो सकती थी

कवि ने खुद अनेक स्थलों पर कहा है कि रामचरितमानस की रचना शिवजी ने की है : "रामचरितमानस एहि नामा...बिरचेउ संभु सुहावन पावन." अतः प्रभु की वाणी को तो अंध भक्त की तरह मानना ही चाहिए :

मातपिता गुरु प्रभु के बानी, बिनहि बिचार करिअ सुभ जानी.

और तुलसी के प्रभु ने जो मनुष्य के रूप में अवतार भी लिया तो मनुष्यों के लिए नहीं, बल्कि ब्राह्मण, गऊ, देवता और संतों के लिए (बिप्र, धेनु, सुर, संत हित, लीन्ह मनुज अवतार) और उन्हें इतना भी ज्ञान नहीं कि सूर्य स्थिर है, चलता नहीं (कौतुक देख पतंग भुलाना, अर्थात यह कौतुक देख कर सूर्य भी अपनी चाल भूल गया). राम जब पैदा हुए तब महीना भर दिन ही रहा.' सूर्य अपने रथ सहित वहीं रुक गए और महीने भर बाद फिर से गुणगान करते हुए चले (मास दिवस कर दिवस ...रथ समेत रवि थाकेउ...दिनमान चले करत गुन गाना).

यों ऐसे कवि के लिए कुछ भी असंभव नहीं रह जाता जिसे त्रेतायुग के व्यक्ति कलियुग में भी आ कर मिलते हों और वह खुद भी त्रेता में पहुंच सकता हो. जब राम, लक्ष्मण और सीता वन को जाते समय यमुना पार उतरते हैं, "उसी अवसर पर वहां एक तपस्वी आया, जो तेज का पुंज, छोटी अवस्था का और सुंदर था. उस की गति कवि नहीं जानते, वह तो वैरागी वेष में था और मन, वचन तथा कर्म से श्री रामचंद्रजी का प्रेमी था." इन पंक्तियों को

पढ़ जाइए :

तेहि अवसर एक तापसु आवा, तेज पुंज लघु वयस सुहावा,
कवि अलखित गति वेषु बिरागी, मन, क्रम, बचन राम अनुरागी.

तुलसी ने जातिवाद को विशेष बढ़ावा देना चाहा है. इस का कारण यह था कि मुसलमानों के काल तक आतेआते हिंदुओं में जाति भावना की बेड़ियां ढीली होने लगी थीं. फलस्वरूप तथाकथित श्रेष्ठतम जाति (ब्राह्मण) का थोपा गया मान घटने लगा था. मुफ्तखोरों की इस जाति का एकमात्र काम दूसरों की कमाई पर बढ़िया से बढ़िया खाना और उच्चता के नशे में मस्त झूमते रहना था. अपना धंधा बनाए रखने के लिए जरूरी था कि लोगों की भावनाएं उभार कर फिर से उन्हें जातिवाद की संकीर्णता में जकड़ा जाता. इसी लिए तुलसी ने कहा है कि यद्यपि जगत में अनेक प्रकार के दारुण दुख हैं तथापि जाति अपमान सब से बढ़ कर कठिन है :

यद्यपि जग दारुन दुख नाना, सब ते कठिन जातिअपमाना.

इसी लिए बरात का स्वागत भी जनक ने जातिभेद के अनुसार करवाया. उत्तम, मध्यम, नीच और लघु स्त्रीपुरुषों को अपनेअपने योग्य स्थान पर बैठाया गया. (उत्तम, मध्यम, नीच, लघु, निजनिज थल अनुहारि).

मंथरा को कोसते समय भी उसे 'नीच जाति वाली' कह कर गाली देना कवि को आवश्यक लगा (करई बिचारु कुबुद्धि कुजाति) और साथ ही यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया गया कि नीच जाति के व्यक्ति कुबुद्धि भी होते हैं. केवल वही नहीं, तुलसी की दृष्टि में नीच जाति की सभी स्त्रियां 'पत्थर के कीड़े जैसे कठोर स्वभाव की' होती हैं.

वन हित कोल किरात किसोरी, रचीं विरंचि विषम सुख भोरी.

इस के अलावा यह भी कि नीच जाति की रचना भी भगवान ने की है और उन्हें जंगलों में रखना भी प्रभु द्वारा ही निश्चित किया हुआ है. मतलब यह कि जंगलों में रहने के लिए ही उन्हें रचा गया था, इसी कारण उन का स्वभाव ऐसा कठोर बनाया गया है. इसी प्रकार निषाद जाति का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि यह जाति 'लोक और वेद दोनों में सब प्रकार से नीच मानी जाती है' और इस की 'छाया के छू जाने से भी स्नान करना होता है.'

लोक बेद सब भांतिहिं नीचा, जासु छांह छुइ लेइउ सींचा.

भरत जब अयोध्यावासियों को साथ ले कर वन में राम से मिलने जाते हैं तब वन में रहने वाली कोल, किरात और भील आदि जातियों के लोग अयोध्यावासियों का सत्कार करते हैं. बढ़िया से बढ़िया शहद, कंदमूल, फल आदि खाने को देते हैं. उन के इस प्रेममय अतिथिसत्कार का बदला जब अयोध्यावासी दाम चुका कर देना चाहते हैं तो वे अपमानित अनुभव कर मना करते हुए कह उठते हैं, "मानत साधु प्रेम पहिचानी" मतलब यह कि साधु लोग प्रेम को पहचान कर उस का सम्मान करते हैं, अर्थात आप साधु हैं, आप हमारे प्रेम को देखिए,

दाम दे कर या वस्तुएं लौटा कर हमारे प्रेम का तिरस्कार न कीजिए.

मगर कवि को जब इतने से भी सब्र नहीं होता तो वह उल्टे उन्हीं के मुंह से अपनी जाति की बुराई कराने लगते हैं, "हमारी तो यही बड़ी भारी सेवा है कि हम आप के कपड़े और बरतन नहीं चुरा लेते. हम लोग जड़ जीव हैं, जीवों की हिंसा करने वाले हैं, कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति हैं. हमारे दिनरात पाप करते ही बीतते हैं. तो भी न तो हमारी कमर में कपड़ा है और न पेट ही भरते हैं. हम में स्वप्न में भी कभी धर्म बुद्धि कैसी! यह सब तो श्री रघुनाथजी के दर्शन का ही प्रभाव है." देखिए निम्न पंक्तियां :

यह हमार अति बड़ि सेवकाई, लेहिं न बासन बसन चुराई.
हम जड़ जीव जीवगनघाती, कुटिल कुचाली कुमति कुजाती.
पाप करत निसिबासर जाहीं, नहिं कटि पट नहिं पेट अघाहीं
सपनेहुं धरमबुद्धि कस काऊ, यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ.

यों जातिभावना पर तो रामचरितमानस का पूरा कथानक ही टिका हुआ है. रामरावण युद्ध भी जातियुद्ध ही है. निशाचर जाति के लोग अनार्य थे जो आर्यों की अधीनता स्वीकार करना नहीं चाहते थे. फलस्वरूप तनातनी बनी रहती थी, लड़ाइयां भी होती ही रहती थीं और छिटपुट वारदातें भी. मगर आर्यों के पक्षधर कवियों ने अनार्यों को अछूत, नीच, दानव, राक्षस आदि नामों से पुकारना शुरू कर दिया था. वरना राक्षस भी मनुष्य ही थे, मानव से परे कोई अलग नस्ल के नहीं थे. जिस प्रकार 'कुरान' में विश्वास न रखने वालों को काफिर कह दिया जाता है, ठीक उसी प्रकार आर्य सभ्यता और वेदों की प्रभुता स्वीकार न करने वालों को आर्यों ने दानव या राक्षस कहना शुरू कर दिया था. आर्य शासकों ने उत्तर भारत पर हुकूमत जमा लेने के बाद अपने प्रचारक ऋषिमुनियों को दक्षिण भारत में प्रचार करने के लिए भेजना शुरू किया तो दक्षिण भारतीय जातियां उस प्रचार का विरोध करने लगी थीं. इसी विरोध के परिणामस्वरूप कई बार प्रचारक लोग मुठभेड़ों में मारे भी जाते थे. ऐसी ही किसी मुठभेड़ में मारे गए आर्यों के अस्थिपिंजर वन में पड़े देख कर राम ने मुनियों से पूछा होगा (प्रसंग अरण्य कांड का है) :

पुनि रघुनाथ चले बन आगे, मुनिबर वृंद बिपुल संग लागे.
अस्थि समूह देखि रघुराया, पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया.

पूछे जाने पर मुनियों ने कहा, "हे स्वामी! आप तो सर्वदर्शी और अंतर्यामी हैं. जानते हुए भी हम से कैसे पूछ रहे हैं? राक्षसों के दलों ने सब मुनियों को मार डाला है. यह सुनते ही राम की आंखों में पानी उतर आया, यानी अपनी जाति के प्रचारकों की अनार्यों द्वारा यह दुर्गति हुई देख कर जातिअपमान का बदला लेने की भावना जोर मार उठी." देखिए :

जानतहूं पूछिअ कस स्वामी, समदरसी तुम्ह अंतरजामी,
निसिचर निकर सकल मुनि खाए, सुनि रघुबीर नयन जल छाए.

फिर इसी जातिअपमान का बदला लेने के जोश में 'राम ने भुजा उठा कर प्रण किया कि मैं पृथ्वी को निशाचरों से रहित कर दूंगा.' (निसचर हीन करऊं महि, भुज उठाइ पन कीन्ह).

रावण भी इन्हीं निशाचरों में से था और अनार्यों का एक शक्तिशाली राजा था. वह मानव था, मानव के अलावा और किसी नस्ल का नहीं था. इस बात का प्रमाण भी स्वयं तुलसी के रामचरितमानस से ही दिया जा सकता है. पहला प्रमाण तो रावण द्वारा सीता स्वयंवर में भाग लेना ही है. मनुष्यों को ही तो स्वयंवर में न्योता गया होगा! इस के अलावा एक और बड़ी बात यह कि तुलसी ने खुद माना है कि रावण उत्तम कुल का है, ऋषि पुलस्त्य का पौत्र है. वह कहते हैं, "उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती."

अब सवाल यह है कि जब उस के पितामह को तो उत्तम कहा गया है और उन के साथ 'रिषि' शब्द लगाया गया है तो फिर उन्हीं ऋषि पुलस्त्य का वंशज राक्षस या दानव क्यों कर हो गया! सीधी बात है कि पुलस्त्य ने आर्यों की अधीनता स्वीकार ली थी, इसलिए उसे 'उत्तम' और 'रिषि' की उपाधि दे दी गई, जब कि रावण ने रघुवंश के अधीन होना स्वीकार नहीं किया था, इसलिए उसे 'राक्षस' और 'दानव' कह कर गालियां दी गईं. हनुमान जब राम का दूत बन कर लंका में जाता है तो रावण से यही बात कहता भी है, "तुम राम के चरणकमल को हृदय में धारण कर लो, अर्थात उन की अधीनता स्वीकार कर लो और लंका का अचल राज्य करो. ऋषि पुलस्त्य का यश निर्मल चंद्रमा के समान है, उस चंद्रमा में तुम कलंक न बनो, अर्थात जिस प्रकार पुलस्त्य ने आर्यों की दृष्टि में यश अर्जित किया था, उसी प्रकार तुम भी करो." जिस चौपाई का यह भावार्थ है, वह इस प्रकार है:

राम चरन पंकज उर धरहू, लंका अचल राज तुम्ह करहू.
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका, तेहि ससि महुं जनि होहु कलंका.

इस से स्पष्ट होता है कि आर्य जाति से राम का अभिप्राय केवल यही था कि किसी तरह लंका का अनार्य राजा अधीनता स्वीकार कर ले. फिर चाहे अधीन होने के बाद वह लंका पर अचल राज्य करता रहे, उन्हें कोई आपत्ति नहीं.

लेकिन रावण बलवान राजा था, उस की प्रजा हर दृष्टि से संतुष्ट और समृद्ध थी. आर्यों में सर्वाधिक धनाढ्य कुबेर तक को रावण नीचा दिखा चुका था और कुबेर का पुष्पक विमान तक जीत कर ले गया था. लंका में उस की प्रजा कितनी सुखी थी, वह तो इसी बात से प्रकट होता है कि उसे 'सोने की नगरी' कहा जाता था. वहां कोई गरीब नहीं था. इस तथ्य को खुद तुलसीदास ने भी स्वीकार किया है कि योग्यता के अनुसार घरों को बांट कर रावण ने सब राक्षसों को सुखी किया:

जेहि जस जोग बांटि गृह दीन्हे, सुखी सकल रजनीचर कीन्हे.

लंका पर आर्य राजाओं की ललचाई नजर का कारण भी वहां की समृद्धि ही थी. तुलसी ने लंका का ब्योरा देते हुए उसे स्वर्गलोक की अमरावतीपुरी यानी इंद्र की नगरी और नागकुल की भोगावतीपुरी से भी अधिक सुंदर और बांकी नगरी बताया है:

भोगावति जसि अहिकुल बासा, अमरावति जसि सक्रनिवासा.
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका, जग बिख्यात नाम तेहि लंका.

यही लंका पहले आर्यों ने अनार्यों पर हमला कर के जीत ली थी और कुबेर वहां का राजा बन बैठा था. लेकिन बाद में रावण नामक बलवान अनार्य ने सेना संगठित कर के अपने पितामहों द्वारा हारा हुआ राज्य फिर से प्राप्त कर लिया था. इस बात के प्रमाण के लिए भी कहीं और जाने की जरूरत नहीं है, रामचरितमानस में ही इस का उल्लेख है:

हरि प्रताप जेहि कलप जो जातुधानपति होई,
सूर प्रतापी अतुल बलदल समेत बस सोई.

(भगवान की प्रेरणा से जिस कल्प में जो राक्षसों का राजा होता है, वही शूरवीर, प्रतापी, अतुल बलवान अपनी सेना सहित उस पुरी में बसता है)

रहे तहां निसिचर भट भारे, ते सब सुरन्ह समर संघारे.
अब तंह रहहिं सक्र के प्रेरे, रच्छक कोटि जच्छपति केरे.

(पहले वहां बड़ेबड़े योद्धा निशाचर लोग रहते थे. देवताओं यानी आर्य जाति के लोगों ने उन सब को युद्ध में मार डाला. अब इंद्र की प्रेरणा से वहां कुबेर के एक करोड़ रक्षक यक्ष रहते हैं.)

दसमुख कतहुं खबरि असि पाई, सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई.
देखि बिकट भट बड़ि कटिकाई, जच्छ जीव ले गए पराई.

(रावण को खबर मिली तो उस ने सेना सजा कर किले को जा घेरा. उस बड़े विकट योद्धा और उस की बड़ी सेना को देख कर यक्ष लोग अपने प्राण बचा कर भाग गए)

इस प्रकार रामचरितमानस से ही प्रमाणित होता है कि रावण ने आर्यों द्वारा हथिया ली गई नगरी को जीत कर वहां अपनी राजधानी स्थापित की. दरअसल इसी बात की जलन आर्यों को थी जिसे उतारने के लिए राम ने लंका पर चढ़ाई की और बहाना बना लिया सीताहरण का. यों सच यह है कि सीताहरण होने के लिए भी राम खुद ही जिम्मेदार हैं. रावण की बहन का अकारण अपमान करना और उस के नाककान काट लेना ही तो सीताहरण का तात्कालिक कारण बना, वरना एक औरत को प्रणय निवेदन करने पर मारमार के अंगहीन कर डालना कहां की मर्यादा थी और कहां की बहादुरी! राम तो रावण के साथ लड़ाई करने का बहाना चाहते थे, सो बहाना इस तरह खुद पैदा कर लिया.

इस प्रकार रामरावण युद्ध सीधे तौर पर आर्य और अनार्य जातियों के बीच हुए युद्ध का प्रतीक था. रावण की राक्षस के रूप में कल्पना कर के कवि

ने जनसाधारण के अंधविश्वास को ही बढ़ावा दिया है.

रामचरितमानस अंधविश्वासों को प्रश्रय देने में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है. शिवविवाह के अवसर पर शिवजी के शृंगार का वर्णन ही देख लें: 'कुंडल कंकन पहिरे व्याला' (सांपों के कुंडल और कंकण पहने), 'ससि ललाट सुंदर सिर गंगा, नयन तीनि उपबीत भुजंगा. गरल कंठ उर नर सिर माला...' (मस्तक पर चंद्रमा, सिर पर गंगा, तीन नेत्र, सांपों का जनेऊ, गले में विष और छाती पर नरमुंडों की माला.)

अब जरा शिव के बरातियों का हुलिया तो देखिए:

भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें
खर स्वान सुअर सृगाल मुख गन बेष अगनित को गनै.
बरनत नहिं बनै.

(भयंकर गहने पहने, हाथ में कपाल लिए हैं और सब के शरीर पर ताजा खून मला हुआ है. गधे, कुत्ते, सुअर और सियार के से उन के मुख हैं. गणों के अनगिनत वेषों को कौन गिने. बहुत प्रकार के प्रेत, पिशाच और योगियों की जमातें हैं, उन का वर्णन करते नहीं बनता.)

क्या इस प्रकार के बीभत्स और भयानक देवताओं के प्रति जनता के मन में श्रद्धा या भक्ति सहज रूप में उत्पन्न हो सकती है? वास्तविक स्थिति है भी यही कि मानवेतर किसी शक्ति के प्रति मनुष्यों को आस्थावान बनाने के लिए उस शक्ति का भय और आतंक जमाया जाता है ताकि लोग डर कर उसे मानने लगें. भय का ही दूसरा नाम भगवान है और भय पैदा करने के लिए इस प्रकार के भयंकर चमत्कारी चित्रणों द्वारा अंधविश्वास जगाना ही असल काम होता है जिसे तुलसी ने बड़ी खूबी के साथ निभाया है. इस प्रकार के अविश्वसनीय चित्रणों के विरुद्ध कोई आवाज न उठा सके या तर्कबुद्धि द्वारा इन बातों पर अविश्वास या शंका का प्रश्न न उठा दे, इस चीज का इंतजाम करने के लिए दलील दी जाती है कि 'राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी.'

जब विष्णु की चार भुजाएं, ब्रह्मा के चार मुख, शिव का विकट वेष और पांच मुख हैं (विष्णु चारि भुज विधि मुख चारि, विकट वेष मुख पंच पुरारि) तब रावण के ही दस मुख वर्णित कर देने से वह राक्षस या दानव क्यों कर हो गया? वास्तव में यह सारी की सारी मनगढ़ंत उलटीसीधी अटकलें केवल चमत्कार प्रदर्शन हैं और जनता को अंधविश्वासी तथा मूर्ख बनाए रख कर अपना हलवापूरी पाते रहने के ढंग हैं.

कोई इन मुफ्तखोरों को दान देते समय आनाकानी या कंजूसी न करे, इसी लिए रामचरितमानस में दान की महिमाएं बखानी गई हैं और मांगने वालों को मना कर देना निकृष्ट व्यवहार घोषित किया गया है. साथ ही जो लोग किसी भी मंगते को 'नहीं' कहते ही नहीं, ऐसे व्यक्तियों को 'बिरले' और 'श्रेष्ठ' पुरुष की उपाधि दी गई है:

मंगल लहहिं न जिन्ह कै नाहीं, ते नरबर थोर जग माहीं.

"इस के अलावा जितने भी छोटेबड़े अंधविश्वास आज हिंदू समाज में नजर आते हैं, उन्हें पैदा करने या बढ़ावा देने में भी तुलसी की रामायण का बहुत बड़ा हाथ है. उदाहरण के लिए यदि हिंदू समाज में पुरुष का दायां अंग और स्त्री का बायां अंग फड़कना शुभ माना जाता है तो इस के अनेक प्रमाण रामचरितमानस में उपलब्ध हैं: "फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता" (हे भाई, सुनो, मेरे मंगलदायक दाहिने अंग फड़क रहे हैं.) "मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे." (सुंदर मंगलों के मूल उन के—सीता के—बाएं अंग फड़कने लगे.)

शकुनअपशकुन संबंधी भी जितने अंधविश्वास हिंदुओं में पाए जाते हैं, उन सब की जड़ भी इसी रामायण में है: "होहिं सगुन सुंदर सुभदाता." (सुंदर शुभदायक शकुन हो रहे हैं.) फिर इन शकुनों का ब्योरा दिया गया है: "दाहिनी ओर कौवा सुंदर खेत में शोभा पा रहा है. नेवले के दर्शन भी सब ने किए. तीनों प्रकार की हवा अनुकूल दिशा में चल रही है. श्रेष्ठ यानी सुहागिन स्त्रियां भरे हुए घड़े और गोद में बालक लिए चली आ रही हैं. लोमड़ी फिरफिर दिखाई दे जाती है. गाएं सामने खड़े बछड़ों को दूध पिला रही हैं. हिरनों की टोली बाईं ओर से घूम कर दाहिनी ओर को आई, मानो सभी मंगलों का समूह दिखाई दिया. सफेद सिर वाली चील विशेष रूप से कल्याण कर रही है. श्यामा बाईं ओर सुंदर पेड़ पर दिखाई पड़ी. दही, मछली और दो विद्वान ब्राह्मण हाथ में पुस्तक लिए सामने आए." जरा निम्न पंक्तियां पढ़िए:

दाहिन काग सुखेत सुहावा, नकुल दरसु सब काहू पावा.
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी, सघट सबाल आव बर नारी.
लोवा फिरिफिरि दरसु देखावा, सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा.
मृगमाला फिरि दाहिनि आई, मंगलगन जनु दीन्हि देखाई.
छेम करी कह छेम बिसेषी, स्यामा बाम सुतरु पर देखी.
सनमुख आयउ दधि अरु मीना, कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना.

जब राम की ब'रात चढ़ने के समय इस तरह के शकुन होने से मंगल हुआ दिखाया गया है तो फिर हिंदू परिवार में उसी प्रकार का तामझाम बटोर कर रखा जाने का अंधविश्वास अगर घर कर गया है तो इस के लिए वही तुलसी उत्तरदायी हैं जो हर इस तरह के प्रसंग में ऐसीऐसी टिप्पणियां देते चलते हैं: "सभी मंगलमय, कल्याणमय और मनोवांछित फल देने वाले शकुन सच्चे होने को एक साथ ही हो गए." पंक्तियां इस प्रकार हैं:

मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार,
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार.

अंधविश्वासों की ही कड़ी में ज्योतिष भी आती है जिसे सच्चा सिद्ध करने के लिए अनेक प्रकार की उक्तियों से काम लिया गया है. उदाहरणार्थ, राम, लक्ष्मण और सीता जब वन में जा रहे हैं तो उन्हें रास्ते में मिले कुछ यात्री

कहते हैं:

राज लखन सब अंग तुम्हारें, देखि सोचु अति हृदय हमारें.
मारग चलहु पयादेहि पाएं, ज्योतिषु झूठ हमारें भाएं.

(तुम्हारे सब अंगों में राजचिह्न देख कर हमारे हृदय में बड़ा सोच हो रहा है. तुम लोग रास्ते में पैदल ही चल रहे हो, इस से क्या हम यह समझें कि ज्योतिष शास्त्र झूठा ही है?)

स्पष्ट है कि भले ही वे तपस्वी वेश में थे मगर ज्योतिषशास्त्र के अनुसार राजाओं की शरीररचना ही कुछ अलग तरह की होती है. इस भिन्न शरीर-रचना को पहचान कर यात्रियों को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि ये राजपुरुष पैदल ही क्यों चल रहे हैं? इस प्रकार तुलसी ने ज्योतिषशास्त्र को सच्चा सिद्ध कर दिया क्योंकि राम और लक्ष्मण तो वास्तव में राजपुरुष ही थे.

फिर स्थानस्थान पर इस प्रकार के अंधविश्वासमूलक कर्मकांडीय उपदेश भी मानस में भरे पड़े हैं कि जो लोग अनेक प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं और ब्राह्मणों को भोजन करा कर बहुत दान देते हैं (तरपन होम करहिं बिधि नाना, बिप्र जेवांइ देहिं बहु दाना), उन लोगों के मनमंदिरों में सीता और राम दोनों बसते हैं. (तिन्ह के मनमंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ.)

रामायण के कथानक का ढांचा ही तुलसी ने अंधविश्वासों की नींव पर खड़ा किया हुआ है. लगभग सभी महत्त्वपूर्ण घटनाओं के कारण मुनियों के शाप या वरदान ही रखे गए हैं. उदाहरण के लिए दशरथ को पुत्रवियोग (यानी राम-वनवास) तपस्वी (यानी श्रवणकुमार) के अंधे पिता के शाप की वजह से हुआ. और तो और राम का जन्म ही शृंगी ऋषि के वरदानस्वरूप हुआ. इसी प्रकार रावण की मृत्यु का कारण भी शाप ही बतलाया गया है. इस के अलावा और भी बेशुमार छोटीबड़ी घटनाएं शाप या वरदान के चमत्कार दिखाने के लिए ही घटाई गई हैं. उदाहरण के लिए अहिल्या का प्रसंग, जटायु का प्रसंग, काक-भुशुंडि का प्रसंग आदि.

जहांतहां संस्कारों आदि के समय तरहतरह के दानपुण्य का वर्णन कर के तुलसी ने ब्राह्मणों की भिक्षावृत्ति को उन का धार्मिक अधिकार और अन्य वर्णों का कर्तव्य सिद्ध किया है. रामायण में कहा गया है कि पिता का दाहकर्म करने के बाद भरत ने विधिपूर्वक स्नान कर तिलांजलि दी. फिर वेद, स्मृति और पुराण, सब का मत निश्चय कर के उन के अनुसार भरत ने पिता का दशगात्र-विधान यानी दस दिनों का कृत्य किया:

एहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्ही, बिधिवत न्हाई तिलांजुलि दीन्ही.
सोधि स्मृति सब बेदपुराना, कीन्ह भरत दसगात बिधाना.

इस प्रकार के विधानों के कारण आज हिंदू परिवार कितनेकितने कर्जों के बोझ से लदे जाते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है. पुरोहित और पंडे जैसेजैसे हुक्म चलाते रहते हैं, उन्हें पूरा किए बिना यजमान की जान नहीं छूटती. उन

32/1

भोलेभाले लोगों के सामने आतंक यह रहता है कि जब रघुकुल के महाराजाओं को भी अपने पुरोहितों की मांग और आज्ञाओं का उल्लंघन करने का साहस नहीं हुआ था तो, हो न हो, इस में अवश्य कुछ बात होगी ही. और आज के कथावाचक पंडित भी रामायण की कथा बांचते समय इस प्रकार के प्रसंग पर विशेष समय और श्रम लगा कर व्याख्या करते हैं: "मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने जहां जैसी आज्ञा दी, वहां भरतजी ने सब वैसा ही हजारों प्रकार से किया. शुद्ध हो जाने पर सब दान दिए. गौएं तथा घोड़े, हाथी आदि अनेक प्रकार की सवारियां दीं. सिंहासन, गहने, कपड़े, अन्न, पृथ्वी, धन और मकान भरतजी ने दिए. भूखे ब्राह्मण दान पा कर परिपूर्ण हो गए यानी उन की सारी मनोकामनाएं अच्छी तरह से पूरी हो गईं." देखिए यह वर्णन:

जहं जस मुनिवर आयसु दीन्हा, तहं तस सहस भांति सबु कीन्हां.
भए बिसुद्ध दिए सब दाना, धेनु बाजि गज बाहन नाना.
सिंघासन भूषन बसन, अन्न धरनि धन धाम,
दिए भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम.

और किसी भी बात के औचित्यअनौचित्य पर विचार करने लायक तो तुलसी ने आम आदमी को छोड़ा ही नहीं क्योंकि 'धर्मगुरुओं' की आज्ञा को न मानने से धर्म के चले जाने का भय दिखाया गया है और सिर पर पाप का भार चढ़ने का आतंक बैठाने का भी सारा प्रबंध 'ब्राह्मणश्रेष्ठ तुलसीदास' कर गए हैं.

उचित कि अनुचित किएं बिचारू, धरम जाइ सिर पातक भारू.

सहज स्वाभाविक ढंग से जो छींक या जमुहाई आती है, उस तक को शकुन-अपशकुन के साथ जोड़ कर अंधविश्वासों का जो बोझ तुलसी ने हमारे पूर्वजों की पीठ पर लाद दिया था, उसे हम अभी तक ढोए चले जा रहे हैं. उदाहरणार्थ मिलाप के लिए सेना सहित आते हुए भरत को देख कर राम और लक्ष्मण मुकाबला करने को तैयार हो जाते हैं, तभी बाईं ओर से किसी को छींक आती है:

"एतना कहत छींक भई बाएं, कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए."

(इतना कहते ही बाईं तरफ छींक हुई. शकुन विचार करने वालों ने कहा कि खेत सुंदर है यानी जीत निश्चित है.)

तभी एक बूढ़े ने शकुन विचार कर राम से कहा, "भरत से मिल लें तो उन से लड़ाई नहीं होगी. भरत रामजी को मनाने आ रहे हैं. शकुन ऐसा कह रहा है कि विरोध नहीं है." देखिए ये पंक्तियां :

बूढ़ एक कह सगुन बिचारी, भरतहि मिलिअ न होइहि रारी.
रामहि भरतु मनावन जाहीं, सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं.

इसी प्रकार जमुहाई लेते समय 'रामराम' कहने का उपदेश भी रामचरितमानस में ही दिया गया है:

रामराम कहि जे जमुहाहीं, तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं.

(जो लोग 'रामराम' कह कर जमुहाई लेते हैं, उन के सामने पाप आ ही

नहीं सकते.)

पुरुष के दाहिने और स्त्रियों के बाएं अंग फड़कने को आज तक भी रूढ़िवादी हिंदू शकुन मानते हैं और पुरुष के बाएं या स्त्रियों के दाएं अंग फड़कने को अशुभ समझते हैं. इस के विपरीत सच यह है कि नाड़ियों में रक्तप्रवाह के कारण ही अंगों में फड़कन होती है, किसी शकुनअपशकुन के साथ इस का कोई संबंध नहीं. मगर क्योंकि तुलसी ने बारबार इसे शकुनोंअपशकुनों में गिनाया है इसलिए झूठ कैसे हो सकता है! देखिए तुलसी का वर्णन:

मंगल सगुन होहिं सब काहू, फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू.

अंधी राजभक्ति की प्रेरणा भी तुलसी की ही देन है. यों तो पूरी रामायण इस का प्रमाण है मगर एक खास नमूना पेश है:

नित पूजत प्रभु पांवरी प्रीति न हृदयं समाति,
मांगिमांगि आयसु करत राजकाज बहु भांति.

(भरत नित्य प्रति राम की पादुकाओं का पूजन करते हैं, हृदय में प्रेम समाता नहीं. पादुकाओं से आज्ञा मांग कर वह सब प्रकार से राजकाज करते हैं.)

जब सिंहासन पर टिकी काठ की खड़ाऊं आज्ञा देदे कर राजकाज चलवा सकती है तो स्पष्ट है कि राजा चाहे जैसा काठ का उल्लू हो वह हुकूमत कर सकता है और उन का नित्य प्रति पूजन करना ही प्रजा का धर्म है, यानी उस की अवमानना का प्रश्न ही नहीं उठता. क्या इस तरह के प्रसंग राजा के प्रति अंधभक्ति को प्रोत्साहित नहीं करते? और क्या तत्कालीन (यानी तुलसी के काल की) परिस्थितियों में इस प्रकार का प्रचार जनद्रोह नहीं कहा जा सकता? क्योंकि यदि तुलसी सरीखे उपदेशकों ने जनता को नपुंसक न बना डाला होता तो कोई कारण नहीं था कि हिंदू प्रजा उन विदेशी राजाओं के खिलाफ बगावत कर के उन्हें देश से बाहर न निकाल डालती!

सुबहसुबह बंदर का मुंह देख लेने से दिन भर भोजन नसीब न होने का जो अंधविश्वास हिंदुओं में प्रचलित है, उस की पुष्टि तुलसी ने स्वयं हनुमान के मुंह से कराई है:

प्रात लेइ जो नाम हमारा तेहि दिन ताहि न मिले अहारा.

चौथ के चांद को मनहूस माना जाने का उपदेश भी तुलसी से ही प्राप्त हुआ है:

जो आपन चाहे कल्याना, सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना.
सो परनारि लिलार गोसाईं, तजउ चउथि के चंद कि नाईं.

(जो मनुष्य अपना कल्याण, सुंदर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो, वह, हे स्वामी, परस्त्री के ललाट को चौथ के चांद की तरह त्याग दे.)

इसी प्रकार पदार्थों के मानवीय रूपों में अंधविश्वास भी तुलसी की ही देन है. राम के क्रोध से घबरा कर समुद्र का भयभीत हो राम के चरण पकड़ना

ग्रौर क्षमा मांगना, नदियों ग्रौर पहाड़ों को मानवीय पात्रों की तरह दिखाना, पशुपक्षियों का मानवीयकरण ग्रादि ग्रनेक प्रसंग इस बात के प्रमाणस्वरूप देखे जा सकते हैं. कहीं से भी रामायण खोल लें, एक न एक ऐसा प्रसंग मिल ही जाएगा.

चांद के बारे में जो तरहतरह के ग्रंधविश्वास हिंदुग्रों में पाए जाते हैं, उन का ग्राधार भी रामचरितमानस में ही मिल जाता है. राम ने एक दिन ग्रपने साथियों से पूछा कि चंद्रमा में जो कालापन है, वह क्या है? इस पर सुग्रीव ने कहा कि चांद में पृथ्वी की छाया दिखाई दे रही है. किसी ग्रौर ने कहा कि चांद को राहु ने पीटा था, सो उसी चोट का निशान है. कोई बोला, "जब ब्रह्मा ने रति (कामदेव की पत्नी) का मुख बनाया तो उस ने चंद्रमा का सार भाग निकाल लिया था." इन सारी बातों के बाद राम ने खुद जो फतवा दिया वह तुलसी के शब्दों में प्रस्तुत है:

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा, ग्रति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा.
विष संजुत कर निकर पसारी, जगत विरह वंत नरनारी.

(प्रभु श्रीराम ने कहा, "विष चंद्रमा का प्यारा भाई है. इसी से उस ने विष को ग्रपने हृदय में स्थान दे रखा है. विषयुक्त ग्रपने किरण समूह को फैला कर वह वियोगी नरनारियों को जलाता रहता है.")

तो यह था उस 'प्रभु' का ज्ञान ग्रपनी तथाकथित सृष्टि के विषय में! ग्रौर इसी प्रकार की ग्रवैज्ञानिक ग्रौर कपोलकल्पित बातें लिखलिख कर तुलसी जैसे पाखंडियों ने जनता को ग्रंधविश्वास के गर्त में डाले रखा. इस का दुष्परिणाम यह हुग्रा कि हिंदू हर ग्रन्याय को चुपचाप सहते चले जाने के ग्रादी बनते गए.

हाल में समाचारपत्रों में एक खबर छपी थी कि एक पुलिस इंस्पेक्टर ने ग्रपने छ:सात साल के लड़के को भगवान की मूर्ति के ग्रागे गला घोंट कर बलि चढ़ा दिया. छानबीन करने पर पता चला कि किसी ब्राह्मण ने उन्हें ऐसा करने की राय दी थी ग्रौर यह विश्वास दिलाया था कि बलि चढ़ाने के कुछ ही घंटे बाद बच्चा फिर से जी उठेगा. इस प्रकार की बलियां चढ़ाने की घटनाएं ग्राज तक भी हिंदुग्रों में ग्राए दिन सुनाई देती रहती हैं. उन का कारण भी हमारे धर्मग्रंथों में बखाना गया बलि का महात्म्य ही है. तुलसी ने बलि प्रथा को पुष्ट किया है. रावण ने ग्रमर होने का वरदान ही ग्रपने सिर की बलि चढ़ाचढ़ा कर पाया था:

सिर सरोज निज करन्हि उतारी, पूजेऊ ग्रमित बार त्रिपुरारी.

(सिर रूपी कमल को ग्रपने हाथों से उतारउतार कर मैं ने ग्रगणित बार त्रिपुरारी की पूजा की है.)

ग्रौर ग्राज तक भी जो गोवध ग्रांदोलन चलाए जाते हैं ग्रौर उन के नाम पर लड़ामरा जाता है या धर्म के नाम पर जराजरा सी बात को ले कर दंगे-फसाद हो जाते हैं, उन की तह तले भी तुलसी द्वारा फैलाए हुए ग्रंधविश्वास

ही हैं. उदाहरणार्थः

हरिहर निंदा सुनइ जो काना, होइ पाप गोघात समाना.

इन अंधविश्वासों ने आज भी हिंदू जाति को काहिल और निकम्मा बना कर रखा हुआ है. इसी लिए हिंदू लोग बिना परिश्रम किए ही सब कुछ हासिल कर लेना चाहते है क्योंकि तुलसीदास कह गए हैं:

उपजइ रामचरन बिस्वासा, भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा.

जब ऐसी स्थिति है तो क्या जरूरत है परिश्रम या प्रयास की! राम के चरणों में विश्वास उत्पन्न कर लेने भर से सारे कार्य सिद्ध हो सकते हैं. इस-लिए :

सब भरोस तजि जो भज रामहि, प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि.

यही नहीं, तुलसीदास तो यहां तक उपदेश देते हैं कि दुनिया के सारे काम-धंधे छोड़ दो, कुछ मत करो और सिर्फ राम का नाम भजो : "राम भजिअ सब काज बिसारी." और फिर अंत में अपनी किताब के पाठक पैदा करने के लिए भी तुलसी ने वही अंधविश्वास उपजाने का हथकंडा अपनाया है कि 'जो मनुष्य इस ग्रंथ की पांचसात चौपाइयों को भी पढ़ लेगा, उस के भी पांच प्रकार की अविद्याओं से उत्पन्न हुए विकारों को रामजी हरण कर लेते हैं.' देखिए निम्न पंक्तियां :

मनपंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै,
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्रीरघुबर हरै.

मगर जिन में रत्ती भर भी तर्कशक्ति है या अक्ल का कोई अंश है, उन के लिए रामचरितमानस अनुपयोगी पुस्तक है क्योंकि अंधविश्वास की महामारी तो केवल वहीं प्रहार कर सकती है जहां अंधभक्ति के कीटाणु हों. इस तथ्य को ध्यान में रख कर ही तुलसी ने अपने पाठकों को आग्रह किया है कि 'जिन के हृदय में राम भक्ति नहीं है, उन के सामने इस ग्रंथ को कभी भी नहीं पढ़ना चाहिए' देखिए तुलसी की ये पंक्तियां :

राम भगति जिन्ह कें उर नाहीं, कबहुं न तात कहिअ तिन्ह पाहीं.

साथ ही इस बात की चेतावनी भी दी गई है कि जो लोग ब्राह्मणों की सत्ता अस्वीकार करते हों, उन्हें भी रामकथा कभी नहीं सुनानी चाहिए : "द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूं."

सिर्फ यही नहीं कि जिन लोगों को साधुसंतों, देवीदेवताओं के पाखंडों में अंधविश्वास न हो, उन्हें यह कथा सुननेसुनाने के अधिकार से वंचित किया गया है, बल्कि तुलसी ने यहां तक उपदेश दिया है कि जो लोग अपवाद करें उन की जीभ काट लो और अगर जीभ न काट सको तो कानों में उंगलियां दे कर उन के पास से भाग जाओ क्योंकि शास्त्रों में ऐसी मर्यादा या इजाजत है :

संत संभु श्रीपति अपवादा, सुनिअ जहां तहं असि मरजादा.
काटिअ तासु जीभ जो बसाई, श्रवन मूंदि न त चलिअ पराई.

अपवाद और निंदा का भय भी तुलसी को अकारण ही नहीं हो गया था. तुलसीदास अच्छी तरह जानते थे कि जैसीजैसी अविश्वसनीय बातें वह लिख रहे हैं, उन्हें पढ़ कर कोई भी समझदार व्यक्ति अपवाद किए बिना नहीं रह सकेगा. लेकिन साथ ही वह यह भी जानते थे कि समझ और अक्ल से खारिज कर के लोगों को मूर्ख बनाया जा सकता है. इसी लिए चमत्कारपूर्ण बातें और अतिशयोक्तियां जहांतहां भर कर उन्हें दैवी गुणों से जोड़ दिया गया, वरना कौन मान लेता कि 'सत्तासी हजार वर्ष बीत जाने पर अविनाशी शिव ने समाधि खोली.' (बीतें संबत सहस सतासी, तजी समाधि संभु अविनासी.) तुलसी के अनुसार एक हजार वर्ष तक उन्होंने मूल और फल खाए, फिर सौ वर्ष साग खा कर बिताए. कुछ दिन जल और वायु का भोजन किया और फिर कुछ दिन कठोर उपवास किया. फिर तीन हजार वर्षों तक उन्होंने पेड़ों से गिरे सूखे पत्ते खा कर बिता दिए. देखिए निम्न पंक्तियां :

संबत सहस मूल फल खाए, सागु खाइ सत बरष गंवाए.
कछु दिन भोजन बारि बतासा, किए कठिन कछु दिन उपवासा.
बेल पाति महि परइ सुखाई, तीन सहस संबत सोई खाई.

इसी प्रकार एक राजारानी का प्रसंग आता है. राजा स्वयंभू मनु और उन की रानी शतरूपा जब बहुत बूढ़े हो गए तो राजपाट अपने पुत्र उत्तानपाद को सौंप कर नैमिषारण्य में चले गए. वहां जा कर उन दोनों ने सिर्फ पानी पीपी कर 6,000 वर्ष काट दिए. फिर और 7,000 साल तक वे सिर्फ हवा के सहारे जिंदा रहे. उस के बाद 10,000 वर्षों तक उन्होंने न पानी पिया, न हवा खाई और दोनों पतिपत्नी 23,000 वर्ष तक एक पैर के बल खड़े रहे:

एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार,
संबत सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार.
बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ, ठाढ़े रहे एक पद दोऊ.

तुलसी ने रावण को इतना अधिक बलवान बताया है कि उस की मार से राम भी मूर्छित हो गए थे. साथ ही रावण के चलने से धरती तक डोलती बताई गई है. लेकिन आश्चर्य है कि वही रावण शिव धनुष को [illegible] छूने की भी हिम्मत न कर सके (रावनु बानु महाभट भारे, देखि सरासनि गवहिं सिधारे) और दस हजार राजा एक साथ मिल कर भी जिस धनुष को हिला तक न सके (भूप सहस दस एकहि बारा, लगे उठावन टरइ न टारा), उसी धनुष को तुलसी के भगवान रामचंद्र ने इतनी फुरती से उठा कर तोड़ डाला कि उसे उठाते, चढ़ाते और खींचते हुए कोई देख भी न सका! (अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा... लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें, काहु न लखा देख सबु ठाढे... तेहि छन राम मध्य धनु तोरा.)

भालू और बंदर खेल ही खेल में पहाड़ उखाड़उखाड़ कर समुद्र में फेंक देते हैं और भारत से लंका तक के समुद्र पर पुल बन जाता है. और फिर वही धनुष

तोड़ने वाला राम अकेले रावण का मुकाबला नहीं कर सका तथा एक ही बार में एक लाख बाण छोड़ कर भी रावण को नहीं मार सका. (सत्यसंध छांड़े सर लच्छा) राम ने रावण के भाई कुंभकरण का मुंह बाणों से भर डाला तो भी वह गिरा तक नहीं:

"बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ, तदपि महाबल भूमि न परेऊ."

फिर राम ने खास किस्म के 30 बाण मार कर रावण के दसों सिर और बीसों भुजाएं काट डालीं. उस ने एक बार नहीं कई बार भुजाएं और सिर काटे मगर कटते ही वे तुरंत फिर जुड़ जाते थे:

प्रभु बहु बार बाहु सिर हए,कटत झटिति पुनि नूतन भए.

यही नहीं कि जितने सिर कटते हों उतने ही रहते हों, बल्कि जैसेजैसे वह सिर काटते जाते वैसेवैसे सिरों की संख्या अनगिनत होती चली जाती (जिमि-जिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमितिमि होंहि अपार). फिर रावण ने क्रुद्ध हो कर जो वार किया तो राम मूच्छित हो कर गिर पड़े. (पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छांड़ी सक्ति प्रचंड... लागि सक्ति मुरुछा कछु भई . . .)

हास्यास्पद बात तो यह है कि राम रावण के सीने पर बाण इस कारण नहीं चलाते कि रावण के दिल में सीता बसी हुई है और जानकी के हृदय में खुद राम का निवास है: "एहि के हृदय बसि जानकी, जानकी उर मम बास."

जब राम थक कर हताश हो गए और रावण को मार सकने की कोई तर-कीब उन्हें नहीं सूझी तो विभीषण का मुंह ताकने लगे:

मरेइ न रिपु श्रम भयऊ बिसेषा, राम बिभीषन तन तब देखा.

तब फिर विभीषण के निर्देश पर ही रावण की नाभि में बाण चला कर राम उसे मार सके. मतलब यह कि छलपूर्वक पहले तो भाई को भाई से फोड़ा और सिंहासन का लालच दे कर उसे अपने साथ मिला कर लंका के सारे भेद जाने और अंत में जब बलपूर्वक रावण से लोहा न ले सके तब धोखे से उसे मारा. सो यहां भी तुलसी ने ऐसी अविश्वसनीय आड़ डाल दी है कि रावण के नाभिकुंड में अमृत का निवास होने के कारण वह मर नहीं पा रहा था. पहली बात तो यह कि अमृत क्या होता है? और चलो एक मिनट के लिए इसे भी मान लें, तो फिर मनुष्य या किसी भी जीवधारी के शरीर में अमृत का वास कहां के जीवशास्त्र के अनुसार विश्वसनीय हो सकता है?

रावण के मरने से पहले 'असुभ होन लागे तब नाना, रोवहिं खर सृगाल बहु स्वाना. बोलहिं खग जग आरति हेतू, प्रगट भए नभ जहंतहं केतू' मतलब यह कि उस समय नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे. बहुत से गधे, स्यार और कुत्ते रोने लगे. अशुभ को सूचित करने के लिए ही पक्षी चीखने लगे. आकाश में जहांतहां पुच्छल तारे प्रकट होने लगे. साथ ही दसों दिशाओं मे आग जल उठी. बिना ही योग के सूर्य ग्रहण लग गया, मूर्तियां रोने लगीं, आकाश से वज्रपात होने लगा, अत्यंत प्रचंड वायु बहने लगी, पृथ्वी हिलने लगी, बादल

खून, बाल और धूल बरसाने लगे. इस प्रकार इतने अधिक अमंगल होने लगे कि उन का वर्णन ही नहीं किया जा सकता.

दस दिसि दाह होन अति लागा, भयउ परब बिनु रवि उपरागा.
प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ, अति बात बह डोलति मही,
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज अशुभ अति सक को कही.

फिर रावण के गिरते ही पृथ्वी हिल गई. समुद्र, नदियां, दिशाओं के हाथी और पर्वत क्षुब्ध हो उठे. रावण के धड़ के दोनों टुकड़े फैल कर भालुओं और बानरों के समुदायों को रौंदते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े. देखिए निम्न पंक्तियां:

डोली भूमि गिरत दसकंधर, छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर.
धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई, चापि भालु मर्कट समुदाई.

धड़ के इन दो टुकड़ों का रहस्य यह बताया गया है कि सिर कटने के बाद जब रावण का धड़ प्रचंड वेग से दौड़ा तो धरती धंसने लगी. तब राम ने बाण मार कर उस के दो टुकड़े कर दिए (धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा, तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा.) और सिरों तथा भुजाओं की स्थिति यह हुई कि राम का बाण उन्हें ले कर रावण की पत्नी मंदोदरी के सामने डाल आया और फिर से राम के तरकस में आ घुसा. यह चमत्कार देख कर देवताओं ने नगाड़े बजाए:

मंदोदरि आगे भुज सीसा, धरि सर चले जहां जगदीसा.
प्रबिसे सब निषंग महुं जाई, देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई.

तभी "रावण का तेज प्रभु (राम) के मुख में समा गया. यह देख कर शिवजी और ब्रह्माजी हर्षित हुए. ब्रह्मांड भर में 'जयजय' की ध्वनि भर गई. प्रबल भुजदंड वाले श्री रघुबीर की जय हो! ..देवताओं और मुनियों के समूह फूल बरसाते हैं और कहते हैं, कृपालु की जय हो! मुकुंद की जय हो! जय हो" जरा गौर कीजिए इस वर्णन पर :

तासु तेज समान प्रभु आनन, हरषे देखि संभु चतुरानन.
जयजय धुनि पूरी ब्रह्मंडा, जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा.
बरषहिं सुमन देव मुनि वृंदा, जय कृपाल जय जयति मुकुंदा.

इसी प्रकार की फूहड़ अभिव्यक्ति के प्रति अंधविश्वासस्वरूप यदि आज हिंदुओं के घरों में भजनकीर्तन सुनते समय इस तरह के वाक्य सुनाई देते हैं तो आश्चर्य क्यों हो! 'लाल लंगोटा, चुत्तड़ मोटा, जय बजरंग बली!' क्या इसी किस्म की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के आधार पर हम अपने धर्म और सभ्यता पर फूले नहीं समाते?

खैर, तो तुलसी के मानस की समीक्षा करते समय एक और प्रसंग ध्यान खींचता है. वह यह कि जहां तुलसी ने वाल्मीकि रामायण के धोबी वाले प्रसंग और सीता के त्यागे जाने आदि के बारे में बातें टाल दी हैं, वहीं विकल्प स्वरूप कथानक में जो परिवर्तन किया गया है वह एकदम अविश्वसनीय हो गया है. इस प्रकार रामचरितमानस द्वारा फैलाए गए अंधविश्वासों की शृंखला में एक

महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में वह घटना गिनाई जा सकती है जब वनवास के दौरान एक दिन राम ने सीता से कहा, "हे प्रिये! हे सुंदर पातिव्रत धर्म का पालन करने वाली सुशीले! सुनो, अब मैं कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूंगा. इसलिए जब तक मैं राक्षसों का नाश करूं तब तक तुम अग्नि में निवास करो. विश्वास न हो तो तुलसी के निम्न पंक्तियां पढ़ जाइए:

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला, मैं कछु करब ललित नर लीला.
तुम्ह पावक महुं करहु निवासा, जौ लगि करौं निसाचर नासा.

और फिर हुआ यह कि राम ने ज्यों ही सब समझा कर कहा, त्यों ही सीताजी प्रभु के चरणों को हृदय में धर कर अग्नि में समा गई. और सीता ने अपनी ही छाया वहां रख दी, जो उसी जैसी शील और रूप वाली थी:

जबहि राम सब कहा बखानी, प्रभु पद धरि हिय अनल समानी.
निज प्रतिबिंब राखि तहं सीता, तैसइ सील रूप सुबिनीता.

इस बात से दो बातें स्पष्ट होती हैं. एक तो यह कि उक्त घटना के बाद से राम को मनुष्यों की तरह आचरण करता दिखाया जाना चाहिए था जिस में कि कवि सफल नहीं हो सका (हालांकि कवि यह मानता भी है कि 'जस काछिअ तस चाहिअ नाचा' यानी जैसा स्वांग भरा जाए वैसा नाचना भी चाहिए. मतलब यह कि यदि मनुष्य का रूप धरा है तो मनुष्योचित व्यवहार करना चाहिए) और दूसरी बात यह कि सीता तो रावण द्वारा हरण होने से पहले ही आग में जलवा दी गई थी, फिर रावण क्या उस की छाया को हर ले गया था? और अगर वह छाया ही थी तो फिर उस के खो जाने पर राम जंगलजंगल भटकते क्यों फिरे? राम ने रावण पर हमला किस के लिए किया? युद्ध क्यों हुआ? फिर वह कौन थी जो अशोक वाटिका में दिखाई गई है? वह कौन थी जिसे युद्ध के बाद राम के सामने लाया गया और राम ने जिसे देख कर कड़े वचन कहे, जिन्हें सुन कर सब राक्षसियां विषाद करने लगी थीं? (तेहि कारन करुना-निधि कहे कछुक दुर्बाद, सुनत जातुधानी सबैं लागीं करन विषाद.) और फिर दूसरी बार जो लंका में चिता पर बैठाई गई थी वह औरत कौन थी? (श्रीखंड सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली...)

अगर वह छाया थी तो क्या छाया भी कोई पदार्थ है जो आग में जल सकता है? अगर वह सीता थी तो दोदो बार आग में जल कर बच कैसे गई? क्या यही मनुष्य लीला है? या कोई ऐयारीतिलस्मी उपन्यास की घटना?

राम की मनुष्य लीला यानी तिलस्म के करिश्मे पूरे 'मानस' में भरे पड़े हैं. यहां तक कि लंका के रणक्षेत्र में इंद्र ने अपना रथ और सारथि तक को राम के लिए भेज दिया. रावणवध के बाद वहां ब्रह्माजी, इंद्र आदि तो स्वयं जा भी पहुंचे. और तो और वर्षों पहले मर चुके राजा दशरथ भी लंका में आ गए और पुत्र को देख कर उन के नेत्रों में आंसू आ गए:

तेहि अवसर दशरथ तहं आए, तनय बिलोकि नयन जल छाए.

इतना ही नहीं, फिर राम और लक्ष्मण पिता के चरण छूते हैं और काफी लंबी बातचीत तक होती दिखाई गई है.

मगर बात तो यह है कि 'चरित राम के सगुन भवानी, तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी.' मतलब यह कि राम के बारे में बुद्धि और वाणी के बल से तर्क तो किया ही नहीं जा सकता. इसलिए तुलसी अगर कहते हैं तो बुद्धि और तर्क को ताक पर रख कर यह भी मानना ही पड़ेगा कि रामराज्य में सुंदर बाजार और दुकानें तो सजी हुई थीं मगर उन दुकानों पर चीज मुफ्त मिलती थीं: 'बाजार रुचिर न बनइ बरनत वस्तु बिनु गथ पाइए.' प्रश्न यह है कि ये चीजें आती कहां से थीं? इन के तैयार करने में जो दाम लगता था उस का भुगतान कहां से होता था? या ये सब चीजें बिना मजदूरी दिए तैयार की जाती थीं? यदि राज्य की ओर से मुफ्त सप्लाई की जाती थीं तो पैसा कहां से आता था?

और न ही इस बात पर कोई शक किया जा सकता है कि राम के राज्य में न कोई अपराधी था, न किसी को दंड दिया जाता था, न किसी से कोई भेदभाव बरता जाता था.

दंड जतिह कर भेद जहं नर्तक नृत्य समाज,
जीतहु मनहि सुनिग्र अस रामचंद्र कें राज.

कारण यह कि वहां के सभी नरनारी उदार और परोपकारी थे और एकमात्र कारण यही था कि वे थोड़ा ब्राह्मणों के चरणों की सेवा किया करते थे:

सब उदार सब पर उपकारी, विप्र चरन सेवक नरनारी.

हिंदुओं की गोब्राह्मण प्रधान संस्कृति के आधारस्तंभों में तुलसीदास की गणना की जाती है. इस में कोई अतिशयोक्ति भी नहीं है. तुलसी वास्तव में इस उपाधि के अधिकारी हैं. उन्होंने अपनी जाति के हित के लिए जो कुछ किया और कहा वह और किसी के बस का नहीं हो सकता.

तुलसी का कथन है, "तप के बल से ब्राह्मण सदा बलवान रहते हैं. उन के क्रोध से रक्षा करने वाला कोई नहीं है. हे नरपति! यदि तुम ब्राह्मणों को वश में कर लो तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तुम्हारे अधीन हो जाएंगे." राजाओं को दिया गया तुलसी का यह उपदेश उन्हीं की भाषा में इस प्रकार है:

तपबल विप्र सदा बरिआरा, तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा.
जौं विप्रन्ह बस करहु नरेसा, तौ तुअ बस विधि विष्नु महेसा.

तुलसी के जीवनकाल में तो अकबर का राज था, लिहाजा मुसलमान होने की वजह से वह ब्राह्मणों को महत्त्व कैसे दे सकता था! इस के बाद बहादुरशाह तक भी उसी के वंशज मुगल सम्राट भारत पर राज्य करते रहे. फिर आ गए अंगरेज. सो उन की हुकूमत में भी तुलसी की यह नसीहत किसी ने न सुनी. मगर अफसोस तो इस बात का है कि सन १९४७ में भारत के इतिहास में पहली बार जब ऐसा सुयोग आया कि एक ब्राह्मण के हाथ में भारतवर्ष की राजनीतिक

बागडोर आई तब भी तुलसी की सम्मति पर ध्यान नहीं दिया गया और उक्त चौपाई को राष्ट्रगीत बनाने की बजाए उलटे भारत को ही धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित कर डाला गया!

ब्राह्मणों की महिमा का पूरापूरा ज्ञान शायद आप को न हो इसलिए हम महाकवि तुलसीदासजी के रामचरितमानस के प्रमाणों द्वारा आप को विप्र महात्म्य बताते हैं. पहले केवल कुछ सूक्त वाक्य सुन कर अपना जीवन सफल कर लें. हम अपनी बातें बाद में कह लेंगे. तो, लीजिए, सुनिए :

सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा, द्विज गुरू कोप कहहु को राखा.
राखइ गुरू जौं कोप विधाता, गुरू बिरोध नहिं कोउ जग त्राता.

(राजा ने ब्राह्मण के चरण पकड़ कर कहा, "हे, स्वामी, सत्य ही है कि ब्राह्मण गुरु के क्रोध से कहिए कौन रक्षा कर सकता है? यदि ब्रह्मा भी क्रोध करें तो ब्राह्मण बचा लेता है पर ब्राह्मण से विरोध करने पर जगत में कोई भी तो बचाने वाला नहीं है!")

किए अन्यथा होई नहिं बिप्र शाप अति घोर.

(ब्राह्मणों का शाप बहुत ही भयानक होता है, यह किसी तरह भी टाले नहीं टलता.)

रावण जैसे राजा भी 'यद्यपि पुलस्त्य ऋषि के पवित्र, निर्मल और अनुपम कुल में उत्पन्न हुए, तथापि ब्राह्मणों के शाप के कारण पाप रूप हुए.' तुलसी की निम्न पंक्तियां देखिए :

उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप,
तदपि महीसुरशापबस भए सकल अघरूप.

राम ने भी केवल ब्राह्मणों को निर्भय करने के लिए ही राक्षसों को मारा. (मारि असुर द्विज निर्भयकारी.)

लक्ष्मण को परशुराम से अपमानित हो कर अपना क्रोध पी जाना पड़ा था और वह यह कहे बिना नहीं रह सका था :

भृगुसुत [1] समुझि जनेउ बिलोकी, जो कछु कहहु सहउ रिस रोकी.
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई, हमरे कुल इन्ह पर न सुराई.
बधे पापु अपकीरति हारे, मारतहूं पां परिअ तुम्हारे.

(क्योंकि आप भृगुवंशी हैं और आप ने जनेऊ पहन रखा है, इसलिए मैं क्रोध नहीं कर सकता. देवता, ब्राह्मण और भगवान के भक्त तथा गऊ पर वीरता नहीं दिखाई जा सकती. क्योंकि इन्हें मारने से पाप लगता है और इन से हार जाने पर अपकीर्ति होती है, इसलिए आप मारें तो भी आप के पैर ही पड़ना चाहिए.)

कबंध नामक राक्षस के मुंह से उस के शाप की कथा सुन कर राम ने कहा, "मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही." (ब्राह्मणकुल से द्रोह करने वाला मुझे नहीं सुहाता.) और सिर्फ इतना ही कह देना राम को पर्याप्त नहीं लगा तो वह कहने लगे :

मन क्रम बचन कपटतजि जो कर भूसुर सेव,
मोहि समेत विरंचि सिव बस ताकें सब देव.

(मन, बचन और कर्म से कपट छोड़ कर जो व्यक्ति भूदेव ब्राह्मण की सेवा करता है, मुझ समेत ब्रह्मा, शिव आदि देवता उस के वश में हो जाते हैं.)

और फिर शायद राम को यह लगा कि बात कहीं अभी भी अस्पष्ट न रह गई हो. मतलब यह कि ब्राह्मण से अभिप्राय कहीं ज्ञानवान और गुणी व्यक्ति से ही न समझ लिया जाए, इसलिए तुरंत बात खोल कर कह देते हैं, "ब्राह्मण चाहे शाप दे, चाहे मार डाले, चाहे गालियां दे, वह फिर भी पूजनीय ही है. और चाहे वह शीलरहित भी क्यों न हो, चाहे उस में कोई भी गुण न हो, चाहे वह एकदम ज्ञानरहित यानी अज्ञानी हो, फिर भी अगर वह ब्राह्मण है तो केवल इसी कारण पूजनीय है. शूद्र चाहे गुणगणों से युक्त और ज्ञान में निपुण हो, फिर भी पूजनीय नहीं है." शायद आप को यह लगे कि तुलसी जैसा महाकवि राम के मुंह से ऐसी बात कभी नहीं कहला सकता और हम ने जो यह व्याख्या की है वह मनगढंत है, इसलिए हम मानस की चौपाई पूरे संदर्भ सहित नीचे उद्धृत कर रहे हैं :

सापत ताड़त परुष कहंता, विप्र पूज्य अस गावहिं संता,
पूजिय विप्र सील गुन हीना, सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना.

(संदर्भ : रामचरितमानस, पृष्ठ 638. अरण्यकांड, गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित चौदहवां संस्करण.)

तो यह हैं 'मर्यादापुरुषोत्तम' राम के विचार जिन्हें अंधविश्वासी हिंदू भक्तिभाव से पढ़ते हैं और पढ़पढ़ कर झूमते हैं! इन्हीं मानवविरोधी और अमानवीय विचारों का जहर फैलाने के लिए लाउडस्पीकर लगा कर अखंड पाठ करवाए जाते हैं व धर्मनिरपेक्ष पड़ोसियों की रातों की नींद हराम की जाती है. यहां हम इस बात को खास तौर पर उठाना चाहते हैं और आग्रहपूर्वक भारत की धर्मनिरपेक्ष सरकार से यह पूछना चाहते हैं कि संविधान की धर्मनिरपेक्षता वाली धारा रामचरितमानस पर लागू क्यों नहीं की जाती? क्या शासक वर्ग को मालूम नहीं कि इस सब से भारतीय संविधान की जड़ (मानवमानव के बीच जाति, धर्म, रंग आदि के आधार पर भेद न मानना और समान अधिकार वाले आधारभूत सिद्धांत) पर प्रहार हो रहा है? फिर इस पर कोई कार्रवाई क्यों नहीं की जा रही?

तुलसी के विचार केवल भारतीय संविधान को ही चुनौती नहीं देते बल्कि मानवीय अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय विधान को भी नकारते हैं और यही नहीं कि ये विचार सिर्फ जनविरोधी हैं, बल्कि उतने ही घातक पूंजीवाद के लिए भी हैं. कारण यह कि ब्राह्मणवाद तो सामंतवाद का ही सांस्कृतिक रूप है, और कुछ नहीं. आज भी जो लोग इस प्रकार के विचारों वाले ग्रंथों का प्रचारप्रसार कर रहे हैं, वे वही हैं जो इतिहास का रुख मोड़ कर उसे पीछे की ओर ले जाना

चाहते हैं. ब्राह्मणवाद रामराज्य के रूप में एक आदर्श सामंतवादी कल्पना में उलझा कर मानवीय प्रगति और विकास के सारे रास्ते बंद करने का एक षड्-यंत्रकारी नारा है.

इस नारे का विरोध भी आज कोई नया नहीं शुरू हुआ, बल्कि 2,500 वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध ने भी इसी ब्राह्मणवाद या पुरोहितवाद को चुनौती दी थी और वेदशास्त्रों की सत्ता को मानने से साफ इनकार कर दिया था. मगर वह चुनौती इसलिए उपयोगी सिद्ध न हो सकी क्योंकि बुद्धमत क्षत्रिय पुरोहितवाद का रूप ले बैठा. दो मोर्चों पर एक साथ लड़ने के कारण वह विफल हुआ. एक मोर्चे पर तो उसे ब्राह्मण उच्चवर्ग के मुकाबले में क्षत्रिय उच्चवर्ग के हितों के लिए लड़ना पड़ा और दूसरी तरफ शूद्रों यानी दासों के विद्रोह शांत करने पड़े. ये दोनों मोर्चे परस्पर विरोधी थे. इसी अंतर्विरोध ने बुद्धमत को लंबी उमर तक नहीं जाने दिया.

ऐतिहासिक विश्लेषण करते समय बुद्ध धर्म के बाद जैन धर्म पर निगाह पड़ती है. जैन धर्म का जन्म भी उसी संक्रांति काल में हुआ था और वह वैश्यों का धर्म था. वैश्य भारतीय समाज का तीसरा उच्च वर्ग माना जाता था. वैश्यों को क्योंकि व्यापार के लिए शांति चाहिए थी इसी लिए जैनियों ने अहिंसा पर बौद्धों से भी अधिक जोर दिया. राजा चाहे कोई हो, जैनियों को तो व्यापार के लिए सुविधा से मतलब था.

यही कारण है कि जैन धर्म ने राजाश्रय चाहे कभी नहीं लिया मगर साथ ही यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि जैनियों ने वक्त की हर हुकूमत के साथ हमेशा समझौता किया. हिंदू राजा थे तो ये उन के भक्त रहे, मुसलमान बादशाह आए तो इन्होंने उन के आगे सिर झुका दिया, अंगरेज हाकिम हुए तो राजभक्ति का तबादला लंदन में हो गया और फिर कांग्रेस के हाथ में सत्ता आई तो जैनियों ने गांधी टोपियां पहननी शुरू कर दीं. इसी लिए जैन धर्म इतिहास की गति को प्रभावित करने में कोई भी भूमिका अदा नहीं कर सका.

बुद्ध धर्म अपने उभार के 20 बरस बाद ही समाज के ऊंचे वर्णों के हाथों में खेलने लगा. इस प्रकार वह प्रतिक्रिया की लपेट में आ गया. इसी कारण वह अपने मुख्य लक्ष्य पूरे न कर सका. न तो वह दासप्रथा ही तोड़ सका, न ही गणराज्यों को टूटने से बचा पाया. दासप्रथा जब टूटी तो बुद्ध धर्म के खंडहरों पर टूटी और नंद ने शूद्र राज्य स्थापित किया.

लेकिन ब्राह्मणों की सहायता से क्षत्रिय सामंतवाद की नींव डालने की ऐतिहासिक भूमिका निबाही चंद्रगुप्त ने.

अशोक द्वारा कलिंग विजय प्राप्त करने के बाद बुद्ध धर्म को जो राज्याश्रय प्राप्त हुआ वह तो सिर्फ ऐतिहासिक परिस्थितियों से पैदा हुई मजबूरी के कारण था, न कि बुद्ध धर्म में राजा की आस्था के कारण. संक्षेप में स्थिति यह थी कि अशोक के सामने कलिंग विजय के बाद राज्य विस्तार की कोई और खास

गुंजाइश भी नहीं रही थी और साथ ही अशोक के सामने मजबूरी यह भी आ चुकी थी कि श्रेष्ठियों ने युद्ध के लिए धन देना बंद कर दिया था. तीसरी मजबूरी यह थी कि इतने बड़े साम्राज्य को सिर्फ तलवार के बल पर कायम नहीं रखा जा सकता था और उस काम के लिए जनता को भावनात्मक स्तर पर काबू में रखना एक कूटनीतिक अनिवार्यता थी. इस के लिए यह जरूरी था कि अहिंसा का प्रचार किया जाता. लेकिन अपनी हिंसक हरकतों के लिए मशहूर हो चुके राजा के लिए अहिंसा का प्रचार राजनीतिक दृष्टि से खतरे से खाली नहीं था. इसलिए सहसा 'हृदय परिवर्तन' हो जाना घोषित कर के यह प्रचारित करा दिया गया कि सम्राट अशोक को बुद्ध धर्म से वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो चुका है. इस तरह बुद्ध धर्म अशोक को राजनीतिक संकट से उबार कर राजधर्म बन जाने का इनाम पा गया.

निहित स्वार्थवश क्षत्रिय पुरोहितवाद और ब्राह्मण पुरोहितवाद के बीच हो चुका मुकम्मिल समझौता भी अंत में खुल कर सामने आया. यह भी एक ऐतिहासिक सचाई है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता. क्या बुद्ध धर्म का हीनयान संप्रदाय ब्राह्मण धर्म का ही दूसरा चेहरा नहीं था?

और इस ऐतिहासिक सचाई से भी कौन इनकार कर सकता है कि बुद्ध धर्म जिस ब्राह्मण धर्म से निकला था, आहिस्ताआहिस्ता उसी में फिर गर्क हो गया. ब्राह्मण धर्म के पीछे निहित स्वार्थों की शक्ति का एक बहुत बड़ा गुट इस बीच फिर से पूरी ताकत के साथ संगठित हो चुका था. विदेशी आक्रमणकारी जातियों —शक, हूण, कुषाण, आभीर, यवन आदि—के साथ भी हर संभव समझौता कर के ब्राह्मण धर्म ने अपनी सत्ता बनाए रखी. इन आक्रमणकारियों में से जो अधिक खतरनाक साबित हो सकते थे, उन्हें क्षत्रित्व प्रदान कर के ब्राह्मण वर्ग ने उन की पुरोहिताई कबूल कर ली और इस प्रकार अपने पुरोहितवाद की शक्ति और अधिक मजबूत बना ली हूणों और गौड़ों को क्षत्रिय घोषित करने के पीछे ब्राह्मण धर्म की केवल यही चाल थी. नीची जातियों के विद्रोह शांत करने के लिए उन दिनों दोतरफा चालें चली गईं.

एक चाल यह थी कि उन की अलग बिरादरियां और अलगअलग पंचायतें स्थापित करवा कर उन में परस्पर फूट डलवानी शुरू कर दी गई ताकि वे आपस में ही उलझे रहें और ब्राह्मणों के खिलाफ विद्रोह करने के लिए एकजुट हो ही न सकें. दूसरी चाल ज्यादा गहरी थी और भविष्य को ध्यान में रख कर चली गई थी. चाल यह थी किबहुत बड़े पैमाने पर ब्राह्मण पुरोहितवाद का प्रचार करने के लिए पुस्तकें लिखवाई गईं और उन पुस्तकों को पुराण साहित्य के नाम से प्रसारितप्रचारित किया गया. देश के कोनेकोने में इस प्रचार के गढ़, मठ, मंदिर आदि खोले गए क्योंकि प्रेस द्वारा पुस्तकें छपवा कर वितरित करने की आज जैसी सुविधा तो तब उपलब्ध थी नहीं. दूसरी बात यह है कि अधिकांश जनता अशिक्षित थी, खुद पढ़ भी नहीं सकती थी, इसलिए कथावाचकों,

धर्म प्रचारकों और साधुसंतों के माध्यम से ही यह प्रोपेगेंडा सफलतापूर्वक और अधिक प्रभावशाली ढंग से कराया जा सकता था.

अब यहां प्रश्न यह उठाया जा सकता है कि आखिर वह कौन सी छिपी हुई शक्ति थी जो यह सब करवा रही थी? वे कौन लोग थे जो ब्राह्मण पुरोहितवाद को फैला रहे थे? केवल ब्राह्मण जाति के किए ही तो यह सब हो नहीं सकता था. क्योंकि ब्राह्मण के पास न तो धन था, न राजनीतिक सत्ता और फिर यदि ब्राह्मण सिर्फ अपनी जाति को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने वाले होते और केवल ब्राह्मणों के हितों को ही ध्यान में रख कर खुद अपने तौर पर ही प्रचार करते तो राजनीतिक सत्ताधारी क्षत्रिय और सामंत उन्हें चींटियों की तरह कुचल कर रख सकते थे.

स्पष्ट है कि सारा का सारा पौराणिक साहित्य लिखा नहीं गया बल्कि लिखवाया गया था. यह साहित्य अपनेआप प्रचारित भी नहीं हुआ, बल्कि प्रचारित करवाया गया था. क्यों? इसलिए कि राजाओं और सामंतों के स्वार्थ इसी में निहित थे कि जनता को धोखे में रखा जाए, सत्य पर अधिक से अधिक परदे डाले जाएं और ज्ञान के नाम पर अज्ञान का अंधाधुंध प्रचार किया जाए. कहना न होगा कि यह सब तभी हो सकता था जब कि धार्मिक मान्यताओं को रूढ़ बनाया जाता, ईश्वर का भय बढ़ाया जाता, राजाओं के दैवीय अधिकारों के प्रति जनता को आस्थावान बनाया जाता, सामंती जुल्मों को सहते चले जाने के लिए लोगों में तथाकथित किस्मत या भाग्य के प्रति विश्वास मजबूत किया जाता, और सब से बड़ी बात यह है कि यह सब खुद न कह कर दूसरी जाति के लोगों के मुंह से कहलवाया जाता और उन्हीं की कलम से लिखवा कर उन्हीं के द्वारा प्रचारित करवाया जाता.

इस प्रकार पुराणों को सांमती साजिश के दस्तावेज कहा जा सकता है. और यह साजिश केवल भारत में ही नहीं, बल्कि किसी न किसी कालावधि में विश्व के हर देश में हुई है. ऐतिहासिक विश्लेषण करते समय इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि कालांतर में संसार में पूंजीवाद ने उभर कर सब से पहली चोट इसी साजिश पर की और मानवविकास की एक ऐतिहासिक कड़ी के रूप में नए युग का सूत्रपात किया. सामंतवाद की गलाजत से मनुष्य जाति को छुटकारा दिलाने का ऐतिहासिक श्रेय पूंजीवाद को दिया गया है. इतिहास का हर पाठक यही मानेगा. पूंजीवाद कोई ऐसी व्यवस्था नहीं थी जो किन्हीं शैतानों द्वारा संसार पर थोप दी गई, बल्कि ऐतिहासिक विकास के एक अनिवार्य युग के रूप में इसे स्वीकार किया गया.

यदि पूंजीवाद न आया होता तो आज भी तुलसी की तरह यही माना जाता कि भगवान ने ही राजा को भेजा है, लिहाजा उस की आलोचना करने या उसे बदल सकने का सवाल ही पैदा नहीं होता. साथ ही लोग आज भी यही मानते हैं कि जो कुछ राम ने रच रखा है, वही होगा, तर्क करने से कुछ लाभ नहीं.

पूंजीवाद का उदय न होता तो आज भी हम सामंतों के दास बने उन के हुक्के-चिलम भर रहे होते और दिन भर की शरीर तोड़ देने वाली बेगार करने के बाद हमें शाम को यह उपदेश सुनने को मिलता.

राम कीन्ह चाहहिं सोई होई, करै अन्यथा अस नहिं कोई.

(राम जो करना चाहते हैं वही होता है. ऐसा कोई नहीं जो अन्यथा कर सके.)

'जीव करम बस सुखदुख भागी.' मतलब यह कि जीव जो भी सुखदुख भोगता है वह तो उस के कर्मों का फल है. पिछले जन्म में बुरे कर्म किए थे तभी अब शूद्र के घर पैदा हुए. गरीब हैं तो भी अपने कर्मों के फल भोग रहे हैं. परिश्रम कर के ही क्या होगा! बीमार हैं तो दवादारू क्यों की जाए! तुलसी ने साफ तो कहा है, "श्री रघुनाथजी की भक्ति संजीवनी जड़ी है. श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान यानी दवा के साथ लिया जाने वाला शहद है. यदि इस प्रकार का संयोग हो जाए तो रोग भले ही दूर हो जाएं, नहीं तो करोड़ों जतन कर लो, रोग जा ही नहीं सकते." देखिए निम्न पंक्तियां :

रघुपति भगति सजीवन मूरी, अनूपात श्रद्धा मति पूरी.
एहि विधि भलहिं सो रोग नसाहीं, नाहि त जतन कोटि नहिं जाहीं.

अधिकांश अंधविश्वासी बूढ़ेबुढ़ियां बीमारी में इलाज कराने से आनाकानी करते मिलते हैं. डाक्टरी इलाज में उन का विश्वास न होने के पीछे भी प्रकारांतर से तुलसी ही कारण हैं जिसे उद्धरित करते हुए ऐसे रूढ़िवादी लोग बड़ी ज्ञान बघारती मुद्रा में कह उठते हैं, "राम कृपा नासहिं सब रोगा.''इन लोगों के साथ अगर तर्क करो तो ये उल्टे आप ही के अज्ञान पर तरस खाते हुए समझाने लगेंगे, "सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा." (जो कुछ भी दैव सहावे, वह सब सहना ही पड़ता है.) और "प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई." (प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन हो ही नहीं सकता, ऐसा तो वेद भी कहते हैं.'

लोगबाग बड़ी से बड़ी बेवकूफी कर जाएंगे और उस की वजह से चाहे जितनी हानि उठानी पड़ी हो, मगर अपनी भूल स्वीकार कर भविष्य में सुधार कर लेने की बजाए बहुधा यही सोच कर टाल जाते हैं कि 'अब ईस अधीन जगु काहु न देइअ दोषु.' (जगत तो ईश्वर के अधीन है इसलिए किसी बात के लिए किसी को भी दोष नहीं देना चाहिए.) या फिर यह कि 'मेटि जाइ नहिं राम रजाई.' (राम की आज्ञा मिटाई नहीं जा सकती.)

बड़ी से बड़ी दुर्घटना घट जाएगी मगर उस की सहीसही जांच करने और कारण जान कर कोई काररवाई करने के स्थान पर तुलसी जैसे अंधविश्वासी भक्त के मन में यह दोहा कौंध जाएगा :

तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिलाई सहाइ,
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहां लै जाइ.

(तुलसीदास जी कहते हैं, "जैसी होनहार होती है, वैसी ही सहायता मिल

जाती है. या तो वह आप के पास आती है या आप को वहां ले जाती है.")

इस प्रकार के नियतिवादी उपदेशों को अपनीअपनी सुविधा के अनुसार और हालात के मुताबिक लोगबाग फिट कर लेते हैं और अपने को कर्मण्यता तथा मेहनत करने से साफ बरी कर ले जाते हैं. 'भगवान जब देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है' जैसी जनउक्तियां भी तुलसी के इसी नियतिवाद की ही देन हैं. लोगों को निकम्मा तथा काहिल बनाने में नियतिवाद की यह घातक भूमिका किसी भी विचारशील व्यक्ति से छिपी नहीं रही.

थोड़ी देर पहले हम जिस सामंती साजिश का जिक्र कर रहे थे, उसी संदर्भ को फिर से उठा कर एक बात और स्पष्ट करना चाहते हैं कि जनता के दिमाग को बौना बनाने के लिए मध्ययुग में व्यापक प्रचार के जो अड्डे स्थापित किए गए थे, उन्हें प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए प्रचार साहित्य यानी पुराणों में उन अड्डों का बारबार उल्लेख कराया गया और उन्हें तीर्थस्थानों की संज्ञा दी गई. चाहे जो पुराण उठा कर देख लें, इन तीर्थों की महिमा का बखान अवश्य मिलेगा. मगर तुलसी ने प्रचार के इन अड्डों की महत्ता प्रतिपादित करने में सब प्रचारकों से बढ़चढ़ कर योग दिया. मानस में इन शब्दों पर तो जरा गौर कीजिए :

आकर चारि जीव जग अहहीं, कासी मरत परम पद लहहीं.

(संसार में चार वर्णों के जीव हैं. काशी में मरने से सभी परम गति को प्राप्त होते हैं.)

इस दोहे में तुलसी ने एक तीर से दोदो शिकार किए हैं. एक तो यह सिद्ध करना चाहा कि यह वर्णव्यवस्था केवल भारत में या हिंदुओं में ही नहीं बल्कि पूरे संसार में है, दूसरे यह कि परम गति के लालच में सभी लोग काशी के प्रचार अड्डे की तरफ भागेंगे जहां उन्हें सभी तरह से मूंडा जा सकेगा—धन से भी, बुद्धि से भी.

फिर यही काशीमहात्म्य शिव के मुंह से भी वर्णित कराया गया है. पार्वती से शिवजी कहते हैं, "हे, पार्वती, राम के नामबल से काशी में मरते हुए प्राणी को देख कर उसे मैं शोक रहित कर देता हूं." (काशी मरत जंतु अवलोकी, जासु नाम बल करउं बिसोकी.) इस में शिवजी रामचंद्र की महिमा गाते भी जो दिखाए गए हैं, इस संदर्भ में खास बात गौर करने की यह है कि सभी देवताओं को एकदूसरे की तारीफ करते दिखाने की टैकनिक पूरे पौराणिक ग्रंथों में अपनाई गई है. इस से एक तो बहुदेववाद को बढ़ावा देने में मदद मिली, दूसरे यह कि अपने मुंह अपनी तारीफ करने की हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न होने से यथासंभव बचा ली गई. ठीक उसी चाल का यह रूपांतरण है जिस के द्वारा क्षत्रिय सामंतों ने अपनी महिमा खुद न गा कर ब्राह्मणों द्वारा अपना प्रचार कराया और ब्राह्मणों ने भी यथासंभव अपनी तारीफ अपने ग्रंथों के क्षत्रिय पात्रों द्वारा ही कराई है. फिर इन ग्रंथों को भी स्वरचित न कह कर दैवीय ग्रंथ घोषित

32/2

करने के पीछे भी उन का यही प्रचार हथकंडा था.

रामचंद्र गणेशजी और शिवजी का नाम जप कर तथा गंगाजी को सिर नवा कर ही आगे बढ़ते दिखाए गए हैं : "तब गनपति सिव सुमरि प्रभु नाई सुरसरिहि माथ."

एकएक तीर्थ की महिमा बखानने में कईकई पन्ने रंगे गए हैं. अयोध्याकांड में गंगा नदी और प्रयाग तीर्थ की तारीफ में दरजनों चौपाइयां और दोहे लिखे गए हैं. प्रयाग को तीर्थराज और गंगा को नदियों की रानी साबित किया गया है.

वन को जाते समय जिस जगह से राम ने गंगा पार की थी, उस जगह पर भरत द्वारा प्रणाम करवा कर उसे भी 'रामघाट' नामक तीर्थ घोषित कर दिया : "राम घाट कहं कीन्ह प्रनामू."

राम से मिलने जाते समय भरत जो तीर्थजल ले कर गए थे, उसे उन्होंने एक पहाड़ के समीप जिस कुएं में डाला था, उसे 'भरतकूप' कह कर पावन तीर्थ की संज्ञा देते हुए तुलसी कहते हैं :

भरत कूप अब कहहिं लोगा, अति पावन तीरथ जल जोगा.

लंका पर चढ़ाई करने जाते समय राम द्वारा 'रामेश्वरम्' नामक स्थान पर शिवलिंग की स्थापना करा के उसे भी तीर्थ बनवा डाला और खुद राम के मुंह से उस की महत्ता बखान करा दी :

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं, ते तनु तजि मम लोक सिधरिहिं.
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि, सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहिं.

(जो मनुष्य रामेश्वरजी का दर्शन करने आएंगे, वे शरीर छोड़ने के बाद स्वर्गलोक को जाएंगे और जो गंगाजल ला कर इस पर चढ़ाएंगे, वे मनुष्य तो बस मुक्त ही हो जाएंगे.)

साथ ही राम द्वारा शिव की तारीफ और जनता को चेतावनी दिलवाने का मौका भी हाथ से नहीं जाने दिया कि जो ऐसा नहीं करेगा वह घोर नरक में जाएगा :

संकर प्रिय ममद्रोही सिवद्रोही मम दास,
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुं बास.

(जिन को शंकर प्रिय हैं पर जो मेरे द्रोही हैं, और या जो शिव के द्रोही हो कर मेरे दास बनना चाहते हैं, वे मनुष्य कल्प भर घोर नरक में निवास करेंगे.)

इस धमकी के माध्यम से रामेश्वरम् में गंगाजल ले जाने की बात पर जो बल दिया गया है, सो भी अकारण नहीं. रामेश्वरम् है दक्षिण भारत में और वह भी अंतिम छोर पर, जब कि गंगा उत्तर भारत की नदी है. उत्तर के ब्राह्मणवाद को दूर दक्षिण की अनार्य जातियों के बीच प्रचारित कराने के लिए गंगाजल ले जा कर रामेश्वरम् के शिवलिंग पर चढ़वाने की चाल बड़ी गहरी

थी और इसे मनवाने के लिए नरक की धमकी भी जरूरी थी.

लंका विजय कर के लौटते हुए राम ने खुद और सीता के द्वारा उसी रामेश्वरम् स्थित महादेव के लिंग को प्रणाम करवा के उस के महात्म्य की पुष्टि करा दी : "सीता सहित कृपानिधि संभुहिं कीन्ह प्रनाम."

रास्ते में जब यमुना और गंगा पड़ीं तो राम द्वारा ही सीता से कहलाया गया कि प्रणाम करो :

बहुरि राम जानकिहि देखाई, जमुना कलि मल हरनि सुहाई,
पुनि देखी सुरसरी पुनीता. राम कहा प्रनाम करु सीता.

(फिर राम ने जानकी को कलयुग के पापों का हरण करने वाली सुहावनी यमुना के दर्शन कराए और इस के बाद पवित्र गंगा के दर्शन कराए. राम ने कहा, "हे सीता, इन्हें प्रणाम करो.")

उस के बाद जब वे प्रयाग पहुंचे तो फिर से उस का महात्म्य राम के मुंह से ही बखान करवाया, "अब फिर से इस तीर्थराज प्रयाग को देखो, जिस के दर्शन से ही करोड़ों जन्मों के पाप भाग जाते हैं. फिर परम पवित्र त्रिवेणीजी के दर्शन करो, जो शोकों को हरने वाली और हरि के परमधाम तक पहुंचने के लिए सीढ़ी के समान है." वर्णन है :

तीरथ पति पुनि देखु प्रयागा, निरखत जन्म कोटि अघ भागा.
देखु परम पावनि पुनि बेनी, हरनि सोक हरि लोक निसेनी.

लगे हाथों उन्होंने अवधपुरी के लिए भी प्रमाणपत्र ले लिया, "अब फिर अत्यंत पवित्र अयोध्यापुरी के दर्शन करो जो तीनों प्रकार के पापों और आवागमन रूपी रोग का नाश करने वाली है. (पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि, त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि.) और "ऐसा कह कर राम ने सीता सहित अवधपुरी को प्रणाम किया." (सीता सहित अवध कहुं कीन्ह कृपाल प्रनाम.)

फिर त्रिवेणी में आ कर प्रभु ने हर्षित हो कर स्नान किया और बानरों सहित ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिए :

पुनि प्रभु आइ त्रिवेनी हरषित मज्जनु कीन्ह.
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुं दान बिबिध बिधि दीन्ह.

स्पष्ट है कि जब स्वयं 'प्रभु' इन तमाम तीर्थों और नदियों को झुकझुक कर प्रणाम करते फिरे तथा उन में डुबकियां लगालगा कर गुणगान करते रहे और वहां के बंदरों व ब्राह्मणों को अनेक प्रकार की दानदक्षिणा देदे कर प्रसन्न होते रहे तो फिर अन्य तीर्थयात्री वही सब किए बिना कैसे रह सकते हैं! किसी भी यात्री की क्या मजाल जो ब्राह्मणों को दान दिए बिना लौट जाए!

इस सारे कर्मकांड का मकसद सिर्फ यह था कि साधारण जनता को अंधविश्वासों में घेर कर और भय दिखा कर काबू में रखा जा सके ताकि क्षत्रिय राजा और सामंत निर्भय हो कर हुकूमत करते रह सकें, ब्राह्मणों को हलवा-पूरी उपलब्ध होती रहे और उन की पुरोहिताई भी बनी रहे.

लेकिन उस सामंती षड्यंत्र और ब्राह्मणवाद के प्रचार का कुप्रभाव अब जो भारत की बहुसंख्यक जनता यानी हिंदुओं पर पड़ रहा है, उस की वजह से हमारा देश विश्व प्रगति की दौड़ में पिछड़ रहा है. तुलसी आदि ब्राह्मण पुरोहितवादियों के उपदेशों ने हिंदुओं को कायर और दब्बू बना कर रखा हुआ है और उन में आत्मविश्वास ही पैदा नहीं हो पाता. आर्थिक संकट के इस युग में भी लोग दब्बूपन और आतंकवश ब्राह्मणों को दानदक्षिणा देते हैं तथा तीर्थाटन आदि में अपना धन लुटाते रहते हैं फलस्वरूप वे और अधिक गरीबी और अधिक अशिक्षा के चंगुल में फंसते जा रहे हैं. राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो चुकने के बावजूद वे दिमागी गुलामी से मुक्त नहीं हो पा रहे.

कायरपन, व गुलामी भी कई तरह की होती है लेकिन संस्कारों की गुलामी हर प्रकार की गुलामी के मुकाबले कहीं ज्यादा तबाही पैदा करती है. कारण यह कि इस गुलामी की जड़ें बहुत गहरी होती हैं और वे कई दिशाओं में फैली होती हैं—एक तरफ धर्म को छूती हुई, दूसरी ओर से नैतिकता को और तीसरी तरफ सामाजिक सीमांतों को जहां कि व्यक्ति को अपने लोगों के बीच मानप्रतिष्ठा आदि के प्रश्न जुड़े होते हैं, पीढ़ियों के रस्मरिवाज और रिवायतें होती हैं.

तुलसी ने इन सारी जड़ों को इस कदर जहरीला बना के छोड़ा है कि हिंदू समाज की दशा आज जहरबाद के रोगी की सी हुई पड़ी है.

नियतिवाद का प्रचार करकर के लोगों को अकर्मण्य और कामचोर बना दिया गया है, जातिवाद फैला कर आपसी फूट पैदा कर दी गई है, अंधविश्वासों के द्वारा हिंदुओं को जहालत के अंधे कुएं में फेंक दिया गया है, तीर्थाटनों की आड़ में उन्हें कंगाल बना दिया गया है, ब्राह्मण वर्ग को उच्चत्व के दंभ में आलसी और मुफ्तखोर बना कर फेंका गया है और लाखों साधुओंभिखारियों की भीड़ तथा अनगिनत पंडोंमुस्टंडों के दल क्या हमारे देश के लिए बोझ नहीं बने हुए हैं?

और सब से बड़ा जुल्म जो तुलसी ने हिंदू जाति के साथ किया वह यह कि आधी से अधिक जनसंख्या को एकदम जड़ तथा हीन बना कर घरों में बांध के पटक दिया. हमारा इशारा नारी जाति की ओर है जो तुलसी के कोप का सर्वाधिक शिकार हुई है. फलस्वरूप उस का न मान रहा, न मरतबा. न ही वह सिर उठा कर समाज के विकास में सहायक हो सकी.

जिस समाज के धर्मगुरुओं की यह मान्यता हो कि स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख, नासमझ और जड़ होती है, वह समुदाय क्या कभी भी अपनी नारियों को चेतन मनुष्य का दरजा दे सकता है? और फिर भला नारी जाति को जड़ बना कर कभी कोई समाज प्रगति कर सकेगा?

'नारि सहज जड़ अग्य' जैसा फतवा तुलसी ने खुद सती के मुंह से दिलवा कर किसी बहस की गुंजाइश ही नहीं रहने दी. भला सती की उक्ति के विरुद्ध

तर्क कौन दे! जिस प्रसंग में यह उक्ति कही गई है, वह भी नारी को शक्की सिद्ध करने के लिए ही रखा गया है.

पार्वती का शिव से विवाह हो जाने पर मैना (पार्वती की मां) ने दामाद के पैर पकड़ कर कहा, "हे, नाथ, यह उमा मुझे अपने प्राणों के समान प्यारी है. आप इसे अपने घर की टहलनी बना कर रखिएगा." (नाथ उमा मम प्रान सम, गृह किंकरी करेहु)

जब पार्वती जैसी नारियों को पति के घर की नौकरानियां बनाने की याचना की गई तो फिर सामान्य हिंदु घरों में नारी को टहलनी से अधिक पद भला किस प्रकार मिल सकता है!

टहलनियों को अकारण त्याग कर अपने पुरुषार्थ का प्रदर्शन करने वालों की प्रशस्तियां गाते हुए तुलसी कहते हैं, "शिवजी के समान रघुनाथजी का व्रत धारण करने वाला कौन है जिस ने सती जैसी स्त्री को बिना पाप के त्याग दिया?"

सिव सम को रघुपति ब्रतधारी, बिनु अघ तजी सती असि नारी.

तुलसी ने नारी को किसी तरह से भी ज्ञानार्जन का अधिकार नहीं दिया है. प्रमाणस्वरूप पार्वती के मुंह से ही यह बात कहलवाई भी गई है. वह पति के मुंह से राम का यश वर्णन सुनने की इच्छा प्रकट करती है तो कहती है, "यद्यपि मैं स्त्री होने के कारण उसे सुनने की अधिकारिणी नहीं हूं, तथापि मैं मन, वचन और कर्म से आप की दासी तो हूं.

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी, दासी मनक्रम बचन तुम्हारी.

और शिव की दृष्टि में तथा तुलसी के अनुसार दासी शायद नारी भी नहीं रह जाती इसलिए शिव ने पार्वती की बात मान ली. पार्वती को केवल आश्वासन पा कर ही फिर से आत्महीनता की अभिव्यक्ति का दौरा पड़ जाता है, "हे, नाथ, आप की कृपा से अब मेरा विषाद जाता रहा और आप के चरणों के अनुग्रह से मैं सुखी हो गई, यद्यपि मैं स्त्री होने के कारण स्वभाव से ही मूर्ख और अज्ञानी हूं तो भी अब आप मुझे अपनी दासी जान कर राम का यश वर्णन कीजिए."

नाथ कृपा अब गयउ विषादा, सुखी भयउं प्रभु चरन प्रसादा.
अब मोहि आपनि किंकर जानी, जदपि सहज जड़ नारि अयानी.

मगर इतने पर शिवजी पार्वती को कोई विशेष गूढ़ ज्ञान की बात नहीं बताते बल्कि बच्चों को बहकाने के लिए जिस प्रकार माताएं या नानियां पशु-पक्षियों की कही हुई कहानियां सुनाने लगती हैं उसी तरह शिव कहने लगते हैं, "जिस कथा को काकभुशुंडि ने गरुड़ से कहा, वही सुनो." साथ ही इस बहाने तुलसी ने शिव के मुंह से रामचरितमानस का प्रोपेगेंडा भी करवा दिया: "सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल, कहा भुसुंडि बखानि सुनो बिहग नायक गरुड़."

राम आदि भाइयों का सीता आदि बहनों के साथ विवाह हो चुकने के बाद जनक और उन के भाई भी हाथ जोड़ कर दशरथ से कहते हैं, "इन लड़कियों को टहलनियां मान कर दयापूर्वक इन का पालन कीजिएगा. (ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई.) फिर राम के हाथों सीता को सौंपते हुए उन से भी इसी तरह कहते हैं. "तुलसी सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी." (हे, तुलसी के स्वामी, इस के शील और स्नेह को देख कर इसे अपनी दासी कर के मानिएगा.)

स्त्री को तुलसी इस योग्य नहीं समझते कि उस का विश्वास किया जाए. स्त्री पर विश्वास का क्या फल होता है, उसे दशरथ के मुंह से ही कहलवाया गया है, "हा, किस अवसर पर क्या हो गया! स्त्री का विश्वास कर के मैं वैसे ही मारा गया जैसे योग का सिद्धिरूपी फल मिलने के समय योगी को अविद्या नष्ट कर देती है."

कवने अवसर का भयउ गयउं नारि बिस्वास,
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास.

इस प्रकार यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि स्त्री पर विश्वास करना अज्ञान और अविद्या के वश में होना है.

मगर तुलसीदास के मतानुसार इस प्रकार अगर ज्ञान जाता भी रहे तो इस के लिए दोषी पुरुष नहीं है. राजा दशरथ के बारे में तुलसी की टिप्पणी उद्धरित है:

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु, अबला बिबस ग्यानु गुन गाजनु.
एक धरम परमिति पहिचाने, नृपहि दोसु नहि देहिं सयाने.

(जो हठ कर के—कैकई की बात को पूरा करने में अड़े रह कर—खुद सब दुखों के पात्र हो गए. स्त्री के विशेष वश में होने के कारण मानो उन का ज्ञान और गुण जाता रहा. जो लोग धर्म की मर्यादा जानते हैं और सयाने हैं, वे राजा को दोष नहीं देते.)

तुलसी के अनुसार: "स्त्रियों के हृदय की गति विधाता भी नहीं जान सका. स्त्री तो संपूर्ण कपट, पाप और अवगुणों की खान है (बिधिहुं न नारि हृदय गति जानी, सकल कपट अघ अवगुन खानी.) और स्त्री के स्वभाव के बारे में तो सब सत्य ही कहते हैं कि उस के हृदय में आठों अवगुण सदा मौजूद रहते हैं. वे आठ अवगुण हैं: साहस, झूठ, चंचलता, माया (छल), भय (डरपोकपन), अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता."

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं, अवगुन आठ सदा उर रहहीं.
साहस अनृत चपलता माया, भय अबिबेक असौच अदाया.

इसी लिए नारी के लिए तुलसी ने यह आदेश दिया है:

ढोल गंवार सूद्र पसु नारी, सकल तारना के अधिकारी.

मगर मार खाती रहने के बावजूद नारी को यह अधिकार नहीं है कि वह

अपने अपमान का प्रतिकार कर सके क्योंकि इस से भी पति का अपमान होता है और पति चाहे बूढ़ा हो, रोगी हो, मूर्ख हो या अंधा, बहरा, जालिम, दरिद्र चाहे जैसा हो उस का भी अपमान करने से नारी नरक में जाएगी और वहां यमपुरी में उसे भांतिभांति के दुख झेलने पड़ेंगे.

वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना, अंध बधिर क्रोधी अति दीना.
ऐसेहु पति कर किएं अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना.

अतः नारी का तो सिर्फ एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है, यानी उस के जीवन का एक मात्र लक्ष्य यही एक है कि वह शरीर, बचन और मन से पति के चरणों में ही पड़ी रहे:

एकइ धर्म एक व्रत नेमा, काय बचन मन पति पद प्रेमा.

और मजे की बात यह कि सिर्फ इस प्रकार चरणों में पड़ी रहना भी काफी नहीं है. धर्म और नैतिकता के निर्वाह के लिए ही जो स्त्री पतिव्रता बनी रहती है, तुलसी की दृष्टि में वह भी 'अधम' है. उस के लिए भी रौरव नरक का ही विधान है. स्वर्ग तो जैसे स्त्री के लिए है ही नहीं क्योंकि वह तो स्वभाव और जन्म से ही अपावन और अपवित्र होती है (सहज अपावनि नारि.)

ऊपर के पैरा में जो बात हम ने कही है, उस के प्रमाण स्वरूप तुलसी की पंक्तियां उद्धरित करना आवश्यक है:

बिनु अवसर भय तें रह जोई, जानेसु अधम नारि जग सोई.

(अवसर न रहने पर तथा भय वश भी जो पतिव्रता बनी रहती है, वह जगत में अधम स्त्री है.)

स्त्री को वह स्वभाव से ही अपवित्र मान कर चलते हैं और उन को विश्वास है कि स्त्री किसी भी पुरुष को देखते ही विवश हो जाती है, चाहे वह पुरुष उस का सगा भाई, पिता व पुत्र ही क्यों न हो! नारी किसी भी पुरुष को देखते ही अपने मन पर नियंत्रण खो बैठती है, ठीक उस प्रकार जैसे सूर्यकांतमणि सूर्य को देखते ही पिघल जाती है:

भ्राता पिता पुत्र उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी.
होइ बिकल सक मनहि न रोकी, जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी.

नारी जाति को ही सारे अवगुणों और दुखों की जड़ सिद्ध करने के लिए तुलसी ने एक लंबा प्रसंग और जोड़ा है. नारद मुनि राम से पूछते हैं, "जब मैं विवाह करना चाहता था तब आप ने मुझे करने क्यों नहीं दिया था?"

तब विवाह मैं चाहउं कीन्हा, प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा?

नारद के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए राम कहते हैं, "काम, क्रोध, लोभ, और मद आदि मोह अथवा अज्ञान की प्रबल सेना है. इन में मायारूपिणी स्त्री तो अत्यंत दारुण दुख देने वाली है. जपतप नियमरूपी संपूर्ण जल के स्थानों को स्त्री ग्रीष्मरूप हो कर सर्वथा सोख लेती है. स्त्री ही एक मात्र कारण है जिस से काम, क्रोध, मद और मत्सर (डाह) उत्पन्न होते हैं. सभी बुरी वासनाएं

बढ़ाने वाली भी एक मात्र स्त्री ही है. स्त्री तो धर्म के सारे कमल जला डालती है. पाप और अंधकार का कारण भी केवल नारी ही है. स्त्री ही बुद्धि, बल, शील और सत्य का नाश करने वाली है. वह सारे अवगुणों की मूल है, पीड़ा देने वाली है और सारे दुखों की खान है. इसी लिए हे, मुनि, मैं ने तुम्हें विवाह करने से रोका था," तुलसी के ही शब्दों में:

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कें धारि.
तिन्ह मंह अति दारुन दुखद मायारूपी नारि.
जपतप नेम जलाश्रय धारी, होइ ग्रीष्म सोषइ सब नारी.
काम क्रोध मद मत्सर भेका, इन्हहि हरषप्रद बरषा एका.
दुर्बासना कुमुद समुदाई, तिन्ह कहं सरद सदा सुखदाई.
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा, होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा.
पाप उलूक निकर सुखकारी, नारि निबिड़ रजनी अंधियारी.
बुधि बल सील सत्य सब मीना, बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना.
अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि,
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियं जानि.

अब जरा इन विचारों के कुप्रभाव पर विचार कर लें. स्पष्ट है कि सामान्य धर्मभीरु और तुलसी प्रेमी या रामभक्त के मन में यह विश्वास जम सकता है कि औरत जब इस कदर गलत और बुरी चीज है तो उस से ब्याह ही नहीं करना चाहिए और अगर किया भी जाए तो उसे ढोल, गंवार, शूद्र और पशु की तरह हरदम मारते ही रहना चाहिए.

दूसरी तरफ समाज का आधा भाग अपने बारे में ऐसे फतवे सुनसुन कर आत्मविश्वास खो बैठता है. बचपन से ले कर बुढ़ापे तक हिंदू औरतों से जिस प्रकार का व्यवहार किया जाता है, वह उन्हें परावलंबी, आत्महीन, दब्बू और नाकारा बना देता है.

हिंदू नारी की ऐसी स्थिति के कारण ही समाज में यह भावना पनपी कि जब इतनी गलत और बुरी चीज अपनाई जाए तो साथ में क्षतिपूर्ति स्वरूप बहुत सा धन और सामान लिया जाए. क्षतिपूर्ति के इस साध्यम को दहेज का नाम दिया गया और इस की महत्ता का बखान भी किया गया.

तुलसी ने जहांतहां अवसर निकाल कर दहेज प्रथा की पुष्टि करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी. उदाहरणार्थ, शिव के विवाह के समय पार्वती के दहेज का प्रसंग देख लें या राम के विवाह के समय सीता के दहेज के लंबेचौड़े विवरण पढ़ लें. बेशुमार दासदासियां, असंख्य रथ, हाथीघोड़े, गाएं तथा गाड़ियों में लादलाद कर सोना, कपड़ा आदि देने के बावजूद जब पार्वती जैसी लड़की का बाप अपने दामाद के आगे हाथ जोड़ता है और लड़की की मां अपने जमाई के पैर पकड़ती है तो फिर सामान्य हिंदू लड़की के मांबाप की क्या बिसात! इतना कुछ देने पर भी जब हिमाचल कहता है कि मैं जमाई को दे ही क्या सकता हूं,

तब कोई हिंदू बाप अपनी बेटी को दहेज देते समय यह बात भला कैसे भूल सकता है कि:

दासीं दास तुरग रथ नागा, धेनु बसन मनि वस्तु बिभागा.
अन्न कनक भाजन भरि जाना, दाइज दीन्ह न जाइ बखाना.
दाइज दियो बहु भांति पुनि कर जोरि हिम भूधर कह्यो,
का देउं पूरन काम संकर चरन पंकज गहि रह्यो.
सिव कृपा सागर ससुर कर संतोषु सब भांतिहि कियो,
पुनि गहे पद पाथोज मयना प्रेम परिपूरन हियो.

इसी प्रकार राम आदि भाइयों के विवाह के प्रसंग में दहेज की महिमा बखानी गई है :

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी, सकल कुंअर ब्याहे तेहिं करनी.
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी, रहा कनक मनिमंडप पूरी.
कंबल बसन बिचित्र पटोरे, भांतिभांति बहु मोल न थोरे.
गज रथ तुरग दास अरु दासी, धेनु अलंकृत कामदुहा सी.
बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा, कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा.
लोकपाल अवलोकि सिहाने, लीन्ह अवधपति सबु सुखु माने.

(राम के विवाह की जैसी विधि वर्णन की गई है, उसी रीति से सब राजकुमार व्याहे गए. दहेज की अधिकता कुछ कही नहीं जाती. सारा मंडप सोने और मणियों से भर गया. बहुत से कंबल, वस्त्र और तरहतरह के विचित्र रेशमी बहुमूल्य कपड़े और हाथी, घोड़े, दासदासियों और गहनों से सजी हुई कामधेनु सरीखी गाएं. इतनी सारी चीजें हैं कि उन की गिनती ही नहीं की जा सकती, न ही वर्णन किया जा सकता है. जिन्होंने देखा है, वही जनते हैं. दहेज देख कर तो लोकपाल भी सिहर गए. अवधराज दशरथ ने सुख मान कर प्रसन्न मन से सारा दहेज ग्रहण किया.)

फिर जब बारात विदा हुई तो जनक ने एक बार और दहेज दिया. दहेज का ब्योरा देते हुए तुलसीदासजी कहते हैं:

भरिभरि बसहं अपार कहारा, पठई जनक अनेक सुसारा.
तुरग लाख रथ सहस पचीसा, सकल संवारे नख अरु सीसा.
मत्त सहस दस सिंधुर साजे, जिन्हहि देखि दिसिकुंजर लाजे.
कनक बसन मनि भरिभरि जाना, महिषी धेनु बस्तु बिधि नाना.
दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेह बहोरि,
जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि.
"सबु समाज, एहि भांति बनाई, जनक अवधपुर दीन्ह पठाई.

(अनगिनत बैलों और कहारों पर लादलाद कर सारी खाने की सामग्री भेजी गई. साथ ही जनक ने अनेक सुंदर शैयाएं (पलंग) भेजीं. एक लाख घोड़े और 25,000 रथ, जो सब के सब नख से शिख तक सजे हुए थे. 10,000 मतवाले

हाथी थे जिन्हें देख कर दिशाओं के हाथी भी लजा जाते हैं. गाड़ियों में भर-भर कर सोना, वस्त्र और हीरेजवाहरात और भैंसें, गाएं और नाना प्रकार की चीजें दीं. इस प्रकार जनक ने फिर से अपरिमित दहेज दिया. इस दहेज का वर्णन नहीं किया जा सकता और इसे देख कर लोकपालों के लोकों की संपदा भी थोड़ी जान पड़ती है. इस तरह से सारा सामान सजा कर जनक ने अयोध्यापुरी को भेज दिया.)

ऊपर के उद्धरणों से यह प्रकट होता है कि तुलसी ने एक ही ब्याह में दोदो बार दहेज देने की प्रथा को समर्थन दिया है. शादीविवाह में अपनी सामर्थ्य से भी आगे बढ़ कर खर्च करने का उपदेश ग्रहण कर आज जितने हिंदू परिवार कर्ज के बोझ तले पिस रहे हैं, उन सब की दुर्गति का दायित्व तुलसी की सड़ीगली विचारधारा पर है.

दहेज प्रथा के खिलाफ कानून बना देने भर से ही कुछ हासिल न होगा. इस सामाजिक कोढ़ को दूर करने के लिए सब से पहली जरूरत यह है कि धर्म और सामाजिक मर्यादा के नाम पर फैलाए जा रहे उन कीटाणुओं को नष्ट किया जाए जो तुलसी की रामायण सरीखे ग्रंथों में भरे पड़े हैं और जिन के प्रचारप्रसार के विरुद्ध कोई कानून अभी तक नहीं बनाया जा सका.

ब्राह्मण पुरोहितवाद के प्रचार की इस सामंती साजिश का भंडाफोड़ करना भी आज के हर जागरुक व्यक्ति का कर्तव्य है. यह भी ठीक है कि इस प्रकार की कड़वी सचाइयां जान कर कुछ लोगों को बुरा लगेगा लेकिन सिर्फ इस कारण सत्य पर परदा पड़ा रहने देना बौद्धिक कायरता का प्रतीक है.

अंधविश्वासों और परंपराओं में भले ही बहुत कम अंतर है, फिर भी उस अंतर को समझ कर स्वस्थ परंपराओं को आगे बढ़ाने और अंधविश्वासों व रुढ़ियों को त्यागते चलने में ही मानव प्रगति का रहस्य छिपा हुआ है.

परंपराओं के अंतर्गत इतिहास और ज्ञानविज्ञान की वे सीढ़ियां हैं जिन पर एकएक कदम भरते हुए हम दिनोंदिन ऊपर चढ़े हैं, जब कि अंधविश्वास उन व्यावहारिक कुरीतियों से जुड़े होते हैं जो अपना उद्योग खो चुकने के बावजूद अज्ञात तथा अभ्यासवश हमारी व्यवहार नीति में हस्तक्षेप करते चलते हैं. व्यवहार मर्यादा हमेशा ही तात्कालिक स्थितियों के अनुरूप निर्धारित की जाती है. उस की सर्वकालिक महत्त्व या उपयोगिता नहीं होती. साथ ही उस का संबंध तत्कालीन समाज के विभिन्न वर्गों में से किसी एक और राजनीतिक या आर्थिक स्वार्थों वाले मानव समूहों की आपसी होड़ के साथ भी होता है. इसलिए व्यवहार मर्यादा को सभी लोगों के लिए हर युग में एक सी मान कर चलना भी गलत होगा.

इसी प्रकार एक विशेष युग के मर्यादा पुरुषोत्तम आदर्श व्यक्ति का उदाहरण किसी दूसरे जमाने के व्यक्ति के लिए भी हितकर ही हो, यह जरुरी नहीं, बल्कि आम तौर से अहितकर ही होता है. अतः उसे त्याग देने में ही भला है. यों भी राम में इतनी खामियां थीं कि उन की मर्यादा पर और उन के

पुरुषोत्तम होने पर हंसी आती है.

व्यवहार मर्यादा के तथाकथित आदिम ग्रंथ 'रामचरितमानस' की असंगतियों की एक हलकी सी झांकी प्रस्तुत है:

तब मयना हिमवंतु अनंदे, पुनिपुनि पारवती पद बंदे.

(तब मैना और हिमवान ने आनंद में मग्न हो कर बारबार पार्वती के चरणों की वंदना की.)

मातापिता द्वारा पुत्री की चरण वंदना कौन से समाज की व्यवहार मर्यादा है, यह समझ में नहीं आता!

इसी प्रकार ('गणपतिहि पूजेउ संभु भवानी') यानी शिव और पार्वती द्वारा अपने पुत्र की पूजा दिखाने में किस लोकमर्यादा का पालन कराया गया है, यह रहस्य भी तुलसी ही जानें!

कौशल्या का राम के चरणों में सिर नवाना (नयन मूंदि चरननि सिरु नावा) भी शायद तुलसी को मर्यादा का उल्लंघन नहीं लगा. इसी तरह अनेक प्रसंग ऐसे गिनाए जा सकते हैं जहां सामाजिक रूप से नियत व्यवहार मर्यादा के गलत आदर्श सामने लाते हैं.

भरत अपनी माता को संबोधित करते हुए उसे 'पापिनी' और 'कुल नाशिनी, तक कह डालते हैं: ''पापिनि सबहि भांति कुल नासा.'' केवल इतना ही नहीं, पुत्र के मुंह से माता को यहां तक कहलवाया गया है कि 'अरी, कुमति! तेरी जीभ नहीं गली? तेरे मुंह में कीड़े नहीं पड़े? तू तो पाप, कपट और अवगुणों की खान है. तू पैदा ही क्यों हुई? हुई भी तो बांझ क्यों न हुई?' (जब तैं कुमति जिय ठयऊ... गरि न जीह मुंह परेउ न कीरा...सकल कपट अघ अवगुण खानी...कैकई कत जनमी जग माझा, जो जनमि त भई का न बांझा.)

(स्त्री पर हाथ उठाना और उसे बेतरह पीटना, घायल कर डालना आखिर किस व्यवहार मर्यादा में शामिल है?

मगर राम और लक्ष्मण पहले तो सूर्पणखा से छेड़छाड़ और मजाकठट्ठा करते हैं, फिर उस के नाककान काट डालते हैं. इसी प्रकार लक्ष्मण का छोटा भाई शत्रुघ्न मंथरा को लातों से मारमार कर उस की कमर तोड़ डालता है, सिर फोड़ देता है, दांत निकाल देता है और उसे खून में लथपथ कर डालता है:

हुमगि लात तकि कूबर मारा, परि मुंह भर महि करत पुकारा.
कूबर टूटेउ फूट कपारू, दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू.

'मर्यादा पुरुषोत्तम' राम से ऐसीऐसी हरकतें करवाई गई हैं कि मर्यादा का सिर भी शर्म से झुक जाए! सूर्पणखा वाला उदाहरण तो बहुचर्चित है ही, सीता को बिना दोष के ही बुराभला कहने वाले प्रसंग भी किसी से छिपे नहीं हैं. रावण के रहते हुए विभीषण को राजतिलक कर देना भी सरासर अनीति थी और इस राजतिलक के बाद पहली ही जो बात उस से पूछी गई, वह बताए कि समुद्र पार करने का उपाय क्या है? स्वार्थ साधन के लिए गिरा मनुष्य जोजो

हरकतें कर सकता है, वही 'मर्यादा पुरुषोत्तम' के चरित्र से उभरती हैं.

(सिर्फ राम ही नहीं, उस के सेवक और भक्तों की भी यही हरकतें हैं. हनुमान रावण से कहता है, "मैं तेरी स्त्रियों सहित सीता को ले जाऊंगा." (तव जुवतिन्ह समेत सठ जनकसुतहिं ले जाऊं.)

और राम के सैनिक केवल ऐसी धमकी ही नहीं देते बल्कि व्यवहार में भी सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन करते हुए स्त्रियों को बाल से पकड़ कर घरों से बाहर घसीट लाते हैं :

धरि केस नारि निकारि बाहिर तेऽतिदीन पुकारहीं.

इस सब के विपरीत रावण की व्यवहार मर्यादा यह रही कि वह सीता को उस की इच्छा के विरुद्ध छू भी नहीं सकता, बाल पकड़ कर घसीटना या बलात्कार करना तो बड़ी दूर की बातें हैं. लेकिन फिर भी रावण को दानव और राम को देवता क्यों कहा गया?

दो जीवनदर्शनों के संघर्ष के रूपक स्वरूप ही रामायण को लिया और समझा जा सकता है. एक दृष्टि भौतिक चिंतन की है जिस का प्रतिनिधित्व रावण के माध्यम से हुआ है और दूसरा है शरीर और आत्मा को अलगअलग मानने वाला दर्शन जिस का प्रतिनिधि राम है. आर्यों ने भारत पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की थी. इस प्रकार भारत के मूल निवासियों के मुकाबले में उन्होंने अपने को उच्च और अच्छा मान लिया था. 'आर्य' शब्द का अर्थ 'अच्छा' और 'भला' है भी. आर्यों को अपनी शक्लसूरत का भी बड़ा गुमान था क्योंकि वे मूल भारतीयों की अपेक्षा गोरे रंग और तीखे नक्श वाले थे. साथ ही उन्हें अपनी सभ्यता पर भी गर्व था, हालांकि मूल भारतीयों की नागरिक सभ्यता आर्यों की सभ्यता की तुलना में कहीं अधिक बढ़ीचढ़ी और उन्नत थी. यह तथ्य अब सिंधु घाटी सभ्यता के मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में प्राप्त अवशेषों से पूर्णतया स्थापित हो चुका है.

आर्यों को भारत में आए तीन हजार वर्ष से कुछ ही ऊपर का समय बीता है, जब कि सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेष लगभग पौने चार हजार साल पुराने हैं. आर्य सभ्यता का प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद भी ईसा पूर्व 1200 में रचा गया माना जाता है, जब कि सिंधु सभ्यता कम से कम 2500 ईसा पूर्व की तो प्रमाणित हो ही चुकी है. इस बात में भी अब कोई संदेह नहीं रहा कि भारत के मूल निवासी, जिन में द्रविड़ मुख्य थे, आर्यों की अपेक्षा कहीं अधिक सभ्य, सुशिक्षित और उन्नत थे. भाषा, कला, स्थापत्य, नगर संयोजना और अन्य क्षेत्रों में भी उन का ज्ञान अधिक विकसित था. विदेशी आक्रमणकारियों ने द्रविड़ों को हरा कर दक्षिण में खदेड़ दिया और उत्तर भारत में अपना राज्य स्थापित कर के अपने को उच्च और विकसित घोषित कर दिया. उन्होंने मूल निवासियों के नगरों को ध्वंस कर डाला, उन्हें असभ्य, काले, नीच, दानव और राक्षस तक कहना शुरू कर दिया. यही कारण था कि मूल निवासियों ने भी आर्यों को कभी

अच्छी दृष्टि से नहीं देखा.

लेकिन जब भी दो संस्कृतियां लंबी अवधि तक एकदूसरे के संपर्क में रहती हैं तो प्रभाव ग्रहण करने की स्वाभाविक प्रक्रिया भी शुरू हो ही जाती है. अंगरेजों को हम शुरू से नफरत की निगाह से देखते रहे हैं मगर इस के बावजूद हम उन की संस्कृति और सभ्यता से किस कदर प्रभावित हुए हैं, इसे बताने की जरूरत नहीं. इसी तरह मूल भारतीयों के रहनसहन और व्यवहार के ढंग धीरेधीरे आर्यों का प्रभाव ग्रहण करने लगे और आर्य लोग भारतीय तौरतरीके अपनाने लगे. उदाहरणार्थ, त्याग और ब्रह्मचर्य आदि चीजों से आर्यों का कोई संबंध न था, मगर भारतवासियों में त्याग और ब्रह्मचर्य को महत्त्वपूर्ण माना जाता था. इसी प्रकार आर्य लोग केवल यज्ञशालाओं में ही आपस में मिल बैठते थे, जब कि भारतीयों के मिलनस्थल नदियों के किनारे हुआ करते थे. धीरेधीरे यज्ञ और तीर्थ दोनों मिल गए.

वर्ण व्यवस्था का इतिहास भी वैसा नहीं है जैसा कि साधारणतया समझा जाता है. अस्पृश्यता भी कब शुरू हुई, यह ठीकठीक तो नहीं कहा जा सकता मगर इतना निश्चित है कि पहले सिर्फ आर्थिक आधार पर समाज का विभाजन किया गया था, जन्मगत रूप बहुत बाद में आया.

धर्मशिक्षकों के वर्ग को ब्राह्मण, व्यापारियों को वैश्य, राजाओं और योद्धाओं को क्षत्रिय तथा किसानों और मजदूरों को शूद्र कहा जाता था. जाति और रंगभेद के आधार पर वर्ण विभाजन का उल्लेख महाभारत में ही सब से पहले मिलता है, यानी लगभग ढाई हजार वर्ष. पूर्व, क्योंकि महाभारत का रचनाकाल 400 से 200 ईसा पूर्व का ही माना गया है. (हालांकि कुछ लोग इसे बौद्धकाल से भी पहले की रचना मानते हैं पर इस मान्यता का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता.) महाभारत में भृगु द्वारा वर्णों का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है. वह भारद्वाज को संबोधित कर कहते हैं, "ब्राह्मण गोरे रंग के, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीले और शूद्र काले होते हैं" (महाभारत, शांति पर्व-188 5,)

दक्षिण भारत में छूतछात क्योंकि आज भी उत्तर भारत की अपेक्षा अधिक है इस आधार पर कुछ लोग अस्पृश्यता को वैदिक युग से पहले की चीज मानते हैं. लेकिन यह कोई ठोस आधार नहीं माना जा सकता क्योंकि बाद में ग्रहण की हुई चीज भी अधिक प्रभावशाली हो सकती है. उदाहरणार्थ उत्तर भारत के हिंदुओं में आर्यकालीन यज्ञों के स्थान पर द्रविड़ों के प्रभाव से मूर्तिपूजा की प्रथा या इंद्र आदि देवताओं की अपेक्षा दक्षिण भारतीय देवता शिव का प्रभाव, या फिर यज्ञशालाओं के स्थान पर नदी किनारे के तीर्थ स्थानों की महत्ता आदि.

स्वयं भक्ति की भावना भी अनार्य प्रभाव है. 'पद्मपुराण' में इस का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि भक्ति की लहर दक्षिण भारत की द्रविड़ जाति के संसर्ग से ही उत्तर भारत की आर्य जातियों में आई. इसी के कारण वैदिक आचार्यों के स्थान पर नए प्रकार के गुरुओं का महत्त्व उभर कर सामने आया. मंदिरों

ग्रौर मूर्तियों का भी ग्रस्तित्व द्रविड़ जाति के संपर्क का ही प्रभाव है.

ग्राक्रमणकारी व विजेता होने के बावजूद ग्रार्य लोग क्योंकि ग्रल्पसंख्यक थे, इसलिए उन की चतुराई का ही प्रमाण था जो उन्होंने बहुमत के सामान्य विश्वासों को स्वीकृति प्रदान कर के ग्रपना मत फैलाना उचित समझा. हालांकि यह सूझ भी ग्रार्यों को पहले से ही नहीं ग्रा गई थी, बल्कि बहुत लड़भिड़ कर ही वे इस नतीजे पर पहुंचे थे कि जनभावना को शोषित करने का सर्वोत्तम ढंग यही होगा कि उसे जनता की मान्यताग्रों के माध्यम से ही मरोड़ कर ग्रपने विचार उन पर थोप दो, तभी वे उन्हें ग्रपना सकेंगे.

यही प्रवृत्ति बढ़ती हुई मध्ययुग तक पहुंचतेपहुंचते ग्रपनी पकड़ इस कदर मजबूत कर गई कि तुलसी ग्रादि सामंतवादी प्रचारकों ने ग्रपनी रचनाग्रों में खुल कर एक ग्रवैज्ञानिक चिंतन की विजय घोषित कर दी. शरीर ग्रौर ग्रात्मा को ग्रलगग्रलग मान कर चलना निस्संदेह एक ग्रवैज्ञानिक विचारधारा थी. राम की रावण पर विजय दिखाना इसी विचारधारा की जीत सिद्ध करने का प्रयास था ग्रौर इस काम के लिए यह जरूरी था कि राम को ग्रवतार के रूप में पेश किया जाता क्योंकि ग्रवतारवाद भी द्रविड़ मान्यता थी, वैदिक नहीं.

साथ ही यह चाल भी ग्रनिवार्य थी कि राम के द्वारा दक्षिण भारतीय देवता शिव को महान घोषित करवाया जाता ग्रौर रामेश्वरम् में शिवलिंग स्थापित करा के उस की पूजा करवाई जाती. द्रविड़ मान्यताग्रों के ग्रनुरूप ही तीर्थ स्थानों की महिमा का बखान करवाया गया लेकिन इन सब बातों का ग्रभिप्राय यही था कि शिव जैसे सर्वश्रेष्ठ देवता के मुंह से राम की बड़ाई कराई जाए ताकि ग्रनार्य लोग उस के बड़प्पन को स्वीकार कर लें. शिव द्वारा राम की पूजा ग्रौर भक्ति के पीछे भी यही मंतव्य स्पष्ट है.

राम द्वारा शिवधनुष तुड़वाया जाना भी राम को शिव से ग्रधिक शक्तिशाली सिद्ध कराना है ग्रौर शिव से ग्रमरत्व का वरदान प्राप्त करने वाले रावण की राम के हाथों हत्या दिखा कर भी यही बात प्रमाणित की गई है. वरना वेदों में ग्रवतारों का कहीं कोई उल्लेख नहीं है. मनुष्य ग्रौर तथाकथित भगवान के बीच ग्रवतार नाम के बिचौलिए का ग्रस्तित्व किसी वेद ने नहीं स्वीकारा.

इस के ग्रलावा तुलसी ने मूल रामकथा के तथ्यों को भी बेतरह तोड़मरोड़ कर प्रस्तुत किया है. वाल्मीकि ने तो रामकथा के माध्यम से राम के चरित्र पर परोक्ष रूप से व्यंग्य ही किया है. दूसरे शब्दों में हम 'वाल्मीकि रामायण' को ग्रप्रत्यक्ष शैली में लिखी गई एक व्यंग्य रचना भी कह सकते हैं. उस में वर्णित राम ग्रारंभ से ग्रंत तक कुंठाग्रों से घिरा एक मनस्तप्त व्यक्ति है जो ग्राखिर ग्रपनी कुंठाग्रों से तंग ग्रा कर सरयू नदी में डूब कर ग्रात्महत्या कर लेता है. इस के ग्रतिरिक्त इस प्रकार के कुंठित पात्र के निकट संपर्क में जितने भी व्यक्ति ग्राते हैं, उन सब की दुर्दशा होती है. सीता जैसी पत्नी के चरित्र पर भी उसे बारबार परीक्षाएं ले कर जब विश्वास नहीं होता तो वह उसे गर्भ-

वती होने पर भी जंगलों में छुड़वा देता है ताकि जंगली पशुओं द्वारा उस का अंत हो जाए. सीता इस प्रकार बारबार अपमानित हो कर खड्डे में कूद कर आत्महत्या कर लेती है.

इसी तरह एक जरा सी बात पर राम ने लक्ष्मण जैसे भाई को देशनिकाले का दंड दे कर जब उस का अपमान किया तो वह भी सह न सका और उस ने भी सरयू में डूब कर आत्महत्या कर ली. अपने जीवन की सारी हरकतों और अपने पूरे जीवनदर्शन का खोखलापन महसूस कर के ही तो अंत में राम को खुद भी आत्महत्या के अतिरिक्त कोई मार्ग न सूझा था. लेकिन वाल्मीकि का व्यंग्य केवल इसी बात से पूरा नहीं होता. वह तो कुल मिला कर यह सिद्ध करना चाहता था कि इस प्रकार के कुंठित और अवैज्ञानिक विचारधारा वाले राजा खुद तो डूबते ही हैं, साथ ही सारी प्रजा को भी ले डूबते हैं. इसी लिए रामायण के अंत में राम अकेला नहीं डूबता बल्कि अयोध्या के सभी नागरिकों सहित सरयू में समाता हुआ दिखाया गया है.

इस के विपरीत तुलसी ने राम को मनुष्य से हटा कर अवतार बना डाला है और वे सभी प्रसंग जानबूझ कर टाल दिए है जिन में व्यंग्य ध्वनित होता था. रामचरितमानस में न तो सीता के त्याग का प्रसंग है, न लक्ष्मण के त्याग का. उस में न ही राम द्वारा सरयू में डूब कर आत्महत्या करने का उल्लेख है, न अयोध्यावासियों को ले डूबने का. यहां तक कि सीता, लक्ष्मण राम आदि किसी की भी मृत्यु का कोई जिक्र उस में नहीं है. तुलसी ने रामराज्य के गुण-गान करतेकरते और ब्राह्मणपुरोहितवाद की प्रशस्तियां गातेगाते ही अपना ग्रंथ समाप्त कर डाला है. सच तो यह है कि रामराज्य एक आदर्श कल्पना या 'यूटोपिया' के सिवा और कुछ नहीं है.

अवैज्ञानिक चिंतन पर आधारित राज्यव्यवस्था कोरी कल्पना के अलावा और हो भी क्या सकती है! विचार की अलग सत्ता स्वीकार कर चलना, आत्मा और शरीर में भेद मान कर चलना, परलोक और पुनर्जन्म की कल्पना में ही जीवन नष्ट कर डालना आदि बातें उस अवैज्ञानिक चिंतन का अंग हैं जिस का प्रतिनिधि पात्र राम है.

वाल्मीकि ने इसी अवैज्ञानिक विचारधारा की स्पष्ट शब्दों में आलोचना भी कई स्थलों पर की है. उदाहरणार्थ, जाबाली नामक एक विद्वान राम को संबोधित कर के कहता है "मैं उन व्यक्तियों के लिए चिंतित हूं जो इस लोक की चिंता छोड़ कर परलोक की चिंता में डूबे रहते हैं और अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं. मैं और किसी व्यक्ति के लिए चिंतित नहीं हूं. चिंत्य वे लोग हैं जो हर वर्ष अपने मरे हुए पितरों का श्राद्ध करने के नाम पर अन्न नष्ट करते हैं.

"हे, राम, क्या कभी मृत व्यक्ति भोजन खा सकता है? तो फिर यात्रा पर जाते समय लोगबाग अपने साथ अन्न बांध कर क्यों ले जाते हैं? क्यों नहीं उन के संबंधी लोग घर बैठे हुए ही किसी ब्राह्मण को भोजन करा देते ताकि यात्रा

पर निकले हुए व्यक्तियों का पेट भर सके?

"हे, राम, ये सारे के सारे धर्म और आदेश उन चतुर व्यक्तियों द्वारा दिए गए हैं जो भोलेभाले लोगों को पथभ्रष्ट करने में सिद्धहस्त थे और इस प्रकार औरों को दानदक्षिणा देने के लिए उकसा कर स्वयं धन कमाने के सहज आविष्कार करते रहते थे. उन का तो सिद्धांत यही था कि दूसरों से कहें, 'यज्ञ करो, बलिदान करो, दान करो, स्वयं को भूखों रखो अर्थात व्रतउपवास करो यानी हमें दो...' हे, राम, आप बुद्धि से काम लें. इस जीवन के अतिरिक्त अन्य कोई जीवन मिलने वाला नहीं, यह निश्चित मानें." (वाल्मीकि रामायण, अयोध्या कांड, 108)

भारत की धार्मिक विचारधारा कई तरह के दर्शनों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है. हिंदू दर्शन को ठीक तरह से समझने के लिए सूत्र युग के कुछ दार्शनिक चिंतनों का उल्लेख करना जरूरी है. लगभग ये सभी दर्शन ईसवी सन 200 के बाद ही पूरी तरह विकसित हुए, हालांकि इन का उद्गम किसी न किसी रूप में बहुत पहले से भी खोजा जा सकता है. कुछ दर्शनप्रणालियां तो ईसा पूर्व 800 तक प्राचीन हैं.

सूत्र युग की छः दार्शनिक प्रणालियां प्रसिद्ध हैं : न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और वेदांत. इन में न्याय और वैशेषिक दर्शन एक कोटि के हैं, सांख्य और योग में भी बहुत कुछ समानता है तथा पूर्व मीमांसा और वेदांत परस्पर संबद्ध हैं. न्याय दर्शन मुख्य रूप से तर्क के आधार पर टिका है और वैशेषिक में संसार की प्रकृति का उल्लेख है, मगर दोनों में एकदूसरे के निष्कर्षों को स्वीकार लिया गया है. न्याय की विश्लेषणात्मक पद्धति का वैशेषिक दर्शन में प्रयोग किया गया है और वैशेषिक में संसार की आणविक बनावट का जो सिद्धांत प्रतिपादित हुआ है उसे न्याय ने मान लिया है.

न्याय दर्शन के अनुसार ज्ञान के चार स्त्रोत हैं : प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द. इस में तर्क की प्रक्रिया का ब्योरेवार विश्लेषण किया गया है. यह अरस्तू की दार्शनिक विचारधारा से बहुत मेल खाता है. कह नहीं सकते कि न्याय दर्शन अरस्तू से प्रभावित है या अरस्तू ने न्याय से प्रभाव ग्रहण किया? हो सकता है कि यह समानता मात्र एक संयोग हो. (मैक्समूलर का भी यही विचार है.)

वैशेषिक दर्शन के अनुसार सभी भौतिक पदार्थ चार प्रकार के अणुओं से बने हैं. धरती, जल, अग्नि और वायु के इन अणुओं के विभिन्न रूप से संयोग होने के कारण ही अलगअलग तरह के पदार्थ बनते हैं. भौतिक अणुओं के अतिरिक्त यह दर्शन पांच अन्य तत्त्वों को भी स्वीकारता है: अंतरिक्ष, समय, आकाश, मन और आत्मा.

इस दर्शन के अनुसार भगवान इस सृष्टि का रचयिता तो माना जाता है मगर इन तत्त्वों और अणुओं को भगवान द्वारा विरचित नहीं माना जाता.

न्यायिकों का कहना है कि भगवान ने तो सिर्फ इन तत्वों को तरतीब दी है. इसी लिए इस विचारधारा वालों को वेदांती लोग 'अर्धवैनाशिक, मानते हैं. सांख्य दर्शन के अनुसार विश्व में दो ही आधारभूत कोटियां हैं: प्रकृति और पुरुष (स्व). पुरुष के प्रभाव से ही प्रकृति का विकास होता है और संसार का इतिहास इसी विकास का इतिहास है. सांख्य दर्शन की एक अन्य महत्त्वपूर्ण देन है त्रिगुण सिद्धांत, यानी प्रकृति की तीन द्वंद्वात्मक विशेषताएं : सत्व, रजस, तमस.

सत्व गुण के द्वारा प्रकृति प्रकट होती है, उत्तरोत्तर विकसित होती रहती है. रजस गुण गतिविधि को शक्ति प्रदान करता रहता है तमस गुण बाधाएं प्रस्तुत कर के विकास की गति को प्रेरित करता रहता है. विकास के कोई चरण हैं. बुद्धि का विकास सर्वप्रथम और महान है. सांख्य दर्शन के अनुसार सारे बंधन अज्ञान के फल हैं, सिर्फ ज्ञान के द्वारा ही मुक्त हुआ जा सकता है. इस दर्शन को निरीश्वरवादी दर्शन भी कहा जाता है. कपिल के 'सांख्य प्रवचन सूत्र' के अनुसार भगवान की कल्पना अनावश्यक है क्योंकि किसी भी प्रमाण के आधार पर भगवान का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता.

योगदर्शन के आधारभूत सिद्धांत तो सांख्य से ही मेल खाते हैं मगर इस में निजी भगवान की कल्पना कर ली गई है. व्यवहार में योग मन और शरीर को अनुशासित करने को क्रियाओं का दर्शन माना जाता है. स्वस्थ तन में स्वस्थ मन के माध्यम से ही मुक्ति संभव मानी गई है. पूर्व मीमांसा दर्शन में मुख्य रूप से वेदों की ही व्याख्या की गई है और वेदों को ही धर्म की धुरी माना गया है. वेदांत दर्शन उपनिषदों के ब्रह्म को ही सत्य और जगत को मिथ्या मानता है. इस का प्रधान प्रणेता शंकर था. वेदांत की दो धाराएं थीं: अद्वैत और द्वैत. शंकर अद्वैत के पक्षधर थे. वेदांत दर्शन ने ही आगे चल कर भक्ति की विचारधारा को जन्म दिया जिस के अनुसार ज्ञान, विवेक और तर्क अनावश्यक वस्तुएं घोषित कर दी गईं.

चाहे ब्रह्म और जीव को एक मानने वाले वेदांती हों, चाहे दो मानने वाले, मगर उन सब की दृष्टि में सत्य तो ब्रह्म ही है, जीव और जगत नहीं. इसी विचारधारा ने हमारे देश का सब से अधिक अहित किया है. इसी के फलस्वरूप अंधविश्वास, जहालत, काहिली, अकर्मण्यता, गुलामी और हीनभाव तथा दब्बूपन फैले और इन बातों ने हिंदुओं को दुनिया में प्रगति की दौड़ में बेतरह पीछे धकेल दिया है.

पुरुष (स्व) के प्रभाव से प्रकृति का विकास मानने वाले सांख्य दर्शन जैसी वैज्ञानिक विचारधारा भी इसी देश की सांस्कृतिक धरोहर है मगर इसे विकसित करने की बजाए ब्रह्म के चक्रव्यूह में फंसाने का सारा जाल जिन निहित स्वार्थों ने बिछाया उसी साजिशी शतरंज के महत्त्वपूर्ण मोहरों में थे हमारे तुलसीदास.

ज्ञान के मार्ग पर चलते हुए जो शंकाएं उत्पन्न होती थीं और कर्म के पथ

32/3

पर जो श्रम करना पड़ता था, उन सब से छुट्टी पाने का सहजतम उपाय यही सुझाया गया कि मस्तिष्क के सारे किवाड़ बंद कर के केवल भक्ति में लग जाओ. हिंदुओं में भक्ति की धारा मुख्य रूप से विष्णु और शिव की ओर ही बहती रही. विष्णु वैदिक देवता था और शिव द्रविड़ देवता था. राम को भी विष्णु का ही अवतार माना गया. इस प्रकार तुलसी ने उत्तर और दक्षिण भारत में एक साथ ब्राह्मण पुरोहितवाद का प्रचार करने के उद्देश्य से रामचरितमानस के माध्यम से राम की शिव के मुंह से प्रशंसाएं कराई हैं और शिव की राम के मुंह से.

उन दिनों शैवों और वैष्णवों का जो झगड़ा चल रहा था, वह ब्राह्मण पुरोहितवाद के प्रचार कार्य में बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न कर रहा था. इसलिए उस बाधा को दूर करना भी कूटनीतिक दृष्टि से अनिवार्य था. राम के मुंह से यह कहलवाना भी उसी बाधा की ओर इंगित करता है कि :

संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास,
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक मंह बास.

जिन राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों ने भारतीय समाज के एक वर्ग को बिलकुल निठल्ला पाल कर उस से केवल प्रचार कार्य कराया, उन्हीं स्वार्थों ने विदेशों पर भी धार्मिक धावे बुलवाए. जावा, सुमात्रा, कंबोडिया, बर्मा, मलाया, थाईलैंड आदि देशों में भी प्रचारक और सैनिक एक साथ भेजे गए और जिस प्रकार भारत में छोटेमोटे मतभेद भुला कर अन्य धार्मिक संप्रदायों के साथ सांठगांठ की गई उसी तरह विदेशों में भी. उदाहरणार्थ, जावा और दक्षिणपूर्व एशिया के कई देशों में हिंदू और बुद्ध के बीच समझौते हुए. यहां तक भी हुआ कि एक ही देश में शैवों और वैष्णवों के मंदिर बनाए गए. फलस्वरूप दक्षिणपूर्व एशिया के हिंदू राजाओं ने अपनी दैवीय शक्ति की स्थापना कर ली, जब कि उस काल के भारतीय राजा निज को दैवीय दूत के रूप में स्थापित नहीं कर सके थे.

ईसा की तेरहवीं शती में जावा में शैवों और बौद्धों ने मिल कर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया. संयुक्त दलों की हुकूमतों सरीखी इस धार्मिक राजनीति के पीछे सुनियोजित ढंग से निहित स्वार्थों के षड्यंत्र स्पष्ट देखे जा सकते हैं और इस अंतर्राष्ट्रीय षड्यंत्र का नियंत्रण होता था भारत के तत्कालीन धर्म शिक्षा के केंद्रों से, जिन्हें इतिहासकार ने भी भूल से विश्वविद्यालय मान लिया. ऐसे केंद्रों में नालंदा का नाम खास तौर पर लिया जा सकता है. पूर्वी बिहार के इस केंद्र में देशविदेश के प्रचारकों को प्रशिक्षित किया जाता था.

किसी देश में विजय प्राप्त करने के बाद वहां पर भी इस प्रकार के प्रशिक्षण केंद्र खोल दिए जाते थे जिस से कि वहां की आम जनता को सांस्कृतिक रूप से गुलाम बनाए रखा जा सके. उदाहरणार्थ, सुमात्रा में 'श्रवीजय' नामक केंद्र था जहां संस्कृत पढ़ाई जाती थी. स्मरण रहे कि संस्कृत का संबंध सिर्फ धर्म से

था और धर्मग्रंथ पढ़नेपढ़ाने के लिए ही संस्कृत पढ़ीपढाई जाती थी. सुमात्रा स्थित श्रीविजय प्रशिक्षण केंद्र का जो प्रधान पुजारी था उस का नाम धर्मकीर्ति था. इसी धर्मकीर्ति के द्वारा सन 1011 से 1023 तक प्रशिक्षण दे कर श्रीज्ञान नामक एक प्रचारक तिब्बत में धर्मप्रचार के लिए भेजा गया था. स्मरण रहे कि श्रीज्ञान भारतीय था और उसे शिक्षा पाने के लिए सुमात्रा भेजा गया, फिर वहां से प्रचार कार्य के लिए तिब्बत में भी उसे बुद्ध धर्म में सुधार करने के उद्देश्य से भेजा गया.

इसी प्रसंग में एक बात और ध्यान देने की है कि अंतर्राष्ट्रीय मंच पर जिस बुद्ध धर्म के साथ कंधे मिला कर हिंदू धर्म चला, उसे वह अपने देश में स्वीकार नहीं कर सका. चीन और जापान में बुद्ध धर्म के प्रचार का इतिहास देखने से स्पष्ट पता चलता है कि इस में हिंदुओं की भूमिका लगभग वैसी रही जैसी कि यहूदियों की ईसाई धर्म के प्रति. ईसाई धर्म पैदा किया यहूदियों ने मगर उसे स्वीकारा कभी नहीं. लेकिन दक्षिणपूर्व एशिया में हिंदुओं की भूमिका बुद्ध धर्म के प्रति अलग रही. हो सकता है, यह उस समय की राजनीतिक स्थितियों के कारण कोई विवशता रही हो या कोई गहरी चाल.

जो भी हो, बुद्ध धर्म के साथ इतना विरोध होते हुए भी राजनीतिक मोर्चे में मजबूती लाने के विचार से ही शायद पुराणों की दशावतार सूची में गौतम बुद्ध का भी नाम जोड़ना पड़ा हो!

इस पृष्ठभूमि के बाद अब हम मध्ययुग में आते हैं, यानी सूफियों और संतों के युग में. राजनीतिक भाषा में अब हम 'मुसलिम काल' में आते हैं जब कि हिंदू राजा अपनी सत्ता खो चुके थे. हार की खीज के साथसाथ फिर से शक्ति प्राप्त करने की लालसा उन में मौजूद थी. धर्म और समाज के क्षेत्र की स्थिति यह थी कि पुरानी आस्थाएं एक के बाद एक टूटटूट कर गिर रही थीं. राजाओं की दैवीय शक्ति के प्रति जनता के वहम भी भंग हो रहे थे. वैदिक मंत्रों में विश्वास कम होने लगा था. देवीदेवताओं के आसन डोलने लगे थे.

जिस प्रकार पहले आर्यों ने द्रविड़ों आदि पर दमन करने की नीति में विफल हो कर बाद में मेलमिलाप और सांस्कृतिक आदानप्रदान द्वारा भारतीय जनता पर शासन करने की चाल चली थी, उसी तरह अब मुसलिम बादशाहों ने एक प्रकार का सांस्कृतिक क्रांति का आंदोलन शुरू कर दिया था. सूफी मत का भारत में आयात करने से ले कर अकबर के 'दीनए इलाही' तक सब इसी दिशा में किए गए प्रयास थे. इस में कोई सदेह नहीं कि मुगल बादशाह इस में बहुत हद तक कामयाब भी हुए. भारत के ही लोगों ने और यहीं की पारिभाषिक शब्दावली के माध्यम से संत परंपरा के कवियों ने गांवगांव और नगरनगर में घूम कर जो प्रचार किया वह निश्चित रूप से इस की सफलता का प्रमाण है.

मगर इस सब का एक हितकर पक्ष भी सामने आया. वह यह कि जनसामान्य में पनप रहे कई अंधविश्वास समाप्त होने लगे और अनगिनत रूढ़ियां

टूटने लगीं. ईसा की पंद्रहवीं शती के रामानंद और उस के शिष्य रामानुज की शिष्य परंपरा में दरजनों कवि, प्रचारक ब्राह्मण पुरोहितवाद पर कुठाराघात करने लगे थे. कबीर जाति का जुलाहा था. दादू भी उसी जाति का था. इसी प्रकार दादू के चेलों में से रज्जब आदि थे. सभी ने जातपांत और अंधविश्वासों के खिलाफ जेहाद सा बोल दिया. उन्होंने हिंदू और मुसलिम तक के भेद मिटा देने की कोशिश की और मूर्तिपूजा के विरुद्ध प्रचार किया, ब्राह्मणों और मुल्लाओं की पोलें खोल कर रख दीं तथा कर्मकांड की धज्जियां उड़ानी शुरू कर दीं.

फलस्वरूप तीर्थों आदि का महत्त्व घटने लगा. ब्राह्मण और पंडेपुजारी भूखों मरने लगे. जनता में सांस्कृतिक जागरण शुरू हुआ. तर्कशक्ति पैदा होने लगी. आलस्य और अकर्मण्यता घटने लगी. मेहनत के प्रति आकर्षण और आगे बढ़ने की ललक पैदा होने लगी. नतीजा यह हुआ कि जनता पराजित राजाओं, रजवाड़ों और सामंतों को भूलने लगी. अकबर के शासनकाल तक पहुंचतेपहुंचते भारत की लगभग कायापलट हो चली थी. इस बात की साक्षी हमें इतिहास से मिलती है कि हिंदुओं और मुसलमानों के बीच रोटीबेटी तक के रिश्ते होने शुरू हो गए थे. थोड़ीबहुत शांति और सुखसमृद्धि भी स्थापित होने लगी थी. अल्लाह और राम तथा 'वेद' और 'कुरान' में भेद भुलाया जाने लगा था और धार्मिक संकीर्णता तथा जातीय घेरों में दरारें पड़ चुकी थीं.

पर ये सब स्थितियां भारतीय सामंतों और अपदस्थ हिंदू राजाओं तथा निठल्ले ब्राह्मण वर्ग के हितों के विरुद्ध थीं. इसलिए सोलहवीं शताब्दी में उन्हें यह फिर से अनिवार्य लगा कि जनता को गुमराह किया जाए, धर्म की ध्वजा फहराई जाए, वर्णव्यवस्था को फिर जीवित किया जाए, राजाओं के दैवीय अधिकार प्रमाणित किए जाएं, लोगों के मन में तीर्थों और व्रतउपवासों के प्रति आस्था जगाई जाए, देवीदेवताओं के टूटे हुए बुत फिर से खड़े किए जाएं. संक्षेप में यह कि अवैज्ञानिक चिंतन का जोरशोर से प्रचार करा के जनता को फिर से अंधकार की चादर से ढक कर अपना उल्लू सीधा किया जाए, यानी खोई हुई सत्ता प्राप्त कर ली जाए.

राजनीतिक स्तर पर तो कोई तर्क ऐसा था नहीं जो जनता को आश्वस्त कर सकता, क्योंकि पुराने हिंदू राजाओं की अपेक्षा अकबर का शासनकाल सामान्य जनता के लिए कहीं अधिक सुखकर सिद्ध हो चुका था. इसलिए अब एक मात्र क्षेत्र धर्म का ही बचा था जिस की आड़ में निहित स्वार्थों का नाटक हो सकता था.

अतः ऐसी परिस्थितियों में चमत्कारी ढंग से रामचरितमानस की रचना और उस के व्यापक प्रचार की बात पर यदि विचार किया जाए तो हर चीज शीशे की तरह साफ हो कर सामने आने लगती है.

राजनीति, धर्म, नैतिकता, समाजशास्त्र, साहित्य और ज्ञानविज्ञान की जितनी भी शाखाएं हैं, सब को सब धर्मग्रंथों में ही सम्मिलित मान कर चलने

की भारतीय परंपरा से लाभ उठा कर रामचरितमानस की आड़ में आज से कोई चार सौ वर्ष पूर्व जो षड्यंत्र रचा गया था, उस के कुपरिणाम आज तक हम भुगत रहे हैं. आत्महीनता, अंधविश्वास, दब्बूपन, कायरता, नियतिवाद और अकर्मण्यता नामक जितनी भी घातक बीमारियों के जरासीम आज हिंदुओं के दिमाग की रगों में बह रहे हैं, उन में से अधिकांश का स्रोत तुलसी कृत रामचरितमानस ही है. ●

रामचरितमानस में नारी

रामचरितमानस का उत्तर भारत में ही नहीं, अन्यत्र भी जहां कहीं इस का पारायण होता है, अद्भुत प्रभाव है. इस का वही प्रभाव, इस की वही सामर्थ्य इस बात का जोरदार तकाजा करती है कि अपनी जिन मान्यताओं को तुलसीदास ने रामचरितमानस में स्थापना की है, जिन आदर्शों को जीवन का ध्रुव-तारा बना कर उन की ओर निर्देश किया है, उन का न केवल इतिहास के एक विद्यार्थी की दृष्टि से ही, बल्कि एक सामान्य जीवन शोधक और जीवन आराधक की दृष्टि से भी हम उन मान्यताओं तथा उन आदर्शों का नए सिरे से मूल्यांकन करें. निश्चय ही रामचरितमानस की गिनती उन मुर्दा ग्रंथों में नहीं की जा सकती जिन की कोई भी इतिहास का विद्यार्थी बैठाबैठा शव परीक्षा करता है. वह तो उन जीवित सद्ग्रंथों में है जो न केवल आज के युग को प्रभावित कर रहे हैं, बल्कि जिन का प्रभाव सुदीर्घ भविष्य तक बना रहने वाला है.

हम यहां इस बात का अध्ययन करना चाहते हैं कि मातृशक्ति अथवा स्त्रियों के संबंध में तुलसीदास की क्या मान्यताएं थीं और जिन आदर्शों की ओर उन्होंने सीधे अथवा व्यंजना से संकेत किया है, आधुनिक मान्यताओं की कसौटी पर कसे जाने पर वे किस हद तक प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय हैं.

प्रत्येक महान ग्रंथ के कुछ मंत्र होते हैं जो उस ग्रंथ अथवा उस के रचयिता की मूल भावनाओं को समझने में सहायक होते हैं. रामचरितमानस के ऐसे अनेक मंत्रों में एक है :

कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना, सिर धुनि गिरा लगत पछिताना.

—बाल कांड, 20-4.

(साधारण जनों का गुणगान करने से सरस्वती सिर धुनधुन कर पछताने लगती है.)

यह चौपाई पुकारपुकार कर कह रही है कि तुलसीदास को जनसाधारण का गुणगान करना एकदम अभिप्रेत नहीं था. रामचरितमानस में जहांजहां

भी जनसाधारण अथवा उन के प्रतिनिधियों का चरित्रचित्रण है, वह तुलसीदास के अद्भुत काव्यकौशल का परिचायक होते हुए भी प्रसंगवश ही है. तुलसीदास के रामचरितमानस का आध्यात्मिक उद्देश्य राम का गुणगान है और सामाजिक उद्देश्य मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र तथा वैसे ही कौशल्या, सीता, भरत, हनुमान, आदि आदर्श पात्रों की रचना.

आगे की पंक्तियों में हम तुलसीदास के स्त्री पात्रों की ही चर्चा करेंगे. अन्यों की चर्चा भी प्रसंगवश अनिवार्य होगी ही.

बाल कांड का आरंभ ही है. तुलसीदास सब छोटेबड़ों की वंदना कर रहे हैं. सियापति रामचंद्र की ओर संकेत करते हैं :

सिय निंदक अघओघ नसाए, लोक बिसोक बनाइ बसाए.

—बाल कांड, 31-2.

(उन्होंने सीता की निंदा करने वाले धोबी के पापसमूह का नाश कर उसे शोक रहित बैकुंठ लोक में बसा दिया.)

कथा कुछकुछ यही तो है न कि एक धोबी ने रामचंद्र की निंदा की कि जिस सीता को रावण गोद में उठा कर ले गया था और जो बहुत दिन तक उस के घर में रही, उसी को रामचंद्र ने पुनः अंगीकार कर लिया. यह स्थल उस प्रसंग की विस्तृत आलोचना करने का नहीं है, किंतु यदि यह प्रश्न पूछा जाए कि मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र के इस त्याग के मूल में राजनीति की नहीं, लोकाराधना की नहीं, किंतु स्वच्छ नीति की कौन सी उदात्त भावना है, तो सचमुच उत्तर आसान नहीं. मातृशक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व की इतनी अवहेलना! इस वंदनक्रम में है :

जनकसुता जगजननि जानकी, अतिसय प्रिय करुनानिधान की.
ताके जुग पदकमल मनावौं, जासु कृपा निरमल मति पावौं.

—बाल कांड, 33.4.

(जनक की कन्या, जगत की माता और करुणानिधान रामचंद्र की अत्यंत प्यारी जानकी के दोनों चरणकमलों को मैं प्रणाम करता हूं. उन की कृपा से मैं निर्मल बुद्धि पाऊं.)

यहां जो प्रणाम है, वह जगत की माता जानकी को है. किसी प्राकृत देवी को तो कभी हो ही नहीं सकता.

तुलसीदास के रामचरितमानस की यह विशेषता है कि यह अध्यात्म के ऊंचे से ऊंचे स्तर से प्राकृत जनों के स्तर तक चढ़ताउतरता रहता है. रामचंद्र के प्रकृत रूप का वर्णन पढ़िए :

नारि बिरहं दुखु लहेउ अपारा, भयउ रोषु रन रावनु मारा.

—बाल कांड, 67-4.

(उन्होंने—रामचंद्र ने—स्त्री वियोग का अपार दुख पाया था और क्रोधित हो कर रावण को रण में मारा था.)

विषयांतर न हो जाए, इसलिए यह आगे की कथा विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है :

एक बार त्रेता युग माहीं, संभु गए कुंभज रिषि पाहीं,
संग सती जगजननि भवानी, पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी.

—बाल कांड, 69-1.

(त्रेता युग में एक बार महादेवजी अगस्त्य मुनि के पास गए. उन के साथ सती जगतजननी भवानी भी थीं. ऋषि ने उन को सारे जगत का ईश्वर जान कर उन की अच्छी तरह पूजा की.)

इस स्थल पर महादेवजी तथा रामचंद्र के आपसी संबंध को ले कर जगत-जननी भवानी के मन में एक संदेह पैदा हो जाता है.

संकरु जगत बंद्य जगदीसा, सुर नर मुनि सब नावत सीसा,
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परमाना, कहि सच्चिदानंद परधामा.

—बाल कांड, 72-3,4

(जिन शिवजी की वंदना सारा जगत करता है, जो सारे जगत के स्वामी हैं और जिन को देवता, मनुष्य, मुनि सब सिर नवाते हैं, उन्होंने एक राजपुत्र को सच्चिदानंद और मोक्षधाम कह कर प्रणाम किया)

यह एक प्रकार से सारे अवतारवाद पर ही की गई शंका है. स्वयं तुलसीदास ने इसे अत्यंत स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है:

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद,
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद.

—बाल कांड, 73.

(जो ब्रह्म सब में व्याप्त तथा माया, जन्म, कला, चेष्टा और खंड से रहित है और जिसे वेद भी नहीं जानते, वह क्या देह धारण कर के मनुष्य हो सकता है?)

अंतरयामी शिव ने भवानी की यह शंका जान ली, बोले:

सुनहु सती तव नारि सुभाऊ, संसय अस न धरिय उर काऊ

—बाल कांड, 73-3

(हे सती, सुनो, तुम्हारा स्त्री का स्वभाव है. ऐसा संदेह मन में कभी नहीं करना चाहिए.)

ज्ञान का इतिहास साक्षी है कि संदेह ही उस का जनक है. किंतु यहां संदेह करना ही मना नहीं किया गया है किंतु उसे स्त्री स्वभाव कह कर स्पष्ट रूप से स्त्रीजाति की भी अवमानना की गई है.

इस संदेह को मिटाने के लिए शिव, भवानी को राम की परीक्षा लेने का आदेश देते हैं. भवानी सीता का रूप धारण कर रामचंद्र की परीक्षा लेने का प्रयास करती हैं. इस पर तुलसीदास की टीका है:

"सती कीन्ह चह तहहुं दुराऊ, देखहु नारि सुभाऊ प्रभाऊ."

—बाल कांड, 75-3

(स्त्रियों के स्वभाव का प्रभाव तो देखो कि सती ने उन—सर्वज्ञ—से भी छिपाव करना चाहा.)

यह सती का व्यक्तिगत दोष नहीं है—यह स्त्रियों का स्वभाव ही है.

वापस लौटने पर जब भवानी से शिव ने पूछा कि बताओ तुम ने कैसे क्या परीक्षा ली, तो भवानी यथार्थ बात प्रकट न कर थोड़ा झूठ बोल बैठती हैं:

कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं, कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं.

—बाल कांड, 78I

(स्वामिन, मैं ने कुछ परीक्षा नहीं ली. आप ही की तरह उन्हें प्रणाम किया.)

किंतु शिव सब जान लेते हैं. तब भवानी को स्वाभाविक दुख होता है. यह दुख यों व्यक्त हुआ है:

सतीं हृदयं अनुमान किय सबु जानेउ सर्बज्ञ,
कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अज्ञ."

—बाल कांड, 80

(सती ने अपने जी में अनुमान किया कि सर्वज्ञ शिव ने सब जान लिया. मैं ने शिव से कपट किया है. स्त्रियां स्वभाव से ही मूर्ख और नासमझ होती हैं)

यहां फिर स्त्रियों का साधारणीकरण कर के एक स्त्री के ही मुंह से उन्हें मूर्ख और नासमझ कहलाया गया है. जो स्वभाव से ही मूर्ख और नासमझ हैं, क्या उन्हें किसी भी विधि से,विज्ञ और समझदार बनाया जा सकता है? नहीं.

शिव ने स्वयं ही भवानी को रामचंद्र की परीक्षा लेने के लिए भेजा था. वह पति की अनुज्ञा पा परीक्षा लेने चली गई—यही उन का महान अपराध हो गया. क्योंकि रामचंद्र की परीक्षा लेने के लिए भवानी ने सीता का रूप धारण कर लिया था इसलिए शिव ने अब उन्हें पत्नी रूप में ग्रहण करना अनुचित जान भवानी को त्याग दिया. निस्संदेह यह रामभक्ति की पराकाष्ठा और शायद उस की एक आदर्श कसौटी भी है. किंतु इस सारे कथानक में मातृशक्ति नारी की क्या स्थिति रहती है, यह भी तो विचारणीय है. भवानी का दुख और उन की समझ के अनुसार उन का मूल कारण इस प्रकार व्यक्त हुआ है:

मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना, पुनि पति बचनु मृषा करि जाना.
सो फलु मोहि बिधाता दीन्हा, जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा.

—बाल कांड, 82-1,2

(मैं ने रामचंद्र का अपमान किया. फिर पति के वचन को झूठा माना. सो उस का फल विधाता ने मुझ को दिया और जो उचित था वही किया.)

भवानी सीता का रूप धारण कर रामचंद्र के आगेपीछे चलने लगी थी. यही भवानी द्वारा रामचंद्र का अपमान हुआ. हमें लगता है अवमान शब्द पर्याप्त होता, अपमान कुछ अधिक गंभीर है, किंतु आत्मग्लानि में ऐसा होता ही है. जो बात यहां ध्यान देने की है, वह यह कि भवानी को अपना मिथ्याभाषण

करने का अनुताप नहीं है, उन्हें सब से अधिक अनुताप पति के वचन को ही झूठा मानने का है. पति के हर वचन को बिना सोचेसमझे त्रिकाल सत्य मानने में कौन सी और कहां की आदर्शवादिता है? हो सकता है कि इस की कोई पराध्यात्मिक व्याख्या की जा सके, किंतु सामाजिक दृष्टि से तो यह कोई बड़ा कल्याणकारी आदर्श प्रतीत नहीं होता. यह तो पति के किसी भी कथन पर प्रश्नचिन्ह लगाना ही पाप हो गया.

भवानी के इस अपराध से शिव भवानी की ओर से एकदम विमुख हो गए. निस्संदेह यह शिव के त्याग का ज्वलंत उदाहरण है. किंतु इस त्याग का भवानी के लिए यही अर्थ था कि उन्हें सत्तासी हजार वर्ष तक अकथनीय दारुण दुख सहन करना पड़ा.

अब आगे दक्ष के प्रजापति बनने की कथा और भवानी के वहां जाने की कथा बड़ी ही कारुणिक है. शिव ने भवानी को समझाया:

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा, जाइअ बिनु बोलेहुं न संदेहा.
तदपि बिरोध मान जंह कोई, तहां गए कल्याण न होई.

—बाल कांड, ६५-2

(इस में संदेह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाए भी जाना चाहिए. परंतु जहां कोई विरोध मानता हो उस के घर जाने में भलाई नहीं होती.)

असंभव नहीं था कि यदि शिव ने भवानी को त्यागा न होता तो भवानी शिव की बात अवश्य मान लेतीं. किंतु जब नारी को पति सर्वथा त्याग दे, तो वह पिता के घर भी कैसे न जाए! किंतु यह जाना सुखद नहीं हुआ. लिखा है:

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता, सुतिहि बिलोकि जरे सब गाता.

—बाल कांड, 86-2

(दक्ष प्रजापति ने अपनी पुत्री सती भवानी की कुछ कुशलवार्ता नहीं पूछी. उलटे उन्हें देख कर उस का सारा शरीर जल गया.) लिखा है:

सती को क्रोध आना स्वाभाविक था. यद्यपि पति ने उन्हें त्याग दिया था, तो भी वह पति की अवहेलना कैसे सहन कर सकती थीं? लिखा है:

जगदातमा महेसु पुरारी, जगतजनक सब के हितकारी,
पिता मंदमति निंदत तेही, दच्छ सुक्र संभव यह देही.
तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू,
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा, भयउ सकल मख हाहाकारा.,

—बाल कांड, 87-4,3.

(त्रिपुर के शत्रु शिव महाराज सारे जगत की आत्मा हैं. वह सब के उत्पन्न करने वाले और हितकारी हैं. मेरा मूर्ख पिता दक्ष उन की निंदा करता है. और यह मेरा शरीर उसी पिता के अंश से उत्पन्न हुआ है, इसलिए चंद्रमा को धारण करने वाले और वृषकेतु शिव का ध्यान करते हुए मैं इस शरीर को अभी छोड़

देती हूं. इतना कह कर सती ने योग की अग्नि से अपना शरीर भस्म कर डाला. यह देख कर सारे यज्ञ मंडप में हाहाकार मच गया.)

यदि शिव के ईश्वरत्व की तथा भवानी के जगदंबा होने की बात को थोड़ी देर के लिए भूल कर दोनों को सामान्य पति और पत्नी के रूप में ग्रहण किया जाए, तो इस पौराणिक कथानक का इतना ही सार निकलता है कि पति परित्यक्ता तथा पिता द्वारा अनादृत नारी के लिए तुलसीदास की कल्पना के अनुसार जल मरने के अतिरिक्त—भले ही वह योगाग्नि हो—दूसरा मार्ग नहीं.

अब भवानी पर्वतराज की कन्या हो कर जन्म ग्रहण करती है. जन्मांतरवाद समस्त भारतीय चिंतन की सामान्य मान्यता है. तदनुसार पार्वती की इस जन्म में भी सब से बड़ी आकांक्षा यही है कि वह अपने पूर्वजन्म के पति शंभु को ही प्राप्त करे. काश, शंभु की भी कुछ ऐसी ही प्रार्थना होती. शंभु के लिए भी पार्वती के प्रिया होने में संदेह नहीं है. किंतु तपस्या पार्वती को ही करनी पड़ती है और वह तपस्या कैसी है?

संबत सहस मूल फल खाए, सागु खाइ शत बरष गंवाए.
कछु दिन भोजनु बारि बतासा, किए कठिन कछु दिन उपबासा.
बेलपाति महि परई सुखाई, तीन सहस संबत सोइ खाई.
पुनि परिहरे सुखानेउ परना, उमहि नामु तब भयउ अपरना.'

—बाल कांड, ७-2,4

(एक हजार बरस तक उन्होंने फलमूल खाए और फिर सौ बरस सागपात खा कर बिताए. कुछ दिन जल और वायु पर ही बीते. फिर कुछ दिन कठिन उपवास किया. तीस हजार बरस तक उन्होंने धरती में पड़े हुए सूखे बेलपत्र ही खाए. फिर सूखे पत्ते (पर्ण) भी छोड़ दिए. उस से उमा का नाम अपर्णा हुआ.)

इतनी तपस्या करने पर भी शिव के पार्वती से दूरदूर रहने के संकल्प में कोई अंतर नहीं पड़ता. तब स्वयं रामचंद्र को आग्रह करना पड़ता है:

अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु,
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मांगे देहु.

—बाल कांड, 100

(उन्होंने कहा कि हे शिव, यदि मुझ पर तुम्हारा स्नेह है तो तुम अब मेरी बिनती सुनो. तुम मुझे यही मांगने दो कि जा कर पार्वती के साथ विवाह कर लो.)

शिव के गले यह बात उतरती नहीं. किंतु वह उसे स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि:

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी, बिनहि बिचार करिअ सुभ जानी.

—बाल कांड, 100-2

(माता, पिता, गुरु तथा प्रभु की आज्ञा का बिना विचारे ही उसे शुभ मान कर पालन करना चाहिए.)

बालकों के लिए तो यह बात निसंदेह व्यावहारिक है, क्योंकि उन में अपने हितअहित को स्वयं जाननेसमझने का विवेक जाग्रत नहीं होता. किंतु सभी के लिए यह विचारहीन आज्ञापालन का उपदेश तो कुछ विशेष विवेकवर्धक बात नहीं मालूम देती.

यह सब होने पर भी शिव का मन संतुष्ट हुआ प्रतीत नहीं होता. अभी भी वह सप्त ऋषियों से कह रहे हैं:

पारवती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिछा लेहु
गिरिहिं प्रेरि पठयेहु भवन दूरि करेहु संदेहु.

—बाल कांड, 101

(तुम पार्वती के पास जा कर उस के प्रेम की परीक्षा लो और हिमवान को भेज, पार्वती को घर भिजवा कर मेरे संदेह को दूर करो.)

यदि हम शिव को पुरुष पक्ष का और पार्वती को स्त्री पक्ष का प्रतिनिधि मानें तो सचमुच जन्मजन्मांतर तक तपस्या करते रहने के बाद स्वयं रामचंद्र के आग्रह करने के बाद भी यह प्रेम परीक्षा और संदेह की बात बड़ी ही निर्मम और अत्यंत विघातक है.

जो भी हो, शिवपार्वती विवाह रामचरितमानस का एक बड़ा ही सरस, कुतुहलवर्धक प्रकरण है.

पार्वती की माता मैना पार्वती को शिव को सौंप रही है. उन की विनम्र प्रार्थना है:

नाथ उमा मम प्रान सम गृह किंकरी करेहु,
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु.

—बाल कांड 125.

(हे नाथ, यह उमा मुझे मेरे प्राणों के समान है. अब इसे अपने घर की दासी बनाइए. अब इस के सब अपराधों को क्षमा करना. बस, प्रसन्न हो कर यही वर दीजिए.)

और पार्वती को भी गोद में बैठा कर सस्नेह कहा है:

करेहु सदा संकर पद पूजा, नारि धरमु पति देव न दूजा.

—बाल कांड, 125-2.

(हे पुत्री, तू सदा शिव के चरणों की सेवा करना. नारियों के धर्म में पति के सिवा दूसरा देवता नहीं है.)

समय और स्थानभेद से भले ही कुछ अंतर हो, अन्यथा न केवल भारतीय समाज, बल्कि सर्वत्र ही नारी की स्थिति बहुत कुछ ऐसी ही रही है, विशेष रूप से जब से मातृसत्ता युग समाप्त हुआ है. तभी तो अगली ही चौपाई में तुलसी दास की भी पीड़ा पार्वती की माता मैना के मुख से फूट पड़ी है:

कत बिधि सृजी नारि जग माहीं, पराधीन सपनेहु सुख नाहीं.

—बाल कांड, 125-3

(पता नहीं विधाता ने नारी को यह कैसा जन्म दिया है. बेचारी पराधीन को स्वप्न में भी सुख नहीं.)

अब शिव और पार्वती पतिपत्नी के रूप में रह रहे हैं. कैसा प्राकृत वर्णन है:

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा, गनन्ह समेत बसहिं कैलासा.
हर गिरिजा बिहार नित नएऊ, एहि बिधि बिपुल काल चलि गएऊ.

बाल कांड, 126-3

(शिव और पार्वती तरहतरह के भोगविलास करते हुए अपने गणों के साथ कैलाश पर रहने लगे. शिव और पार्वती नित्य नए विहार करते थे. इस प्रकार बहुत सा समय बीत गया.)

कैलाश निवास के समय पार्वती शिव से रामकथा सुनना चाहती हैं. वह शिव से बहुतबहुत निहोरा करती हुई कहती हैं:

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी, दासी मनक्रम वचन तुम्हारी.
गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं, आरत अधिकारी जंह पावहिं

—बाल कांड, 133-1

(यद्यपि कोई भी स्त्री इस के सुनने की अधिकारी नहीं है, किंतु मैं तो मन, वचन और कर्म से तुम्हारी दासी हूं. साधुजन जब सुनने के लिए आतुर किसी अधिकारी को पाते हैं तो गूढ़ बात भी छिपा कर नहीं रखते.)

पार्वती को अपनी प्रार्थना दोहरानी पड़ती है:

अब मोहिं आपनि किंकरि जानी, जदपि सहज जड़ नारि अयानी.
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू, जौ मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू.

—बाल कांड, 143-2-3.

(यद्यपि स्त्रियां स्वभाव से ही मूर्ख और ज्ञानहीन होती हैं पर अब आप मुझे अपनी दासी जान कर, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो जो कुछ मैं ने आप से पूछा है वह सब कहें)

यह हर स्त्री पात्र का स्वयं अपने ही मुंह से स्त्रियों को स्वभाव से ही अनधिकारिणी, मूर्खा और अज्ञानी कहना तथा बारबार कहना किसे नहीं खटकेगा?

रामजन्म हो चुका है. चारों भाइयों के जन्म की कथा इस बात का प्रमाण है कि प्राय: सभी संप्रदायों ने अपनेअपने इष्टदेवों के जन्म को कुछ न कुछ अलौकिक परिधान पहनाया है. रामलक्ष्मण बड़े होते हैं. विश्वामित्र अपने यज्ञों के रक्षार्थ राजा दशरथ से याचना कर रामलक्ष्मण को अपने साथ ले जाते हैं. लिखा है:

चले जात मुनि दीन्हि देखाई, सुनि ताड़का क्रोध करि धाई.
एकहि बान प्राण हरि लीन्हा, दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा.

बाल कांड, 241-3

(जातेजाते मुनि ने ताड़का राक्षसी दिखा दी. वह राक्षसी इन तीनों का

उस रास्ते निकलना सुन कर क्रोधित हो दौड़ी. रामचंद्र ने एक ही बाण से उस के प्राण हर लिए और उसे गरीबनी जान निज पद दे दिया.)

यदि रामचंद्र को ईश्वर मान, तुलसीदास के 'ईस' के बारे में कुछ विचार ही न किया जाए, तब तो खैर कुछ कहना ही नहीं. अन्यथा इस में कहां का आर्य शौर्य है कि निशस्त्र दौड़ी चली आती एक अबला को दूर से ही बाण मार कर उस की हत्या कर दी गई? और फिर आगे यह लिखना क्या जले पर नमक छिड़कने के समान नहीं है कि उसे गरीबनी जान अपना पद अर्थात बैकुंठ दे दिया?

ताड़का वध की बात को यहीं छोड़ हम आगे बढ़ें. थोड़ी ही दूर जाने पर लिखा है:

आश्रम एक दीख मग माहीं, खग मृग जीव जंतु तंह नाहीं.
पूछा मुनिहिं सिला प्रभु देखी, सकल कथा मुनि कही बिसेषी.

—बाल कांड, 242-6

(मार्ग में उन्होंने एक आश्रम देखा जिस में कोई पशुपक्षी और जीवजंतु नहीं थे. वहां एक शिला को देख कर रामचंद्र ने मुनि से पूछा. मुनिवर ने सारी कथा विस्तार से कह सुनाई.)

कथा का संक्षेप इतना ही है:

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर,
चरण कमल रज चाहति कृपा करहु रघुवीर.

—बाल कांड, 243

(हे रघुबीर, गौतम की स्त्री ने शाप के कारण बड़े धीरज से पत्थर का शरीर धारण कर रखा है. यह आप के चरणकमलों की धूल चाहती है. इस पर कृपा कीजिए.)

विस्तृत कथा इतनी ही है कि इंद्र और चंद्रमा ने मिल कर गौतम ऋषि तथा गौतम नारी दोनों को ठगा. गौतम नारी ने इंद्र को गौतम ऋषि समझ कर ही उस से सहवास किया था. बाद में गौतम ऋषि के आने पर और इंद्र से पूछने पर उसे पता लगा कि वह ठगी गई है. असाधारण विकट परिस्थिति में अहल्या ने झूठ का आश्रय लिया. ऋषि ने उसे शाप दे दिया कि तू पत्थर हो जा.

अहल्या दो अपराधों की अपराधिनी थी—परपुरुषगमन की तथा झूठ की. परपुरुषगमन उस ने वंचिता हो कर किया था और झूठ बोलने का अपराध भयवश. इन दो अपराधों के लिए ही उसे युगयुगों तक पाषाण हो कर पड़ा रहना पड़ा. क्या सारे पौराणिक साहित्य में कोई एक भी उदाहरण है जहां कोई ऋषि-मुनि इसी तरह से समान अपराध के लिए किसी के शाप के कारण पाषाण बन गया हो?

युगोंयुगों से पत्थर बनी पड़ी रहने के बाद रामचंद्र के चरणस्पर्श से जब

अ'हल्या प्राणवान होती है तो वह प्रार्थना करती है:

मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जन सुखदाई.

—बाल कांड, 243, छंद

(मैं अपवित्र नारी हूं और आप जगत को पवित्र करने वाले रावनरिपु हैं और भक्तों को सुख देने वाले हैं.)

चंद्रमा अपवित्र नहीं हुआ, वह चंद्र देवता बना रहा. इंद्र अपवित्र नहीं हुआ, इंद्र देवता बना रहा. अगस्त्य अपवित्र नहीं हुआ, वह अगस्त्य ऋषि रहा. एकमात्र अ'हल्या ही अपवित्र हुई. इस का सिवा इस के दूसरा कौन सा कारण बताया जा सकता है कि वह नारी है?

रामलक्ष्मण का जनकपुरी जाना, धनुष तोड़ना, परशुराम संवाद आदि रामचरितमानस के अत्यंत प्रसादगुण पूर्ण स्थल हैं. रामचंद्र जब जनकपुरी जाते हैं तो वहां सीता की सखियों में से एक रामचंद्र के बारे में विश्वास प्रकट करती हुई कहती है:

परसि जासु पदपंकज धूरी, तरी अ'हल्या कृत अघभूरी.
सो कि रहिहि बिनु सिव धनु तोरें, यह प्रतीति परिहरिअ न भोरें.

—बाल कांड, 255-3

(जिन—रामचंद्र—के चरणकमलों की धूल लगते ही घोर पापिन अ'हल्या भी तर गई, क्या वह शिव के धनुष को तोड़े बिना रहेंगे! यह भरोसा भूल कर भी न छोड़ना चाहिए.)

रामचंद्र के घोर पापिन अहल्या का निस्तार करने की बात उन के जनकपुरी पहुंचने से भी पहले वहां पहुंच गई. किन्हीं चंद्रों तथा इंद्रों द्वारा वंचिता नारियों को घोर पापिन कह कर बारबार तिरस्कृत करना हिंदू जाति की एक ऐसी महान भूल की ओर संकेत करता है, जिस ने उसे इधर भी न जाने कितनी हानि पहुंचाई है. आज भी न जाने कितने विधर्मी चंद्रों और इंद्रों द्वारा वंचिता हिंदू नारियां पाषाण हृदय हिंदू जाति द्वारा बात की बात में ठुकरा दी जाती हैं.

निस्संदेह तुलसीदास ने पार्वती के रूप में पति को देवता मानने के आदर्श को साकार कर के दिखा दिया है. वैसे ही उन्होंने दूसरे भी एक से एक बढ़ कर गगनचुंबी आदर्शों को मूर्तिमान किया है. हमारी विनम्र सम्मति में इन अनुपम प्रयत्नों के फलस्वरूप जहां वह आकाश को छूने में सफल हुए हैं, वहां कहींकहीं पृथ्वी से उन का नाता एकदम टूट गया है. यह रामचरितमानस पर लगा छोटा प्रश्नचिन्ह नहीं है, सीता के स्वरूप का वर्णन इस का साक्षी है:

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी, जगदंबिका रूप गुन खानी.
उपमा सकल मोहि लघु लागी, प्राकृत नारि अंग अनुरागी.
सिय बरनि तेहि उपमा देई, कुकबि कहाइ अजस को लेई.

—बाल कांड, 279-1,2

(सीता की शोभा कही नहीं जा सकती. जगत की माता है, रूप और गुणों

की खान हैं. सभी उपमाएं—सीता के सम्बन्ध में—मुझे हलकी लगीं, क्योंकि वे सभी प्राकृत—संसारी—स्त्रियों के शरीर के वर्णन में लग चुकी हैं. सीता के संबंध में उन्हीं उपमाओं का उपयोग कर कौन कुकवि कहलाने का अपयश ले.)

उपमा किसी अस्पष्ट बात को स्पष्ट करने की सामान्य क्रिया है. उस के अभाव का अनुभव करना और उसे स्वीकार करना एक सामान्य कवि कौशल है, किंतु तुलसीदास का सीता के स्वरूप का वर्णन करने के संबंध में सभी उपमाओं को केवल इसलिए हेय ठहराना कि प्राकृत स्त्रियों के वर्णन में उन का उपयोग हो चुका है, तुलसीदास की प्राकृत जन की अवहेलना की भावना के ही अनुरूप है.

अब सीता स्वयंवर समाप्त हो चुका है. राजा और रानी प्रेममग्न हो कर रामचंद्र के पवित्र चरणों को धोने लगे. वे चरण कैसे हैं :

जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई.

—बाल कांड, 356, छंद 2

जिन का स्पर्श कर के मुनि पत्नी—अहल्या—जो महापापमई थी, वह भी गति पा गई अर्थात उस का भी उद्धार हो गया.

रामचंद्र के चरणों से अहल्या का उद्धार हुआ या नहीं, यह भी किसी संदेहवादी नास्तिक की जिज्ञासा ही हो सकती है. किंतु यहां प्रश्न यह नहीं है. प्रश्न है कि बेचारी अहल्या को यहां फिर इतनी जल्दी पातकी कह कर क्यों स्मरण किया गया है? उसे छलने वाले चंद्र तथा इंद्र दोनों देवता बने रह कर पुज रहे हैं. इन दोनों देवताओं द्वारा ठगा गया मुनि भी किसी की अवज्ञा का पात्र नहीं बना. तब दोनों देवताओं द्वारा वंचिता अबला एकमात्र अहल्या ही क्यों पाषाण बनने पर मजबूर हुई? एक ही उत्तर है—वह तुलसीदास के कल्पना-लोक की नारी थी.

अगले ही छंद में है :

सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तनु हुलस्यो हियो,
करि लोक वेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषण कियो.

—बाल कांड, 356, छंद 3

(सुख के मूल—दूल्हे—रामचंद्र—को देख कर दंपती—राजारानी—का शरीर पुलकायमान हुआ और हृदय उमड़ने लगा. राजमणि—जनक—ने लौकिक और वेदोक्त विधि कर के कन्यादान किया.)

आज किसी भी संपत्तिदान और भूमिदान की तरह ही कन्यादान दिया और लिया जाता है. संपत्तिदान और भूमिदान होता है तो वह दान ही होता है, किंतु कन्यादान में बहुधा कन्या के क्रयविक्रय की बात साथ जुड़ी रहती है.

निस्संदेह यह कन्यादान की बात वर्तमान गतिअवरुद्ध विकृत भारतीय संस्कृति का एक हिस्सा है, किंतु क्या यह सचमुच वेदकालीन है? लगता है कि

तुलसीदास अपनी अस्पष्ट ऐतिहासिक दृष्टि के कारण कन्यादान को यों ही वेदोक्त रूप दे रहे हैं.

फिर सीता का कन्यादान तो दान था भी नहीं, वह तो स्वयंवर था. जहां स्वयं वरण हो वहां दान कैसा?

रामचंद्र को ही नहीं, उन के शेष भ्राताओं को भी राजा जनक के यहां कन्यादान मिला है. उन सब का सम्मिलित वर्णन है :

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी, सकल कुंवर ब्याहे तेहिं करनी.
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी, रहा कनक मनि मंडपु पूरी.
कंबल बसन बिचित्र पटोरे, भांतिभांति बहुमोल न थोरे.
गज रथ तुरग दास अरु दासी, धेनु अलंकृत कामदुहा सी,
बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा, कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा.

—बाल कांड, 358-1,2,3

(जैसी रामचंद्र के विवाह की विधि कही गई है, उसी क्रिया से सब राजकुमारों का विवाह हुआ. दहेज की अधिकता कुछ कही नहीं जाती. सारा मंडप सोने और मणियों से भरा हुआ था. ऊनी कपड़े और तरहतरह के रेशमी कपड़े भी कम नहीं थे. हाथी, रथ, घोड़े, दास और दासियां तथा खूब सजी हुई कामधेनु के समान अच्छीअच्छी गाएं. और भी अनेक वस्तुएं थीं. कहां तक उन की गिनती करें. कुछ कहते नहीं बनता. जिन्होंने उन्हें देखा था, वे ही जानते हैं.)

आज दहेज प्रथा न जाने कितनी लड़कियों के मातापिताओं के जीवन का अभिशाप बनी हुई है. यह हो नहीं सकता कि रामचरितमानस की कथा के ऐसे स्थलों को लोग सुनतेसुनाते रहें और इस देश से दहेज प्रथा भी मिट जाए.

आश्चर्य है कि जिस पुरातन संस्कृति का हमें इतना अभिमान है उस के अनुसार यह हाथी, घोड़ों के ही साथ नहीं, कंबल आदि निर्जीव वस्तुओं के साथ सजीव दास और दासियों की गिनती होना हमें खटकता तक नहीं! किंतु अब निर्जीव वस्तुओं के समान कन्यादान ही होने लगा हो तो फिर इस में खटकने की भी कौन सी बात है!

दहेज का तो काफी वर्णन है. एक दोहा है :

दाइज अमित न सकिअ कहि दीन बिदेह बहोरि,
जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि.

—बाल कांड, 366

(राजा जनक ने फिर इतना अधिक दहेज दिया कि जिस का कुछ ठिकाना नहीं और जिस को देख कर लोकपति इंद्र, कुबेर आदि की भी सम्पत्ति थोड़ी मालूम होती थी.)

इधर न जाने कब से मध्यवित्त हिंदू समाज के सामने यही दहेजप्रधान विवाहों का आदर्श प्रचारित हो रहा है. आधुनिक सुधारवादियों के मार्ग में सब से बड़ी बाधा यही है.

 32/4

नारी की इस स्थिति में स्वयं तुलसीदास भी कम दुखी नहीं मालूम देते. कहींकहीं उन का दुख बरबस अभिव्यक्ति पा गया है :

बहुरिबहुरि भेटहिं महतारी, कहहिं बिरंचि रचीं कत नारी.

—बाल कांड, 366-4

(माताएं बारबार अपनी पुत्रियों से मिल कर कहने लगीं : हाय, ब्रह्मा ने स्त्री क्यों बनाई?)

कितनी मर्मांतक वेदना है!

अब सीता विदा हो रही है. सीता की माता रामचंद्र को सिय समर्पण कर रही हैं. वह कह रही हैं :

परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी.

—बाल कांड, 368 छंद 1

(कुटुंब के लोगों को, पुर के लोगों को, मुझे और राजा—जनक—को सीता प्राणों से प्यारी है.)

यह बात एकदम स्वाभाविक है और सीता के गुणों के अनुरूप है. किंतु अब इस स्थान पर तुलसीदास क्या चाहते हैं :

तुलसी ससीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी.

—बाल कांड, 368, छंद 1

(तुलसीदास कहते हैं : इस के सुशील स्वभाव तथा स्नेह को देख कर इस को अपनी दासी मानना.)

सहयोगिनी नहीं, सहधर्मिणी भी नहीं, एकदम किंकरी. कोई आश्चर्य नहीं यदि आज की विकृत संस्कृति में स्त्री एकदम पांव की जूती कही और समझी जाती है.

अब रामचंद्र तथा सब कोई अयोध्या में हैं. रामचंद्र सोने जा रहे हैं. उस समय कौशल्या आदि उन की सभी माताएं कह रही हैं :

मुनि तिय तरी लगत पग धूरी, कीरति रही भुवन भरि पूरी.

—बाल कांड, 390-2

(तुम्हारे पांव की धूल लगते ही मुनि की स्त्री—अहल्या—तर गई. इस बात का यश सारे संसार में फैल रहा है.)

भावना का प्रश्न है. रामचंद्र भगवान हैं, और भगवान सभी कुछ करने न करने तथा उल्टासीधा करने में भी समर्थ हैं. अन्यथा मुनि विश्वामित्र के गुरुकुल में रहने वाले रामलक्ष्मण की युगल मूर्ति का किसी स्त्री की पाषाण मूर्ति तक को स्पर्श करना अवश्य चिंत्य है. स्पर्श आवश्यक ही था, तो क्या हाथ से स्पर्श नहीं हो सकता था? लेकिन वहां तो मुनितिय तक के लिए पगधूरी ही अपेक्षित थी. ऐसी कथाओं की ऐतिहासिकता विशेष विचारणीय नहीं है, किंतु वे जिस भावना की प्रतीक हैं, क्या वह भी चिंत्य नहीं है?

राम विवाह के बाद दूसरा बड़ा मंगल कार्य जो होने को है और जिस का

निर्णय ही नहीं, जिस की घोषणा तक हो चुकी है, वह रामचंद्र का राजतिलक है. उस मंगल कार्य में बाधा डालने वाली कौन है? एक स्त्री. रामचंद्र के वन-गमन का कारण कौन है? एक स्त्री. राजा दशरथ के शरीरांत का कारण कौन है? एक स्त्री.

जिस प्रकार अर्थशास्त्र के नियमानुसार खोटा पैसा अच्छे पैसे के प्रचलन के मार्ग में बाधक बन जाता है, उसी प्रकार हमें लगता कि कौशल्या, सुमित्रा आदि के आदर्श चरित्रों ने स्त्रियों के बारे में लोगों की सम्मति को अच्छा बनाने में वह कार्य नहीं किया जो कार्य केकई तथा मंथरा के चरित्र ने सामान्य लोगों के मन में स्त्रियों के संबंध में जो धारणा रहती है, उसे कलुषित करने में.

ऐसे सब पात्रों को पाठकों तथा श्रोताओं के रोष से बचाने के लिए उन के सारे कुकर्मों को देवप्रेरित कहने का कवि कौशल चला आ रहा है. सिद्धार्थ गौतम का जो सारथी उन के वनगमन में सहायक हुआ था, उस की भी रक्षा इसी प्रकार की गई है. किंतु इस से भी बात रुक नहीं जाती. स्त्रियां मंथरा तथा केकई जैसी दुर्बुद्धि तथा दुष्टा भी होती हैं, यह धारणा मन में घर कर जाती है.

यों केकई का अपयश कुछ हद तक बंट गया है. उस का कुछ हिस्सा सरस्वती ने ले लिया है और कुछ मंथरा ने. हमें मंथरा का चरित्र बड़ा ही स्वाभाविक लगता है. न सभी पुरुष ही हर समय देवता होते हैं और न सभी स्त्रियां ही हर समय देवी. मंथरा का चरित्र लोकसुलभ चरित्र है, लेकिन उस की बुद्धि भी तो सरस्वती द्वारा ही भरमाई है. लिखा है :

नामु मंथरा मंदमति चेरि कैकेई केरि,
अजस पिटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि.

अयोध्या कांड, 13

(केकई की एक मूर्ख बुद्धि वाली दासी थी जिस का नाम मंथरा था. उसे अपयश की पिटारी बना कर सरस्वती उस की बुद्धि फेर गई.)

देवताओं में ब्रह्मा शुक्ल पक्ष का प्रतीक है और मार (कामदेव) कृष्ण पक्ष का. पता नहीं देवियों में सरस्वती के मुकाबले पर किसी कृष्णपक्षी देवी की कल्पना क्यों नहीं की गई? यह काम सरस्वती से न लिया जाता तो अच्छा था.

अब मंथरा की करतूत देखिए :

करै विचारु कुबुद्धि कुजाती, होइ अकाजु कवनि बिधि राती
देखि लागि मधु कुटिल किराती जिमि गंव तकै लेउं केहि भांती
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी, का अनमनि हसि कह हंसि रानी
उतरु देह नहिं लेइ उसासू, नारिचरित करि ढारइ आंसू

—अयोध्या कांड, 13-2,3

खोटी बुद्धिवाली और खोटी—नीच—जाति वाली मंथरा विचार करने लगी कि रात ही रात में यह काम कैसे बिगाड़ा जाए? जिस तरह कुटिल भिलनी शहद के छत्ते को लगा देख कर अपना मौका ताकती है कि इस को किस तरह

लूं. यह बिलखती हुई भरत की माता केकई के पास गई. उस को देख कर केकई ने कहा कि आज तू उदास क्यों है? मंथरा कुछ जवाब नहीं देती और लंबी सांस खींचती है और स्त्री चरित्र कर के आंखों से आंसू टपकाती है.

इन दोनों चौपाइयों में खोटी जाति वाली मंथरा की उपमा देते समय तुलसीदास ने इस बात का विचार नहीं किया मालूम देता है कि सारी की सारी किरात जाति के स्त्री पक्ष को कुटिल कह देना कहां तक ठीक है? इस का मात्र समाधान यही हो सकता है कि उन्होंने तो मात्र मधुलोलुप किराती को ही कुटिल कहा है. तब इसी प्रकार मंथरा के आंसू टपकाने को भी तो सर्वसाधारण नारियों का चरित्र कह कर कुछ कम आपत्तिजनक स्थिति नहीं रहने दी है.

स्वयं केकई भी, जिस की बुद्धि अभी स्थिर है, कह रही है :

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि,
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि. —अयोध्या कांड,25

(काने, लंगड़े कुबड़े—ये बड़े कुटिल और कुचाली होते हैं, और उन में भी स्त्री और फिर विशेष रूप से दासी—ऐसा कह कर भरत मातु मुसकाई.)

विनोद में कही हुई बात भी प्रायः सर्वथा यथार्थ नहीं होती. यहां केकई के मुख से भी प्राकृत स्त्रियों के संबंध में तुलसीदास की जो प्रतिक्रियावादी मान्यताएं हैं, उन्होंने ही अभिव्यक्ति पाई प्रतीत होती है.

किंतु कुछ ही देर में केकई मंथरा के वशीभूत हो जाती है. तुलसीदास कहते हैं:

गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधर बुद्धि रानि,
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि. —अयोध्या कांड, 17

(स्त्रियों की बुद्धि होठों में होती है अर्थात वे बातों में आ कर चलविचल हो जाया करती हैं. तदनुसार रानी कैकेयी ने गुप्त कपट भरे, प्यारे वचनों को सुन कर, देवताओं की माया के वश में हो कर बैरिन मंथरा को अपना हितू जान कर उस का विश्वास कर लिया.)

यहां मंथरा भी दोषी है, देवताओं की माया भी दोषी है, किंतु इस सब को दोष देने की क्या आवश्यकता जब तुलसीदास के अनुसार स्त्रियों की बुद्धि होठों में ही होती है, अर्थात वे बातों में आ कर चलविचल हो जाया करती हैं? स्त्रियों के बारे में कितनी दरिद्र सम्मति है? बातों में आ कर तो समयसमय पर सभी चलविचल हो जाया करते हैं— क्या पुरुष और क्या स्त्री.

इस समय केकई पूर्णतः मंथरा के वश में है और राजा संपूर्ण रूप से केकई के वशीभूत. इस अवसर पर तुलसीदास की अपनी टिप्पणी है:

जद्यपि नीति निपुन नर नाहू, नारि चरित जलनिधि अवगाहू.
—अयोध्या कांड, 27-4

(यद्यपि नरनाथ दशरथ राजनीति में दक्ष थे, परंतु स्त्री चरित्र रूपी समुद्र अथाह है)

उस युग में जब राज्य किसी भी राजा की व्यक्तिगत संपत्ति समझा जाता

था और उसे राजा जिसे चाहे दे सकता था, पत्नी आसक्त वृद्ध दशरथ से कोई भी विवेकपूर्ण निर्णय कराने के लिए किसी अथाह समुद्र की आवश्यकता नहीं थी.

आगे एक चौपाई में प्रसंगवश स्त्री को सहगामिनी भी कहा है, जो प्रयोग निस्संदेह स्वागत करने योग्य है. लिखा है:

मंगल सकल सोहाहिं न कैसें, सहगामिनिहि विभूषन जैसें.

- अयोध्या कांड, 37-4

(जैसे सती होने के लिए तैयार स्त्री को गहने नहीं सुहाते, वैसे ही सभी मंगल साज राजा को नहीं सुहाते.)

यह सहगामिनी भी परलोकपथ की ही सहगामिनी है.

राजा दशरथ तथा राम के प्रति केकई के दुर्व्यवहार से दुखी हो कर अयोध्या निवासी एक केकई की ही नहीं, समस्त स्त्री जाति की निंदा कर रहे हैं:

सत्य कहहिं कबि नारिसुभाऊ, सब विधि अगहु अगाध दुराऊ.
निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई, जानि न जाइ नारिगति भाई.

—अयोध्या कांड, 47-4

(विद्वानों ने स्त्रियों का स्वभाव ठीक कहा है. उन का कपट सभी तरह अगम और अथाह होता है. कोई अपनी परछाईं को भले ही पकड़ ले, पर भाई, स्त्री की गति—चाल—नहीं जानी जाती.)

अगले दोहे में तो निंदा की पराकाष्ठा ही हो गई:

काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ,
का न करइ अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ —अयोध्या कांड, 48

(आग में क्या नहीं जल सकता! समुद्र में क्या नहीं समा सकता! प्रबल अबला क्या नहीं कर सकती और संसार में काल किसे नहीं खा सकता!)

प्राकृत स्त्रियों के बारे में तुलसी युग की कुछ ऐसी ही मान्यता रही प्रतीत होती है. यदि तुलसीदास भी उस से ऊपर नहीं उठ सके, तो इस से यही सिद्ध होता है कि हर महान पुरुष जहां अपने युग का निर्माता होता है वहां अपने युग की उपज भी होता है.

अब वनगमन का प्रसंग है. रामचंद्र चाहते हैं कि सीता घर पर रहें और माताओं की सेवा करें, किंतु सीता बन चलने का हठ कर रही हैं, कह रही हैं:

जहं लगि नाथ नेह अरु नाते, पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते.
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू, पतिबिहीन सब सोकसमाजू.
भोग रोग सम भूषन भारू, जम जातना सरिस संसारू.
प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं, मो कहुं सुखद कतहुं कछु नाहीं.

अयोध्या कांड, 65-2,3

(हे नाथ, जितने भी स्नेह संबंध तथा नाते हैं, वे स्त्री के लिए पति के न रहने पर सूर्य से भी अधिक तपाने वाले हैं. शरीर, धन, मकान, पृथ्वी और नगर का राज्य पतिहीन स्त्री के लिए सब शोक का समाज—समूह—है. पति बिना

सब प्रकार के भोग रोग के समान और गहने बोझ हैं, संसार यमराज की यातना के समान है. हे प्राणनाथ, जगत में मेरे लिए तुम्हारे बिना सुख देने वाला कहीं कुछ भी नहीं.)

इतना ही नहीं, और भी है:

जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी, तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी.

—अयोध्या कांड, 65-4

(हे नाथ, जिस तरह बिना जीव के शरीर और बिना पानी के नदी व्यर्थ है, उसी तरह बिना पुरुष के स्त्री भी व्यर्थ है.)

लगता है कि यहां सीता के मुख से एक प्राकृत नारी की सहज दयनीय दशा ही अभिव्यक्ति पा गई है. इस से अधिक दयनीय स्थिति और हो भी क्या सकती है?

आगे वन में पहुंच जाने पर भी जब सुमंत्र की प्रेरणा से रामचंद्र सीता को वापस अयोध्या जाने का आग्रह कर रहे हैं तो भी सीता वही, बल्कि उस से भी बढ़ कर, बात दोहरा रही हैः

प्रभु करुनामय परम बिबेकी, तनु तजि रहति छांह किमि छेकी.
प्रभा जाइ कंह भानु बिहाई, कंह चंद्रिका चंदु तजि जाइ.

(आप तो परम विचारवान और दयामय हैं. जरा सोचिए तो कि शरीर की छाया शरीर को छोड़ कर अलग कैसे रह सकती है? सूर्य को छोड़ कर धूप कहां जा सकती है? चंद्रमा को छोड़ कर चांदनी कहां रह सकती है?)

रामचंद्र तथा सीता की स्नेहमूलक व्यक्तिगत अभिन्नता को यदि प्रमुखता न दी जाए तो क्या इन दो चौपाइयों का सारांश इतना ही नहीं है कि पुरुष तो शरीर है, स्त्री उस की छायामात्र है; पुरुष तो सूर्य है, स्त्री उस की धूप मात्र है और पुरुष तो चंद्रमा है, स्त्री उस की चांदनी मात्र है?

क्या सचमुच स्त्री का पुरुष से भिन्न और पृथक अपना कोई व्यक्तित्व हो सकता है? सत्य तो यह है कि स्त्री रूपी लता में ही पुरुष रूपी फल फलतेफूलते हैं.

भरत अपने मामा के यहां से लौट आए. उन्हें पता लग गया कि उन की माता राम के वनवास तथा पिता के स्वर्गवास का कारण हुई हैं. अपनी माता की करनी को सभी स्त्रियों पर घटा कर भरत कहते हैं :

बिधिहु न नारि हृदय गति जानी, सकल कपट अघ अवगुन खानी.

—अयोध्या कांड, 162-2

(स्त्री के हृदय की गति को विधाता भी नहीं जान सकता. स्त्री का हृदय सभी तरह के कपट पाप और अवगुणों की खान होता है.)

और पुरुषों का हृदय?

इस समय सीता को ऋषिपत्नी अनुसूया उपदेश दे रही हैं. वह विस्तृत है. कहा है :

मातु पिता भ्राता हितकारी, मितप्रद सब सुनु राजकुमारी.

अमितदानी भर्त्ता बैदेही, अधम सो नारि जो सेव न तेही.

---अरण्य कांड, 7-1,2

(हे राजकिशोरी सीता, सुनो, माता, पिता, भाई, हितैषी सब मितदाता—परिमित मात्रा में देने वाले--हैं. किंतु, हे वैदेही, पति अमित—अपरिमित मात्रा में—देने वाला है. वह स्त्री अधम है जो पति की सेवा न करे.)

अपने आर्थिक स्वार्थ को भी न समझ कर जो स्त्री पति सेवा न करे, उसे चाहे मूर्ख भले ही कह लें, किंतु अधम न जाने क्यों कहा गया है!

अनुसूया का उपदेश है :

धीरज धरम मित्र अरु नारी, आपद काल परखिअहीं चारी.
वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना, अंध बधिर क्रोधी अति दीना.
एसेहु पति कर किए अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना.
एकइ धरम एक व्रत नेमा, काय बचन मन पतिपद प्रेमा.

—अरण्य कांड, 7 2,3,4

(हे सीता, धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री इन चारों की परीक्षा आपद काल में लेनी चाहिए. बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, धनहीन, अंधा, बहरा, क्रोधी, अत्यंत दीन—ऐसे पति का भी अपमान करने से स्त्री यमपुरी में अनेक दुख पाती है. स्त्री के लिए एक ही धर्म और एक ही व्रतनियम है कि शरीर से, मन से और वचन से पति के चरणों में प्रेम करे.)

इस एक ही धर्म और एक ही व्रतनियम की विस्तृत व्याख्या भी प्राप्य है :

जग पतिव्रता चारि बिधि अहहीं, वेद पुरान संत सब कहहीं.
उत्तम के अस बस मन माहीं, सपनहुं आन पुरुष जग नाहीं.
मध्यम पर पति देखै कैसे, भ्राता पिता पुत्र निज जैसे.
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई, सो निकृष्ट तिय स्रुति अस कहई.
बिनु अवसर भय ते रह जोई, जानेहु अधम नारि जग सोई.
पतिबंचक पर पति रति करई, रौरव नरक कलप सत परई.

अरण्य कांड, 7-4, 8-1,2,3

(वेद, पुराण और सब सतपुरुष कहते हैं कि जगत में पतिव्रता चार प्रकार की हैं. उत्तम स्त्री के मन में ऐसा निश्चय हो जाता है कि उस के लिए जगत में अपने पति के सिवा स्वप्न में भी कोई पुरुष नहीं है. मध्यम स्त्री-दूसरी स्त्री—पति को ऐसे देखती है जैसे अपना भाई, पिता या पुत्र हो. जो स्त्री धर्म का विचार कर और कुल की रीति को समझ कर रह जाए, वह स्त्री निकृष्ट—नीच—है. जो स्त्री अवसर न मिलने के कारण या डर से बची रहे, वह स्त्री संसार में अधम है. जो अपने पति से छल कर के दूसरे पति से प्रेम करती है, वह सौ कल्प पर्यंत रौरव नरक में गिरती है.

क्या सचमुच स्त्री के लिए लैंगिक सदाचार ही एक मात्र धर्म और एक मात्र व्रतनियम है? अनुसूइया इस बात को तनिक भी प्रच्छन्न नहीं रहने देना

चाहती. वह कहती है :

छन सुख लागि जनम सत कोटी, दुख न समुझ सम को खोटी.
बिनु स्रम नारि परम गति लहई, पतिब्रत धरम छांड़ि छल गहई.
पति प्रतिकूल जनम जंह जाई, बिधवा होइ पाइ तरुनाई.

—अरण्य कांड, 8-3,4

(क्षण भर के सुख के लिए सैकड़ोंकरोड़ोंजन्म के होने वाले दुखों को जो न समझे भला उस के बराबर खोटा और कौन हो सकती है: जो स्त्री छल को छोड़ कर पतिव्रत धर्म का पालन करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गति—स्वर्ग—पा जाती है. जो स्त्री पति से प्रतिकूल रहती है, वह कहीं भी जन्म ले, तरुण अवस्था में ही विधवा हो जाती है.)

अनुसूइया के सारे उपदेशों का सार उन्हीं के शब्दों में है :

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहै. —अरण्य कांड 9

(स्त्री स्वभाव से ही अपवित्र है. पति की सेवा करने से ही उसे सद्गति प्राप्त होती है.)

हमें यह नोट करने के लिए क्षमा किया जाए कि यह एक सहज अपावन नारी का ही दूसरी सहज अपावन नारी को दिया गया उपदेश है. क्या जो स्वभाव से ही अपवित्र है, उस की भी शुद्धि हो सकती है?

अरण्य कांड में ही कुछ ही आगे जाने पर कागभुशुंडि अनुसूइया का पूर्ण समर्थन कर रहे हैं :

भ्राता पिता पुत्र उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी.
होइ बिकल सक मनहिं न रोकी, जिमि रबिमनि द्रब रबिहिं बिलोकी.

—अरण्य कांड, 28-4

(हे गरुड़, स्त्री मनोहर पुरुष को देखते ही, वह चाहे भाई हो, पिता हो या पुत्र ही क्यों न हो, विकल हो जाती है और अपने मन को रोक नहीं सकती. जैसे सूर्य को देख कर सूर्यकांत मणि पिघल जाती है, वैसे ही सुंदर पुरुष को देख कर स्त्री पिघल जाती है.)

क्या सुंदर स्त्री को देख कर पुरुष भी नहीं पिघल जाता? तब न जाने यह एकतरफा डिग्री क्यों?

स्त्रियों के बारे में अथवा स्त्री धर्म के बारे में किस का क्या मत है, अब हम इस प्रसंग को थोड़ी विश्रांति लेने दें. इस अवसर पर अब हम रामचरितमानस के कथासूत्र को पकड़ेपकड़े वहां पहुंच जाते हैं जहां लक्ष्मण मूल, फल, कंद लेने के लिए वन में गए हुए हैं, रामचंद्र सीता पर अपनी भावी योजना प्रकट कर रहे हैं :

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला, मैं कछु करब ललित नर लीला.
तुम्ह पावक मंह करहु निवासा, जौं लगि करौं निसाचर नासा.

—अरण्य कांड, 42-1

(हे सुशीले, प्रिये, मेरा एक सुंदर व्रत—नियम—सुनो. मैं कुछ मनोहर मनुष्यलीला करूंगा. इसलिए मैं जब तक राक्षसों का नाश करूं, तब तक तुम अग्नि में निवास करो.)

रामचंद्र की आज्ञा के अनुसार सीता स्वयं तो अग्नि में प्रविष्ट हो गई और अपने प्रतिबिंब को वहां रख गई जिस का शील और रूप सीता जैसा ही था. लिखा ही है:

निज प्रतिबिंब राखि तहं सीता, तैसइ सील रूप सुबिनीता.

—अरण्य कांड, 42-2

न जाने रामचरितमानस में यह सीता के अग्निप्रवेश की कल्पना क्यों की गई है? हमें इसी बात का ध्यान बना रहता है कि जब सीता वास्तविक सीता नहीं थीं, तो रामचंद्र का उन की खोज करना, रामरावण युद्ध और राक्षसों का वध आदि सभी अपना मूल्य और महत्त्व गंवा देते हैं. सारे रामचरितमानस की ऐतिहासिकता ही बालू की भीत बन जाती है. अधिक सोचने पर लगता है कि स्त्रियों के संबंध में जो हड्डीगतमज्जागत विचित्र संस्कार हैं, उन की पवित्रता तथा दौर्बल्य के संबंध में जो पुरुष पक्ष की धारणाएं हैं, उन्हीं के कारण रामचरितमानस में इस कल्पना ने स्थान पाया है. प्रश्न पैदा होता है कि यदि रामचंद्र वन में वास्तविक सीता को बिना अग्नि में प्रवेश कराए स्वयं निश्चित नहीं रह सकते थे, तब उन्हें अयोध्या में ही छोड़ आना उचित था. रामचरितमानस की यह कल्पना पर्याप्त चित्य है.

अब सीताहरण हो चुका है. रास्ते में भिलनी से भेंट होती है, स्त्री की निंदा का एक प्रसंग आ गया है. भिलनी कह रही है:

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी अधम जाति मैं जड़मति भारी.
अधम ते अधम अधम अति नारी, तिन्ह मंह मैं मतिमंद अधारी.

—अरण्य कांड, 62-1,2

(हे नाथ, मैं आप की स्तुति किस तरह करूं? मैं अधम—नीच—जाति हूं और मेरी भारी जड़बुद्धि है. हे पाप का नाश करने वाले, जो नीचों से नीच हैं, स्त्रियां उन से भी नीच हैं, मैं उन में भी मंदबुद्धि और गंवारिन हूं.)

यदि किसी जाति के अर्द्धांश के दिमाग में कीलें ठोंकठोंक कर यह बात बैठाने का निरंतर प्रयास किया जाए कि जो नीचों से नीच है उस से भी वह नीच है, तो फिर भला उस जाति की उन्नत्ति कैसे हो सकती है?

भिलनी ही क्या, स्वयं रामचंद्र कह रहे हैं:

राखिअ नारि जदपि उर माहीं, जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं.

—अरण्य कांड, 65-1,5

(स्त्री को चाहे हृदय से लगा कर रखो, तो भी स्त्री, शास्त्र और राजा किसी के वश में नहीं रहती.)

इस समय रामचंद्र विरहव्याकुल पुरुष की नरलीला कर रहे हैं. इसलिए

आप चाहें तो उन की सम्मति को अधिक मूल्य न भी दें. इसी प्रसंग में रामचंद्र लक्ष्मण को भी संबोधित कर के कह रहे हैं:

लछिमन देखत काम अनीका, रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका.
एहि कें एक परमबल नारी, तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी.

—अरण्य कांड, 67-6

(हे लक्ष्मण जो लोग कामदेव की सेना को देख कर धीरज रखें वे ही संसार में मान्य होंगे. इस कामदेव का एक परम बल है—स्त्री. जो कोई उस से उबर जाए वही भारी योद्धा है.)

क्या स्त्री कामदेव का परमबल छोड़ कर और कुछ नहीं है?

आगे फिर रामचंद्र ने अपने कथन को दोहराया है :

लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि;
क्रोध के पुरुष वचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि. —अरण्य कांड, 69

(मुनिवरों ने विचार कर कहा है कि लोभ का बल तो इच्छाएं और दंभ—पाखंड—हैं, कामदेव का बल केवल स्त्री ही है और क्रोध का बल कठोर वचन हैं.)

लगता है मुनिवरों ने विचार कर नहीं कहा. नहीं तो स्त्री को केवल कामदेव का बल नहीं कहते. जिस प्रकार उन्होंने इच्छाओं और दंभ को लोभ का मूल कहा, कठोर वचन को क्रोध का मूल कहा, उसी प्रकार यदि वह विचार से काम लेते तो क्या चित्त की किसी वृत्तिविशेष को ही काम का मूल भी नहीं ठहरा सकते थे?

लेकिन यह क्या कि न रहे बांस और न बजे बांसुरी!

अभी रामचंद्र का कथन शेष नहीं हुआ है. आगे नारद मुनि को संबोधित कर वे कहते हैं :

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि;
तिन मंह अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि.

—अरण्य कांड, 76

(काम, क्रोध, लोभ मद आदि प्रबल मोह की धाराएं हैं. उन में अत्यंत कठिन दुख देने वाली माया रूपिणी स्त्री है.)

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता, मोह बिपिन कहुं नारि बसंता.
जपतप नेम जलासय भारी, होइ ग्रीषम सोखै सब नारी
काम क्रोध मद मत्सर भेका, इनहीं हरषद बरषा एका.
दुर्बासना कुमुद समुदाई, तिन्ह कंह सदा सरद सुखदाई.
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा, होइ हिम तिन्हहिं दहइ सुख मंदा.
पुनि ममता जवास बहुताई. पलुहै नारि सिसर रितु पाई.
पाप उलूक निकर सुखकारी, नारि निबिड़ रजनी अंधियारी.
बुद्धि बल सील सत्य सब मीना, बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना.

—अरण्य कांड, 76-1,2,3,4.

(हे मुनि, सुनो. पुराण, वेद और संत कहते हैं कि मोह रूपी वन में नारी वसंत ऋतु है. वही ग्रीष्म ऋतु हो कर जप, तप, नियम आदि सब जलाशयों को सुखा देती है. वही स्त्री वर्षा ऋतु रूपिणी हो कर काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि मेंढ़कों के लिए सुख देने वाली हो जाती है और दुष्ट वासनारूपी कुमुदिनियों के समूह को सदा सुख देने वाली शरद ऋतु रूपिणी हो जाती है. मंद—थोड़ा—सुख देने वाली स्त्री हेमंत ऋतु रूपिणी हो कर समस्त धर्म रूपी कमलों के समूहों को पाला बन कर मार डालती है, फिर शिशिर ऋतु हो कर वह ममता रूपी जवासे को खूब हराभरा कर देती है. स्त्री रूपिणी घोर अंधेरी रात पाप रूपी उल्लुओं के समूह को सुख देने वाली है और बुद्धि, बल शील तथा सत्य—इन मछलियों के लिए स्त्री बंसी रूपिणी हो जाती है. ऐसा चतुर लोग कहते हैं.)

नारी के दुर्गणों का इतना मनमोहक काव्यमय सहस्रनाम सुना कर अंत में रामचंद्र ने ही नारद मुनि से कहा है :

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि,
ता ते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि.

—अरण्य कांड, 77

(इस तरह स्त्रियां अवगुणों की जड़, पीड़ा देने वाली और सब दुखों की खान हैं. यही सब समझ कर मैं ने तुम को विवाह नहीं करने दिया.)

नारद मुनि आखिर मुनि थे. अच्छा ही हुआ कि वह रामचंद्र से यह नहीं पूछ बैठे कि यदि स्त्रियां सब अवगुणों की मूल, पीड़ा देने वाली और दुख की खान हैं, तो फिर आप ही क्यों सीता की खोज में वनवन भटक रहे हैं? निस्संदेह यह एक अत्यंत दारुण प्रश्न होता. ऊपर की चौपाइयों में काव्य के निखार के साथ जब उन में अभिव्यक्त विचार की तुलना की जाती है, तब तो ऐसा मालूम होने लगता है कि न जाने कैसे कनकघट में विष की बूंदें समा गई हैं.

किंतु तुलसीदास तो कदाचित इतना ही कहना चाहते हैं:

दीप सिखा सम जुवतितन मन जनि होसि पतंग. —अरण्य कांड, 58

(युवतियों का तन तो दीपशिखा के समान है, और पुरुषों का क्या केवल भ्रमर या सुकोमल पतंग के ही समान है?)

यह देख कर आश्चर्य होता है कि तुलसीदास युवतियों को दीपशिखा तो मानते ही थे, शायद वह उन की स्वतंत्रता के भी परम विरोधी थे. बात की बात है. कर तो रहे हैं वर्षा ऋतु का वर्णन, किंतु क्या गजब की उपमा दे रहे हैं:

महाबृष्टि चलि फूटि किआरी, जिमि सुतंत्र भए बिगरहिं नारी.

—किष्किंधा कांड, 16-4

(भारी वर्षा होने पर क्यारियां इस तरह फूट चलीं जिस तरह स्वतंत्र हो जाने पर स्त्रियां बिगड़ जाती हैं.)

इस चौपाई में स्पष्ट ही मनुस्मृति के प्रसिद्ध श्लोक की छाया है जिस का आशय है कि स्त्री कुंआरी रहती है तो पिता रक्षा करता है, युवती होने पर पति रक्षा करता है; बुढ़ापे में पुत्र रक्षा करता है—वह किसी भी अवस्था में स्वतंत्रता की अधिकारिणी नहीं है.

जिस देश की माताएं ही परतंत्र होंगी, वह देश या तो स्वतंत्र हो नहीं सकता, यदि हो भी जाए तो रह नहीं सकता.

यदि किसी प्रकार स्त्रियां स्वतंत्रताभिमुख ही हो जाएं तो समुद्र ने रामचंद्र से कहा है:

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी सकल ताड़ना के अधिकारी.

—सुंदर कांड, 62-3

(ढोल, गंवार, शूद्र, पशु और स्त्री—ये सब ताड़ना के अधिकारी हैं.)

ढोल और पशु के साथ ही अगर गंवार, शूद्र और नारी ताड़ना के अधिकारी हैं, तो भारत का बहुमत ताड़ना के ही योग्य हुआ—गंवार भी, शूद्र भी और स्त्रियां भी. कुछ लोगों ने 'नारी' शब्द की तरहतरह की व्याख्या कर के तुलसीदास की वकालत करने का प्रयास किया है. उन की एक मात्र युक्तियुक्त वकालत यही हो सकती है कि यह एक गंवार जलनिधि का कथन है जो किसी भी तरह अनुकरणीय तो है ही नहीं, ध्यान देने योग्य भी नहीं है.

रामरावण युद्ध हो चुका है. सीता लौट आई है. यह तो किसी को ज्ञात ही नहीं था कि वास्तविक सीता का कभी हरण नहीं हुआ. वास्तविक सीता तो अग्नि में सुरक्षित रहीं. रावण तो केवल उन के प्रतिबिंब को, उन जैसी बनावटी मूर्ति को ले गया था. तब भी लोकापवाद के लिए तो स्थान था ही. रामचंद्र ने सीता को अथवा उन के प्रतिबिंब को सार्वजनिक तौर पर अपनी शुद्धि प्रमाणित करने के लिए कहा. प्रतिबिंब के अग्निप्रवेश द्वारा और आग में से वास्तविक सीता के सकुशल बाहर आने से सीता की शुद्धि प्रमाणित हुई.

इस अग्नि परीक्षा के बाद भी सीता के साथ क्या बीती, यह सर्वविदित है. क्या यह सब स्त्री होने का अभिशाप नहीं कहा जाएगा?

तुलसीदास ने अति संक्षेप में स्त्रियों के संबंध में अपनी समस्त धारणा को पुंजीभूत कर दिया है:

अबला कच भूषन भूरि छुधा, धनहीन दुखी ममता बहुधा.
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता, मति थोरि कठोरि न कोमलता.

—उत्तर कांड, 161, छंद 1

(स्त्रियों के केश ही उन के भूषण हैं, उन्हें भूख बहुत लगती है, वे धनहीन होती हैं, दुखी होती हैं, उन में ममता बहुत होती है, वे मूर्खा धर्मरता तो होती नहीं, किंतु सुख चाहती हैं. उन में बुद्धि अधिक नहीं होती, वे कठोर होती हैं, उन में कोमलता नहीं होती.)

नारियों के संबंध में इसी प्रकार के विचार रखने और उन्हें व्यक्त करने

के लिए हमें तुलसीदास से विशेष शिकायत नहीं है. भारतीय धर्म परंपरा के न जाने कितने उन्नायकों ने इन्हीं विचारों से मिलतेजुलते विचार व्यक्त किए हैं. कुछ स्मृतिकारों ने किए हैं, कुछ साधुसंतों ने किए हैं और कई दिग्गज आर्यों ने भी किए हैं.

हमें शिकायत है केवल तुलसीदास के उन आधुनिक भाष्यकारों से जो तुलसीदास को प्रगतिशील शब्द के वर्तमान अर्थों में प्रगतिशील सिद्ध करने का प्रयास करते हुए लगभग हर दिशा में प्रगतिशीलता का सर्टीफिकेट प्रदान करना चाहते हैं.

कम से कम आधुनिक युग की रमणियां तो तुलसीदास के उक्त विचारों को मानने से रहीं. वे उन की होली न जलाएं—यही बहुत है. ●

रामचरितमानस में ब्राह्मणशाही

गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस की रचना में ब्राह्मणशाही के निहित स्वार्थों का काफी हाथ है. उन्हें ब्राह्मणशाही के ढहते हुए किले से जो मार्मिक वेदना हो रही थी, वह उत्तर कांड के इस दोहे से स्पष्ट है:

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्हते कछु घाटि,
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आंखि देखावहिं डांटि.

—उत्तर कांड: 157.

(शूद्र लोग ब्राह्मणों के साथ विवाद करते हैं—क्या हम तुम से कुछ कम हैं? जो ब्रह्म को जाने वही ब्राह्मण है, कहते हुए डांट कर आंखें दिखाते हैं.)

ब्राह्मणशाही के ढहते हुए किले को गिरने से बचाने के लिए गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित द्वारा गाराचूना लगाने का प्रयास किया है. हो सकता है यह प्रयास जानबूझ कर न किया गया हो, उन के अचेतन मन की जड़ीभूत हो गई धारणाओं की अभिव्यक्ति मात्र हो. यदि ऐसा है, तब तो यह और भी चिंता का विषय है. बालकांड के आरंभ में ही उन्होंने कहा है:

बंदउं प्रथम महीसुर चरना, मोहजनित संसय सब हरना.

—बाल कांड: 2.

(मैं सर्वप्रथम अज्ञान से उत्पन्न संदेहों को दूर करने वाले ब्राह्मणों के चरणों को प्रणाम करता हूं)

इस चौपाई के प्रथम दो चरणों के एक से अधिक अर्थ हो सकते हैं. मैं सर्वप्रथम अज्ञान से उत्पन्न संदेहों को दूर करने वाले ब्राह्मणों (गुणवाचक प्रयोग) के चरणों को प्रणाम करता हूं, जो अज्ञान से उत्पन्न संदेहों को दूर करने वाले हैं. यह पहला अर्थ तो सर्वश्रेष्ठ है, किंतु हमें खेद है कि गोसांई तुलसीदास को ऐसा कोई अभिप्रेत नहीं. उन को तो एक ही अर्थ अभिप्रेत है, और वह यह है कि मैं सभी ब्राह्मणों के चरणों को नमस्कार करता हूं, क्योंकि वे अज्ञान से उत्पन्न सब संदेहों को दूर करने वाले हैं.

राम कथा का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थल वह है, जहां 'हरि अवतार' की चर्चा है.

हरि अवतार हेतु जेहि होई, इदमित्थं कहि जाइ न सोई.

—बाल कांड 147-1.

(हरि का अवतार जिस लिए होता है, वह कारण बिलकुल ठीकठीक नहीं कहा जा सकता.)

आगे वही कारण बताया भी है :

जब जब होइ धरम कै हानी, बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी.
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी, सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी.
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा.

—बाल कांड 147-3,4.

(जबजब धर्म की हानि होती है—नीच, अभिमानी, असुर बढ़ जाते हैं और वर्णनातीत अनीति करने लग जाते हैं. जिस से ब्राह्मण, गुरु, देवता और पृथ्वी दुख पाते हैं, तबतब प्रभु विविध अवतार धारण कर सज्जनों की पीड़ा दूर करते हैं.)

जिन के दुख से कृपानिधि हरि का हृदय द्रवीभूत होता है, उन में गऊ पशु जगत की प्रतिनिधि हैं, सुर अदृश्य जगत के प्रतिनिधि हैं और धरती जड़ प्रकृति की प्रतिनिधि है. मनुष्यलोक का प्रतिनिधित्व करने वाले एकमात्र ब्राह्मण ही हैं. मनुष्यों में से मात्र उन्हीं का आर्त्तनाद हरि के अवतार का कारण होता आया है.

हरि के अवतार के और भी कारण हैं. एक अवतार का वर्णन इस प्रकार हैं:

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ, जय अरु बिजय जान सब कोऊ.
बिप्र स्राप तें दूनऊं भाई, तामस असुर देह तिन्ह पाई.
कनककसिपु अरु हाटकलोचन, जगत बिदित सुरपति मदमोचन.
बिजई समर बीर बिख्याता, धरि बराह बपु एक निपाता.
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा, जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा.

—बाल कांड 148-3,4.

(विष्णु के सर्वविदित जय और विजय नाम के दो द्वारपाल थे. ब्राह्मणों के शाप के फलस्वरूप दोनों भाई असुर हो गए. एक हिरण्यकशिपु और दूसरा हिरण्याक्ष. वे इंद्र के गर्व को दूर करने वाले थे. वे युद्धविजयी तथा विख्यात वीर थे. उन में से एक (हिरण्याक्ष) को मारने के लिए विष्णु ने बाराह का रूप धारण किया और दूसरे को मारने के लिए विष्णु ने नरसिंह अवतार धारण किया.)

ऐसा भयानक था ब्राह्मण का शाप. वह 'हरि' के एक बार 'सुअर' और दूसरी बार 'नरसिंह' बनने का कारण बना. बात यहीं समाप्त नहीं होती, क्योंकि आगे उल्लेख है :

मुकुत न भए हते भगवाना, तीनि जनम द्विज बचन प्रमाना.

—बाल कांड 149-1.

(भगवान के द्वारा मारे जाने पर भी वे मुक्त न हुए, क्योंकि ब्राह्मणों ने उन्हें तीन जन्म तक का शाप दे दिया था.)

क्या इस से ब्राह्मण का शाप भगवान के मोक्षदायक बाणं से भी अधिक बलवान सिद्ध नहीं होता? इसी प्रकरण में वह लिखते हैं :

नारद श्राप दीन्ह एक बारा, कलप एक तेहि लगि अवतारा.

(एक बार ब्राह्मण नारद ने स्वयं भगवान को शाप दे दिया. इसलिए एक कल्प में उसी के कारण जन्म ग्रहण करना पड़ा.)

भगवान भी ब्राह्मण के शाप, उस के अधिकार से बाहर न रह सके. इसी शाप का आगे भी उल्लेख है :

श्राप सीस धरि हरषि हियं, प्रभु बहु बिनती कीन्हि.

—बाल कांड

(भगवान ने उन का शाप सिर पर रख कर प्रसन्न मन से उन से बहुत बिनती की.)

हम चार कदम भी आगे नहीं बढ़ पाते कि राजा प्रतापभानु के बारे में पढ़ते हैं :

गुर, सुर, संत, पितर महिदेवा, करइ सदा नृप सब कै सेवा.

—बाल कांड 182-2.

(राजा गुरु, देवता, संत, पितर तथा पृथ्वी के देवताओं अर्थात ब्राह्मणों की सदा सेवा किया करता था.)

ब्राह्मण अगर 'गुरु' हो तो सेवा समझ में आती है, संत पुरुष हो, तो भी समझ में आती है, किंतु वह कुछ भी न हो, केवल ब्राह्मण होने मात्र से ही सेवा का अधिकारी है. महिदेव अर्थात् पृथ्वी का देवता जो है! वह फिर लिखते हैं :

नाना बापीं कूप तड़ागा, सुमन बाटिका सुंदर बागा.
बिप्र भवन सुर भवन सुहाए, सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए

—बाल कांड 182-4.

(उस ने सभी तीर्थों में अनेक बावली, कुएं, सरोवर, फुलवारी, सुदंर बाग और ब्राह्मणों के लिए घर बनवाए तथा देवताओं के मंदिर.)

ब्राह्मणों के रहने के लिए पृथक घर क्यों? क्या ब्राह्मण उस युग के 'अछूत' थे?

एक कपटी 'मुनि' तक राजा प्रतापभानु से कहता है :

कालउ तव पद नाइहि सीसा, एक बिप्रकुल छांड़ि महीसा.
तपबल बिप्र सदा बरिआरा, तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा.
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा, तौ तव बस बिधि बिस्नु महेसा.

चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई, सत्य कहउं दोउ भुजा उठाई.
बिप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला, तोर नास नहिं कवनेहुं काला.

—बाल कांड : 194-1,3

(तुम्हारे चरणों में काल भी आ कर सिर झुकाएगा, एक ब्राह्मण कुल ही अपवाद रहेगा. तप का बल होने के कारण ब्राह्मण सदा बलवान हैं. उन के कोप से कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता. हे राजन, यदि तुम ब्राह्मणों को वश में रख सको, तो समझो कि ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी तुम्हारे वश में हैं. मैं दोनों हाथ उठा कर सत्य कहता हूं कि ब्राह्मणों से कोई पार नहीं पा सकता. हे राजन, तेरा नाश यदि होगा, तो केवल ब्राह्मण के शाप से ही होगा.)

राजा भानुप्रताप भी इस से इनकार नहीं करता :

सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा, द्विज गुरु कोप कहहु को राखा.

—बाल कांड : 165-3

(राजा ने मुनि के पांव पकड़ कर कहा, यह कथन सत्य है. ब्राह्मण और गुरु के कोप से कौन रक्षा कर सकता है?)

राजा के प्रार्थना करने पर मुनि ने उसे ब्राह्मणों को वश में करने के उपाय बता कर कहा :

एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरे, होइहहिं सकल बिप्र बस तोरे.
करिहहिं बिप्र होम मख सेवा, तेहि प्रसंग सहजहिं बस देवा.

—बाल कांड १६८-१.

(हे राजन, इस प्रकार थोड़े से कष्ट से ही सारे ब्राह्मण वश में हो जाएंगे. फिर वे होम और यज्ञ करेंगे और उस से सारे देवता भी वश में हो जाएंगे.)

ब्राह्मणों के प्रसन्न रहने से, सारे देवता भी वश में रहें, तो उन्हें प्रसन्न रखना कौन नहीं चाहेगा!

ब्राह्मणों ने, निरपराध राजा भानुप्रताप को अज्ञानवश शाप दे दिया. उन्हें विश्वास हो गया था कि राजा ने उन्हें ब्राह्मण मांस खिलाने का प्रयास किया. लेकिन जब ब्राह्मणों को आकाशवाणी के द्वारा वास्तविकता का बोध हुआ तो बोले :

भूपति भावी मिटइ नहिं, जदपि न दूषन तोर,
किए अन्यथा होई नहिं, बिप्र शाप अति घोर.

—बाल कांड: 204

(राजन, यद्यपि इस में तुम्हारा अपराध नहीं है, तथापि होनहार नहीं मिट सकता. ब्राह्मणों का शाप बड़ा घोर है. यह किसी तरह अन्यथा हो ही नहीं सकता.)

मतलब, यह सुप्रीम कोर्ट का निर्णय है, जिस के आगे फिर कोई दलील, अपील नहीं चल सकती.

इस का प्रमाण भी तुरंत ही मिलता है :

सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बांचा, विप्र श्राप किमि होइ असांचा.
—बाल कांड 204-3

(सत्यकेतु के कुल में कोई भी नहीं बचा. ब्राह्मणों का शाप असत्य कैसे हो सकता है.)

क्या आतंकवाद के इस से अधिक भयानक प्रचार की कल्पना की जा सकती है? यह प्रकरण रावण और विभीषण आदि के जन्म का है. उन सभी के बारे में लिखा है:

उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप,
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप.
—बाल कांड: 206.

(यदपि वे पवित्र, निर्मल और अनुपम पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न हुए थे, तथापि ब्राह्मणों के शाप से सब पाप के अवतार हुए.)

इतना तो तब हुआ, जब राजा भानुप्रताप निरपराध था, वह वास्तव में अपराधी रहा होता, तो न जाने ब्राह्मणों का शाप क्याक्या कर गुजरता.

रावण राज्य का चित्र खींचते हुए तुलसी कहते हैं:

सुभ आचरन कतहुं नहिं होई, देव बिप्र गुरु मान न कोई.
—बाल कां 214-4.

(कहीं कुछ भी शुभ आचरण नहीं रह गया था. देवताओं, ब्राह्मणों तथा गुरुओं को कोई नहीं पूछता था.)

ब्राह्मणों की पूछ, शुभ आचरण का अनिवार्य अंग है. बिना उस के शुभ आचरण की कल्पना असंभव है. इतना ही नहीं, उन्होंने ब्राह्मणों के मुख से अपने चरितनायक की जो स्तुति कराई है, वह भी विचारणीय है:

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता,
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता.

(हे देवताओं के स्वामी, भक्तों के सुखदायक प्रणतपाल भगवान, आप की जय हो. आप गौओं और ब्राह्मणों का हित करने वाले हैं, दैत्यों के वैरी हैं और लक्ष्मीपति हैं.)

तुलसी के भगवान गौओं और ब्राह्मणों का विशेष हित करने वाले हैं!

भगवान के अवतार लेने के कारण वह फिर लिखते हैं:

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार,
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार.
—बाल कांड: 224.

(यद्यपि भगवान माया, गुण और इंद्रियों से परे हैं, तो भी उन्होंने ब्राह्मण, गऊ, देवता और संतों के हित मनुष्य रूप धारण किया.)

यहां ब्राह्मणों का उल्लेख सब से पहले और संतों का उल्लेख गौओं तथा देवताओं के भी बाद है.

राम जन्म हो गया, तो राजा का दान देना स्वाभाविक है. उस का उल्लेख है:

तब नंदी मुख स्राद्ध करि जातकरम सब कीन्ह,
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहं दीन्ह.

बाल कांड: 225.

(राजा ने नंदी मुखश्राद्ध कर के जातकर्म संस्कार किया और फिर सुवर्ण, गाय, वस्त्र और मणि ब्राह्मणों को दान दिए.

अब तुलसी के इस राम का शरीर सौंदर्य देखिए:

उर मनिहार पदिक की सोभा, बिप्र चरन देखत मन लोभा.

—बाल कांड: 230-3.

(उन के हृदय में मणियों का हार और चौकी सुशोभित हैं, तथा ब्राह्मणों के चरणों का चिन्ह मन को मोहित कर लेता है.)

भगवान की छाती पर भी ब्राह्मण के चरण का चिह्न ही था और कोई शुभचिह्न नहीं!

विश्वामित्र रामलक्ष्मण की याचना के लिए राजा दशरथ से मिलने आए हैं. इस अवसर पर लिखा है:

मुनि आगमन सुना जब राजा,मिलन गयउ लै बिप्र समाजा.

ब्राह्मणों को साथ लिए बिना कहीं किसी का स्वागत तक न हो सकता था.

विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण को साथ लिए जनकपुरी की ओर बढ़े आ रहे हैं. रास्ते में गंगा का दर्शन होता है. इस अवसर पर लिखा है:

तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए, बिबिध दान महिदेवन्ह पाए.

—बाल कांड 244-2.

(फिर ऋषियों सहित भगवान नहाए. पृथ्वी के देवताओं—ब्राह्मणों ने नाना प्रकार के दान पाए.)

राजा जनक विश्वामित्र से मिलने के लिए आ रहे हैं, तो वहां भी:

संग सचिव सुचि भूरि भट, भूसुर बर गुर ग्याति,
चले मिलन मुनिनायकहि, मुदित राउ एहि भांति.

बाल कांड: 247

(राजा जनक प्रसन्न चित्त हो मंत्री, अनेक योद्धा और ब्राह्मण गुरु तथा घराने के लोगों को साथ ले कर विश्वामित्र से मिलने के लिए चले.)

राजा जनक का धनुष टूट चुका है. राम के वक्षस्थल पर जयमाला पड़ चुकी है. सभी प्रसन्न हैं:

नाचहिं गावहिं बिबुध वधूटीं, बारबार कुसुमांजलि छूटीं.
जहं तहं बिप्र वेद धुनि करहीं, बंदी बिरदावली उच्चरहीं.

—बाल कांड 297-2.

(अप्सराएं नाच गा रही हैं. बारबार फूलों की डालियां बरस रही हैं. ब्राह्मण लोग वेद ध्वनि कर रहे हैं, भाट लोग स्तुति गान कर रहे हैं.)

यहां भी ब्राह्मण लोग ही वेद ध्वनि कर रहे हैं. दूसरा कर ही कौन सकता था!

परशुराम के साथ वार्त्तालाप के समय लक्ष्मण की वाणी कितनी यथार्थवादी है :

बधें पाप अपकीरति हारें, मारतहूं पा परिय तुम्हारें.
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा, बृथा धरहु धनु बान कुठारा.

—बाल कांड, 305-4.

(आप को मार डालने से पाप लगेगा. आप से हारने में अपकीर्त्ति है. आप मारें तब भी आप के पांव ही पड़ना होगा. आप का वचन ही करोड़ों वज्रों के समान है. आप तो धनुषबाण तथा कुल्हाड़ा व्यर्थ ही धारण करते हैं.)

जाति विशेष के प्रत्येक सदस्य के संबंध में समस्त समाज की ऐसी धारणा हो और वह दृढ़ हो गई हो, तो फिर समाज को और किस सुरक्षा की आवश्यकता है?

लक्ष्मण ने कहा :

मिले न कबहुं सुभट रन गाढ़े, द्विज देवता घरहि के बाढ़े.

—बाल कांड, 308-4.

(आप को युद्ध में कभी अच्छे योद्धा नहीं मिले. ब्राह्मण और देवता घर बैठे ही बड़े बनते हैं.)

यह ब्राह्मणशाही के खिलाफ विद्रोह का स्वर था, इसलिए राम से आगे की पंक्तियां कहलवा कर तुलसी ने इस स्वर का गला घोंट दिया है :

हमहि तुम्हहि सरबरि कसि नाथा, कहहु न कहां चरन कहं माथा.

(हे नाथ, हमारीतुम्हारी बराबरी कैसी? कहिए न कहां हम चरणों के समान और कहां आप मस्तक के समान!)

धनुष टूट गया. परशुराम हतप्रभ हो कर तपस्या करने के लिए वन चले गए. तब विश्वामित्र ने राजा जनक से कहा :

तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु,
बूझि बिप्र कुल वृद्ध गुरु बेद बिदित आचारु.

—बाल कांड, 319.

(यद्यपि एक प्रकार से अब विवाह तो हो ही गया, तो भी तुम कुल की मर्यादा के अनुसार सब व्यवहार करो. ब्राह्मण वंश में वृद्ध लोगों तथा गुरुओं से पूछ कर वेदानुकूल आचार करो.)

यहां भी वंश के बूढ़े लोगों और गुरुओं के रहते हुए भी बिना ब्राह्मणों के गुजारा नहीं. सब से पहले उन्हीं का उल्लेख है.

वसिष्ठ खुश हो कर दशरथ की स्तुति कर रहे हैं:

तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेवी, तसि पुनीत कौसल्या देवी.

—बाल कांड, 326-2.

(आप गुरु, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के सेवक हैं और वैसी ही पवित्र महारानी कौसल्या देवी हैं.)

क्या यह ऊपर से चतुर्मुखी दीखने वाली सेवा, अंततोगत्वा ब्राह्मणों की सेवा ही नहीं ठहरती? गुरु प्रायः ब्राह्मण रहते हैं, इसलिए गुरु सेवा का मतलब भी ब्राह्मण सेवा ही है. ब्राह्मण सेवा तो ब्राह्मण सेवा है ही, गौ सेवा का भी प्रचलित अर्थ ब्राह्मण को गौ दान देना ही रह गया है और सेवा का मतलब तो ब्राह्मण सेवा रहा ही है.

राम तथा लक्ष्मण की कीर्त्ति अयोध्या पहुंची, तो राजा दशरथ की रानियों ने:

दिए दान आनंद समेता, चले बिप्रबर आसिष देता.

—बाल कांड, 327-4.

(उन्होंने आनंदित हो कर दान दिए, और बिप्रवर आशीर्वाद देते हुए विदा हुए.)

बरात की तैयारी में भी :

बाहन अपर अनेक बिधाना, सिबिका सुभग सुखासन जाना.
तिन्ह चढ़ि बिप्रबर बृंदा, जनु तनु धरे सकल श्रुति छंदा.

—बाल कांड, 332-2.

सुंदर पालकियां और विमान, जिन में बैठने की सुविधा थी तथा कई तरह की और सवारियां भी थीं. उन पर सवार हो कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों के झुंड चले. वे ऐसे मालूम देते थे, मानो संपूर्ण वेदों के छंद मूर्त्तिमान हो कर जा रहे हैं.)

सब जनकपुरी में पहुंच गए हैं. यहां भी वही एक बात:

बिप्रबृंद बंदे दुहुं भाई, मनभावती असीसें पाईं.

—बाल कांड, 340-3.

(फिर दोनों भाइयों ने ब्राह्मण समाज को नमस्कार किया और मनमाने आशीर्वाद प्राप्त किए.)

राम विवाह की तैयारी हो रही है, तो इस अवसर पर भी:

सुभग सुआसिनी गावहिं गीता, करहिं बेद ध्वुनि बिप्र पुनीता.

बाल कांड 345-2.

सौभाग्यवती स्त्रियां सुंदर गीत गाने लगीं और ब्राह्मण लोग पवित्र पाठ करने लगे.)

फिर तुरंत देखिए:

समयसमय सुर बरषहिं फूला, सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला,

—बाल कांड 351-3.

(समयसमय पर देवता फूल बरसाते हैं. ब्राह्मण लोग अनुकूल शांति पाठ करते हैं.)

रामचरित मानस में पगपग पर ब्राह्मणों का उल्लेख है, लेकिन क्षत्रियों का उल्लेख जातिगत दृष्टि से कितनी बार है? वैश्यों का तो प्रायः है ही नहीं. शूद्रों

का जहां कहीं भी उल्लेख हुआ है, वहां साथ ही यह घोषणा भी है कि वे नीच जाति के हैं.

तुलसी के अनुसार वेदों को भी ब्राह्मण वेष ही धारण करना पड़ता है:

विप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं

—बाल कांड: 356

(वेद ब्राह्मणों का वेष धारण कर संपूर्ण विवाह विधि बता देते थे.)

आगे दान दिए जाने की चर्चा है. कहना अनावश्यक है कि दान मात्र ब्राह्मणों को ही मिलने वाला है:

चारि लच्छ बर धेनु मंगाई, काम सुरभि सम सील सुहाई.
सब विधि सकल अलंकृत कीन्हीं, मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं.

—बाल कांड 363-1,2

(कामधेनु के समान शीलवाली सुंदर चार लाख गाएं मंगवाईं. उन सब को सब तरह के गहने पहनाए और प्रसन्नता के साथ राजा ने ब्राह्मणों को दान दीं.)

सीता की विदा के समय जनक उसे पहुंचाने के लिए चले हैं:

भूसुर सचिव समेत समाजा, संग चले पहुंचावन राजा.

—बाल कांड 371-2

(ब्राह्मण, मंत्रीगण और समाज सहित राजा पहुंचाने के लिए चले.)

राम सोने जा रहे हैं, तो भी ब्राह्मणों के चरणों का स्मरण अनिवार्य है:

सुमिरि संभु गुरु बिप्रपद किए नींद बस नैन.

—बाल कांड: 391

कभीकभी तो ऐसा संदेह होता है कि रामचरित मानस राम के महत्त्व से भी अधिक ब्राह्मणों का महत्त्व सिद्ध और स्थापित करने वाला महाकाव्य है.

राम के राज्याभिषेक के लिए जोजो तैयारियां आवश्यक हैं, उन में एक आदेश यह भी है:

पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा, सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा.

—अयोध्या कांड: 6-4

(गणेश तथा कुल देवताओं की पूजा करो और ब्राह्मणों की सब तरह सेवा करो.)

राम के वन गमन के समय भी तुलसी ब्राह्मणों को नहीं भूलते:

कहि प्रिय बचन सकल समुझाए, बिप्र बृंद रघुबीर बोलाए.
गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे, आदर दान बिनय बस कीन्हे.

—अयोध्या कांड 80-1

(राम ने प्यारे वचन कह कर सब को समझाया. फिर ब्राह्मणों को बुलवाया और गुरु से कह कर उन्हें वर्षों के लिए भोजन दिया और आदर, दान तथा विनय से उन्हें प्रसन्न किया.)

ब्राह्मणों को दान देने का कोई असमय है ही नहीं. तभी तो ऐसे दुखद

समय में भी वर्षों के लिए भोजन दिया और लिया जा रहा है.

वन में राम वाल्मीकि मुनि से कह रहे हैं:

मंगल मूल बिप्र परितोषू, दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू.

—अयोध्या कांड: 126-2

(ब्राह्मणों का प्रसन्न होना ही मंगल की जड़ है. ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों कुलों को भस्म कर डालता है.)

मंत्री सुमंत राम को वन गमन के लिए विदा कर के अकेला लौट आया है, तब उस की दशा का वर्णन इस प्रकार है:

पैठत नगर सचिव सकुचाई, जनु मारेसि गुरु बांभन गाई.

—अयोध्या कांड: 147-2

(मंत्री नगर में घुसते समय ऐसा सकुचाता था मानो उस ने गुरु, ब्राह्मण और गाय मार डाले हों.)

यहां भी ब्राह्मण को सामान्य व्यक्ति से विशिष्ट सिद्ध करने का प्रयास है.

दशरथ के श्राद्ध के समय भी तुलसी ब्राह्मणों को नहीं भूलते.

सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम, दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम.

—अयोध्या कांड: 171.

(भरत ने ब्राह्मणों को सिंहासन, भूषण, वस्त्र, अन्न, पृथ्वी, धन, मकान सब दिए. उन्हें ले कर ब्राह्मण पूर्ण काम हो गए.)

तुलसी ने ब्राह्मणों की तुलना में जिन्हें 'नीच' कहा है, उन की चर्चा भी अप्रासंगिक न होगी. भरत और गुह के प्रेमपूर्ण मिलाप का वर्णन है:

लोक बेद सब भांतिहि नीचा, जासु छांह छुई लेइअ सींचा.
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता, मिलत पुलक परिपूरित गाता.

—अयोध्या कांड: 194-2

(लोक और वेद में जो सब तरह से नीच है और जिस की छाया के भी छू जाने से स्नान करना होता है, उस निषाद से राम के छोटे भाई भरत लिपट कर मिल रहे हैं, और उन का शरीर पुलकायमान हो रहा है.)

लाख लिपट कर मिलें, लाख पुलकायमान हों, क्या उस से तुलसी की इस रेख में मेख लग सकती है कि निषाद आदि, लोक और वेद में सब तरह से नीच हैं और उन की छाया के छू जाने मात्र से भी स्नान करना होता है. एक निषाद ही क्या, दूसरों की भी खबर ली है:

स्वपच सबर खस जमन जड़ पांवर कोल किरात,
राम कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात.

—अयोध्या कांड: 195

(चांडाल, भंगी, शबर, खस, यवन, मूर्ख, नीच, कोल, भील, किरात इत्यादि सभी राम नाम लेने से परम पवित्र हो जाते हैं, यह बात सारे संसार में प्रसिद्ध है.)

नीच और मूर्ख शब्दों के साथ इन जातियों की गणना करना, क्या यह सिद्ध नहीं करता कि तुलसी इन पूरी जातियों को हीन समझते हैं?

आगे स्वयं गुहराज कह रहे हैं:

कपटी कायर कुमति कुजाती, लोक बेद बाहर सब भांती.

—अयोध्या कांड: 196-1

(मैं कायर, कपटी, कुमति, कुजाति और हर तरह से लोक और वेद से बाहर हूं.)

कौन सा अपशब्द बचा है, जिस का उपयोग गुहराज अपने लिए नहीं कर रहा है? वह लोक और वेद से बाहर होने पर भी ब्राह्मणशाही के जाल की कितनी बड़ी मछली है?

सामान्य रूप से तुलसी के स्त्री प्रशंसक होने की ख्याति नहीं ही है, किंतु ब्राह्मणों की स्त्रियां हों, तो वे तो पूज्य हैं ही:

गुरुतिय पद बंदे दुहु भाई, सहित बिप्रतिय जे संग आई.

—अयोध्या कांड: 245-1

(राम तथा लक्ष्मण दोनों भाइयों ने गुरुओं की स्त्रियों को नमस्कार किया. साथ ही उन ब्राह्मण स्त्रियों को भी, जो संग आई थीं.)

भरत राम को वन से वापस लौटा लाने में असमर्थ हो कर स्वयं अयोध्या लौट आए हैं, और राज्यानुशासन कर रहे हैं. वह भी ब्राह्मणों से कहते हैं:

भूसुर बोलि भरत कर जोरे, करि प्रनाम कर विनय निहोरे.
ऊंचनीच कारजु भल पोचू, आयसु देव न कर संकोचू.

—अयोध्या कांड: 3-23-2

(भरतजी ने ब्राह्मणों को बुला कर उन्हें हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और बड़ी नम्रता से अनुग्रह की प्रार्थना कर कहा: आप लोग ऊंचनीच, अच्छाबुरा जो कुछ कार्य हो, उस के लिए मुझे आज्ञा दीजिएगा. संकोच न कीजिएगा.)

ब्राह्मणों की आज्ञा हो तो अच्छाबुरा कोई भी कार्य हो सकता है!

राम सीता को खोजते फिर रहे हैं, रास्ते में पूर्व जन्म का गंधर्व एक राक्षस मिलता है. उस की कथा यों है कि एक बार इंद्र की सभा में उस ने गान किया उस पर दुर्वासा मुनि प्रसन्न नहीं हुए. गंधर्व ने उन्हें अनभिज्ञ कह दिया. बस दुर्वासा ने उसे शाप दे दिया और बेचारे को राक्षस का जन्म ग्रहण करना पड़ा. उसी पूर्व जन्म के गंधर्व को तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम क्या शिक्षा दे रहे हैं:

सुनु गंधर्व कहउं मैं तोही, मोहि न सुहाइ ब्रह्म कुल द्रोही.

—अरण्य कांड: 39-4.

(हे गंधर्व, सुन, मैं तुझे कहता हूं, मुझे ब्राह्मण कुल द्रोही अच्छा नहीं लगता.)

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव,
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताके सब देव. —अरण्य कांड: 40

(जो कोई कपट का त्याग कर मन, वचन और कर्म से ब्राह्मणों की सेवा करता है, उस के बस में मुझ सहित ब्रह्मा, शिव और सब देवता हो जाते हैं.)

सापत ताड़त परुष कहंता, बिप्र पूज्य अस गावहिं संता.
पूजिय बिप्र सील गुन हीना, सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना.

—अरण्य कांड: 4c-1

(ब्राह्मण चाहे शाप दे, मारे या कटु वचन कहे, तो भी वह पूज्य होता है. ब्राह्मण शील और गुणों से हीन हो, तो भी उसे पूजना चाहिए और शूद्र गुण और ज्ञान में निपुण हो, तो भी उसे नहीं पूजना चाहिए, ऐसा संत पुरुष कहते हैं.)

स्वयं राम के मुंह में डाली गई जाति स्वार्थ मूलक, समाज हित विरोधिनी, इन विषैली चौपाइयों की और किसी तरह व्याख्या हो ही नहीं सकती, सिवा इस के कि यहां पहुंच कर ब्राह्मणों के निहित स्वार्थों ने एकदम नंगा रूप धारण कर लिया है. यदि शील और गुण से हीन होने पर भी ब्राह्मणों की पूजा करना और गुणों तथा शील ज्ञान में प्रवीण होने पर भी शूद्रों की पूजा न करना ही संत मत है, तो फिर असंत मत और किसे कहते हैं?

ब्राह्मणों को अनावश्यक महत्त्व दिलाने का एक और प्रमाण है:

मसक दंस बीते हिमत्रासा, जिमि द्विजि द्रोह किए कुल नासा.

—किष्किंधा कांड: 19-

(मच्छर और डांस ठंड के दुख से ऐसे नष्ट हो गए, जैसे ब्राह्मण से द्वेष करने पर कुल नष्ट हों.)

यह ब्राह्मणशाही की प्रतिष्ठा का एक अद्‌भुत प्रयास है:

ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा, कपि मन कीन्ह विचार.
जौं न ब्रह्म सर मानऊं, महिमा मिटई अपार.

—सुन्दर कांड: 19

(मेघनाद ने हनुमान को पकड़ने के लिए उन पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया. यह देख कर हनुमान ने मन में विचार किया: यदि मैं ब्रह्मास्त्र को न मानूंगा, तो इस अस्त्र की महिमा मिट जाएगी.)

भाई को समझाने में असमर्थ रह कर विभीषण शत्रु पक्ष में राम के पास चला आया है, तो राम कहते हैं:

सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम,
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम.

सुंदर कांड: 49

(जो सगुण ब्रह्म उपासक हैं, जो परोपकार करने में तत्पर हैं, जो नीतिमान और दृढ़ नियम वाले हैं और जिन का ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है, वे मनुष्य मुझे प्राण के समान प्यारे हैं.)

यदि किसी व्यक्ति या जाति में प्रथम तीनों गुण हों, किंतु मात्र चौथा गुण—

ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम न हो, तो उस की क्या स्थिति होगी? ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम होने में ऐसी कौन सी विशेषता है, अथवा उस से ऐसा कौन सा समाजहित होता है कि उस कारण वह व्यक्ति अथवा समाज राम को 'प्राण के समान प्यारा,' हो जाता है?

राम ने विस्तार से युद्ध के बारे में कहा है:

कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा, एहि सम विजय उपाय न दूजा.

—लंका कांड: 102-5

(ब्राह्मणों और गुरुओं की पूजा अथवा ब्राह्मण गुरुओं की पूजा अभेद कवच है. इस के समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है.)

इंद्र ने राम के लिए रथ भेजा है, जिस से अब वे भी विरथी नहीं रहे हैं. इस अवसर पर भी:

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा, बिप्र चरन पंकज सिर नावा.

—लंका कांड: 114-1

(ऐसा कह कर और ब्राह्मणों के चरण कमलों में शीश झुका कर रघुनाथ ने रथ चलाया.)

ब्राह्मणों के चरण कमलों के समान अमोघ कवच और दूसरा कौन सा होगा?

राम रावण का वध कर और विभीषण को राजतिलक दे अयोध्या लौट आए हैं. इस अवसर पर भी:

सकल द्विजन्ह मिलि नायऊ माथा, धरम धुरंधर रघुकुल नाथा.

--उत्तर कांड: 13-3

(धर्म के आधार, रघुवंश के स्वामी राम ने सब ब्राह्मणों से मिल कर उन के चरणों में प्रणाम किया.)

धर्मभीरु पाठकों पर यह रोब गांठा जा रहा है कि 'धर्म के आधार' राम भी ब्राह्मणों को समयअसमय नमस्कार करते हैं.

राम के अयोध्या के राजसिंहासन को सुशोभित करने का अवसर आया है, तो वसिष्ठ की आज्ञा है:

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन, रामचंद्र बैठहिं सिंहासन

—उत्तर कांड: 21-3

(सब ब्राह्मण प्रसन्न हो कर आज्ञा दो कि रामचंद्रजी सिंहासन पर बैठें)

रामराज्य स्थापित हो गया. उस की विशेषताओं का वर्णन है:

सब उदार सब पर उपकारी, बिप्र चरन सेवक नरनारी.

—उत्तर कांड: 44-4

(सभी उदार हैं. सभी परोपकारी हैं. सभी नरनारी ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं.)

प्रतीत होता है कि सारा औदार्य और सारा परोपकार ब्राह्मणों के चरणों की सेवा तक ही सीमित है. इतना ही नहीं—उत्तर कांड में दुष्ट पुरुषों के

लक्षण इस प्रकार गिनाए गए हैं:

मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं आपु गए अरु घालहिं आनहिं.
बिप्रद्रोह सुर द्रोह बिसेषा, दंभ कपट जिय धरे सुवेषा.

—उत्तर कांड: 62-3, 4

(वे माता पिता, गुरु, और ब्राह्मणों को नहीं मानते. आप तो गएबीते हैं ही औरों को भी ले डूबते हैं. वे विशेषकर ब्राह्मणों और देवताओं से द्वेष करते हैं. दंभ और कपट तो उन में भरा रहता है किंतु वे ऊपर से अच्छा वेष बनाए रखते हैं.)

इन दो चौपाइयों में ब्राह्मणों को न मानने वालों के लिए अपशब्दों के सभी पर्याय इकट्ठे नहीं किए गए हैं?

आगे भी श्री रामचंद्रजी से कहलवाया है:

पुन्य एक जग महुं नहीं दूजा, मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा.
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा, जो तजि कपट करइ द्विज सेवा.

—उत्तर कांड: 67-14

(संसार में पुण्य एक ही है, दूसरा नहीं, वह है—मन, कर्म, वचन से ब्राह्मणों के चरणों की सेवा करना. जो कपट छोड़ कर ब्राह्मणों की सेवा करता है, मुनि तथा देवता उसी के अनुकूल रहते हैं.)

ब्राह्मण समाज के लिए तुलसी इस से अधिक और क्या लिख और कर सकते थे? इस सारे ब्राह्मण माहात्म्य को निम्नलिखित चौपाइयों के साथ पढ़िए, जो तुलसी ने एक पूर्व जन्म के शूद्र से कहलवाई हैं:

अधम जाति मैं बिद्या पाए, भयउं जथा अहि दूध पियाए.
मानी, कुटिल कुभाग्य कुजाती, गुरु कर द्रोह करउं दिनराती.

—उत्तर कांड: 163-34

(नीच जाति का मैं, विद्या पाने पर वैसा हो गया, जैसा दूध पिलाने पर सांप हो जाता है. अभिमान, कुटिल, कुभाग्यवाला, कुजाति मैं दिन रात गुरु का द्रोह करता था.)

इस से बढ़ कर शूद्रों की और क्या निंदा हो सकती है?

अंत में उस शूद्र को ब्राह्मण का जन्म मिल जाता है. इस का उल्लेख है:

चरम देह द्विज कै मैं पाई, सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई

—उत्तर कांड: 181-2

(अंत में मुझे वह ब्राह्मण शरीर मिला, जो पुराण तथा वेदों के अनुसार देवताओं को भी दुर्लभ है.)

ब्राह्मण की निंदा करने का फल सुनिए:

द्विज निंदक बहु नरक भोग करि, जग जनमइ बायस सरीर धरि.

—उत्तर कांड: 207-12

ब्राह्मण का निंदक बहुत से नरक भोग कर, कौवे का शरीर धारण कर

जन्म लेता है.

इस में संदेह नहीं कि तुलसी ने रामचरितमानस में ब्राह्मण पक्षपात का अनुपम उदाहरण उपस्थित किया है. यह पक्षपात या तो उन की अपनी जड़ धारणाओं की अभिव्यक्ति है या फिर ब्राह्मण समाज के निहित स्वार्थों की रक्षा का जानबूझ कर किया गया साहित्यिक प्रयास है. लेकिन हमें डर है कि भावी इतिहास लेखक का फैसला कहीं यह न हो कि ऐसा कर के तुलसी ने स्वयं ब्राह्मणों का भी अहित ही किया है.

संतोष का विषय है कि जनता जगरूक है और अब रामचरितमानस की विषैली शिक्षाओं का प्रभाव दिनोंदिन घट रहा है. ●

तुलसी साहित्य : अनुवादों की नुमाइश

हृदयहीन केशवदास के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने 'रामचंद्रिका' में छंदों की नुमाइश लगा दी है. छंदों का जल्दीजल्दी बदलना और अलंकारों की भरमार देख कर लोग कहते हैं कि केशव कवि पहले थे, भक्त बाद में. इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि केशव में भक्तिभावना कवित्व से कम थी.

नुमाइश के दृष्टिकोण से देखने पर हम तुलसी को केशव से कम नहीं पाते. केशव को छंदों और अलंकारों का शौक था तो तुलसी अनुवादों के दीवाने थे. हम तुलसी साहित्य को अनुवादों की नुमाइश कह सकते हैं. इस दृष्टि से यदि तुलसी साहित्य पर विचार किया जाए तो स्वीकार करना पड़ेगा कि तुलसी सब से पहले अनुवादक थे, भक्त या कवि बाद में.

तुलसी के विस्तृत अध्ययन की प्रशंसा करनी पड़ेगी. उन के साहित्य में वाल्मीकि रामायण, महाभारत, पुराणों, नाटकों, पंचतंत्र एवं संस्कृत साहित्य की फुटकर सूक्तियों के अनगिनत अनुवाद मिल सकते हैं. ऐसा लगता है कि तुलसी बाबा को पढ़ते समय किसी भी ग्रंथ का जो स्थल जोरदार लगता होगा, उसे वह नोट कर लेते होंगे और उसे अपनी कविता में स्थान विशेष पर प्रयुक्त कर लेते होंगे. कहींकहीं तो अनुवाद वाले ये स्थल बलपूर्वक ठूंसे गए लगते हैं.

तुलसी साहित्य के अनूदित स्थलों का ज्ञान हो जाने पर पढ़ने वालों को बड़ा विचित्र अनुभव होगा. संभवतः एक भी ऐसा मार्मिक स्थल नहीं है जो तुलसी का अपना हो, सभी दूसरों के अनुवाद हैं. जिन उक्तियों, कल्पनाओं और अलंकारों के लिए लोग तुलसी के सामने श्रद्धानत हो जाते हैं, वे सब उधार ली हुई बातें हैं.

तुलसी साहित्य में भावानुवाद और अंशानुवाद इतने हैं कि उन्हें गिनना संभव नहीं है. अविकल अनुवादों की संख्या भी कम नहीं है. इस प्रकार लगभग आधा तुलसी साहित्य अनुवाद है. संभव है, इस से अधिक अनुवाद भी हों,

क्योंकि सभी पुस्तकों के समस्त स्थलों को ध्यान में रख कर तुलसी साहित्य में उन के अनुवाद ढूंढ़ना सरल काम नहीं है. संभव है तुलसी के समय में संस्कृत साहित्य की जो पुस्तकें उपलब्ध रही हों. अब उन में से कुछ न मिलती हों.

मैं तुलसी साहित्य में संस्कृत ग्रंथों से अनूदित जितने भी स्थल खोज सका हूं, उन सब को इस छोटे से लेख में देना संभव नहीं है. उन से एक छोटीमोटी पुस्तक बन सकती है. नीचे कुछ विशिष्ट स्थलों के विषय में चर्चा की जा रही है. इन में अधिकांश स्थल ऐसे हैं, जिन्हें तुलसी साहित्य का मर्म कहा जाता है और जिन्हें लोग तुलसी की उद्‌भावना समझ कर प्रसन्न होते हैं.

तुलसी ने वाल्मीकि से बहुत कुछ सहायता ली है. रामकथा के अतिरिक्त लगभग सभी ऋतु वर्णन वाल्मीकि रामायण से लिए गए हैं. 'रामचरितमानस' के प्रारंभ में तुलसी ने वाल्मीकि की स्तुति की है :

बंदउं मुनिपद कंज, रामायन जेहिं निरमयउ,
सखर सुकोमल मंजु, दोष रहित दूषण सहित.

—रामचरितमानस, बालकांड

इस सोरठे की प्रशंसा श्लेष और मुद्रालंकार के लिए की जाती है. पर यह संस्कृत की निम्न सूक्ति का अनुवाद मात्र है :

नमस्तस्मै कृता येन पुण्या रामायणी कथा,
सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सकोमला.

—सूक्तिसुधासार, पृष्ठ 60

तुलसी राम के अनन्य भक्त थे, उन्होंने रामनाम की बड़ी महिमा गाई है. कहा जाता है कि राम शब्द के दोनों व्यंजनों 'र' एवं 'म' के विषय में उन्होंने निम्न खोज की है:

एक छत्र इक मुकुटमणि सब बरनन पर जोउ,
तुलसी रघुबर नाम के बरन विराजत दोउ.

—रामचरितमानस, बालकांड

कितनी गहरी खोज है! 'र' एवं 'म' दोनों ही जब दूसरे व्यंजनों से मिलते हैं तो सदा उन के ऊपर ही रहते हैं. एक रेफ के रूप में और दूसरा अनुस्वार के रूप में. जैसे—मार्ग, सायं. पर यह दोहा महारामायण के निम्न श्लोक का अनुवाद है:

निर्वर्णं रामनामेदं केवलं च स्वराधिकम्.
सर्वेषां मुकुटं छत्रं मकारो रेफव्यंजनम्. —बालकांड I-II.

तुलसी बाबा ने स्थानस्थान पर नारी की अच्छी खबर ली है. वह नारी में आठ बुराइयां स्थायी रूप से मानते हैं:

नारि सुभाव सत्य कवि कहहीं, अवगुन आठ सदा उर रहहीं.
साहस अनृत चपलता माया, भय अविबेक अशौच अदाया.

—रा. च. मा., लंकाकांड

इस के लिए बेचारे तुलसी पर क्रोध करने की आवश्यकता नहीं है, वह तो अनुवाद करने भर के दोषी हैं. यह खोज तो चाणक्य की है :

असत्यं साहसं माया मात्सर्यं चातिलुब्धता,
निर्गुणत्वमशौचत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः.

—2-1

स्त्रियों से संबंधित तुलसी साहित्य में कुछ और स्थल भी देख लिए जाएं. सीताहरण के पश्चात राम लक्ष्मण से कहते हैं :

शास्त्र सुचिंतित पुनिपुनि देखिय, भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय.
राखिय नारि यदपि उर मांही, युवती शास्त्र नृपति बस नाहीं.

—रा. च. मा., अरण्यकांड.

तो क्या राम की नारी विषयक भावनाएं इस प्रकार की थीं? क्या आश्रम को सूना देख कर राम ने समझ लिया कि सीताजी अपनी इच्छा से किसी के साथ भाग गई हैं? तुलसी ने राम का जैसा चरित्र अंकित किया है, उस के अनुसार राम का यह वचन उचित नहीं लगता. पर तुलसी बेचारे क्या करें? उन्हें तो 'पंचतंत्र' के निम्न श्लोक का अनुवाद करना था :

शास्त्रं सुचिंतितमपि प्रतिचिंतनीयं स्वाराधितोऽपि नृपतिः परिशंकनीयः,
अंकस्थितापि युवतिः परिरक्षणीया शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्.

—1-205

दूसरा स्थल कहां मिलता इसे रखने का?

बालि ने राम से अपने वध का कारण पूछा तो वह कहने लगे :

अनुज वधू भगिनी सुतनारी, सुनु सठ ये कन्या सम चारी.
इनहिं कुदृष्टि विलोकै जोई, ताहि वधे कछु पाप न होई.

—रा. च. मा., किष्किंधाकांड

ऊपर की अर्धाली का सीधासाधा अर्थ है छोटे भाई की पत्नी, बहन और पुत्रवधू ये चारों कन्या के समान हैं. गिनाई गईं तीन और बताई गईं चार. इसे सुधारने के लिए पचासियों भांति अर्थ की खींचतान होती है. दूसरे, इन्हीं चार को कुदृष्टि से देखने की बात क्यों कही गई? क्या इन के अतिरिक्त माता, चाची, मौसी, मामी एवं नातेरिश्ते से बाहर की नारियों को कुदृष्टि से देखना कम बुरा है? भारतीय आदर्श के अनुसार तो परस्त्री माता के समान है, फिर यह भेदभाव क्यों? तुलसीदासजी के सामने तो 'अध्यात्म रामायण' के निम्न श्लोक के अनुवाद करने का प्रश्न था. औचित्य पर विचार कौन करता?

दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चैव तथा स्नुषा,
समा यो रमते तासामेकामपि विमूढधीः. 60
पातकी स तु विज्ञेयः स वध्यो राजभिः सदा. 61

—किष्किंधाकांड, सर्ग 3

तुलसी ने पतिव्रताओं के चार श्रेणीभेद किए हैं:

जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं, बेद पुराण संत अस कहहीं.
उत्तम के अस बस मनमांहीं, सपनेहुं आन पुरुष जग नाहीं.
मध्यम परपति देखहि कैसे, भ्राता पिता पुत्र निज जैसे.
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई, सो निकृष्ट तिय अस श्रुति कहई.
बिनु अवसर भय ते रह जोई, जानेहु अधम नारि जग सोई.

—रा. च. मा., अरण्यकांड

तुलसीदासजी ने उक्त विभाजन को प्रभावशाली बनाने के लिए वेद, पुराण, संत और श्रुति का सहारा लिया है. वे क्या स्पष्ट रूप से 'शिवपुराण' का नाम नहीं ले सकते थे, जहां से पद लिया गया है:

चतुर्विधास्ता: कथिता नार्यो देवि पतिव्रता:. 72
स्वप्नेऽपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम्, 74
नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता.
या पितृ भ्रातृ सुतवत् परं पश्यति सद्‌धिया,
मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता. 75
बुद्‌ध्वा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति या,
निकृष्टा कथिता सापि सुचरित्रा च पार्वति. 76

—रुद्रसंहिता, पार्वतीखंड, अध्याय 54

तुलसी ने नारियों को सलाह दी है कि वे बुरे से बुरे पति का भी अपमान न करें, अन्यथा उन्हें नरक में भांतिभांति के दुख मिलेंगे:

बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना अंध बधिर क्रोधी अतिदीना,
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना.

—रा. च. मा., अरण्यकांड

ऊपर के 'धनहीना' और 'अतिदीना' में क्या अंतर है, इसे तुलसी बाबा ही जानें. उन्होंने जिस प्रकार के पति गिनाए हैं, वे 'भागवत' और 'शिवपुराण' के निम्न श्लोकों से लिए गए हैं:

दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा,
पति: स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी.

—भागवत, स्कंध 10, अध्याय 29-35

क्लीवं च दुरवस्थं च व्याधितं वृद्धमेव च,
सुखितं दु:खितं चापि पतिमेकं न लंघयेत्.

—शिवपुराण, पार्वतीखंड, अध्याय 54

तुलसी ने परस्त्री दर्शन का निषेध करते हुए लिखा है:

जो आपन चाहसि कल्याना, सुगति सुमति समुचित विधि नाना.
तौ परनारि लिलार गुसाईं, तजहु चौथ चंदा की नाईं.

—रा. च. मा., सुंदरकांड

परनारी के मस्तक को चतुर्थी का चंदा बताने की कल्पना तुलसी के मस्तिष्क

की उपज नहीं है. यह तो निम्न सूक्ति का अनुवाद है:

उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते,
चतुर्थी चंद्र लेखैव परस्त्री भाल पट्टिका.

जो नारी पति की सेवा नहीं करती, उसे तुलसी ने अधम बताया है:

मातु पिता भ्राता हितकारी, मितप्रद सब सुनु राजकुमारी.
अमितदान भर्ता वैदेही, अधम सो नारि जो सेव न तेही.
—रा. च. मा., अरण्यकांड

इस के विषय में 'शिवपुराण' का निम्न श्लोक देखिए:

मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः,
अमितस्य हि दातारं भर्तारं पूजयेत् सदा.
—रुद्रसंहिता, पार्वतीखंड, अध्याय 54, श्लोक 50

तुलसी बाबा वर्णाश्रम धर्म के प्रबल समर्थक थे. उन्होंने स्थानस्थान पर नीच ब्राह्मण को भी उत्तम शूद्र से अच्छा कहा है.

इसी प्रकार का एक स्थल देखिए:

पूजिय बिप्र शील गुन हीना, सूद्र न गुन गन ज्ञान प्रबीना.
दुष्टा धेनु दुही सुनु भाई, साधु रासभी दुही न जाई.
—रा. च. मा., उत्तरकांड

क्या दूर की कौड़ी लाए हैं तुलसीदासजी! दुष्ट गाय भी दुही जाती है और सीधीसादी गधी को भी कोई नहीं दुहता. तो शूद्र और ब्राह्मण में गधी और गाय जितना अंतर है. इस के लिए जो कुछ कहना हो, चाणक्य नीति के निम्न श्लोक से कहिए :

पतितोऽपि द्विजः श्रेष्ठो न च शूद्रो जितेंद्रियः.
निर्दुग्धा चापि गौः पूज्या न च दुग्धवती खरी. —6-5

एक अच्छा मित्र अपने मित्र के लिए क्याक्या करता है, इसे देखिए:

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा, गुन प्रकटे अवगुनहिं दुरावा.
विपति काल कर सतगुन नेहा, श्रुति कह संत मित्र गुन एहा.
—रा. च. मा. किकिंधाकांड

तुलसी के शब्दों में सन्मित्र के उक्त लक्षण श्रुति के बताए हुए हैं. कितना बड़ा झूठ है यह? उक्त पंक्तियां भर्तृहरि के 'नीतिशतक' के निम्न श्लोक का अनुवाद हैं:

पापान्निवारयति योजयते हिताय, गुह्यानि गूह्यति गुणान् प्रकटीकरोति,
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदंति संतः. 72

तुलसीदासजी ने बुरे मित्र से बचने की भी सलाह दी है:

आगे कह मृदु वचन बनाई, पाछे अनहित मन कुटिलाई
अस कुमित्र परिहरे भलाई... —रा. च. मा., किष्किंधाकांड

इतना क्या कम है कि इस बात के लिए तुलसी ने किसी जोरदार पुस्तक

32/6

का नाम नहीं लिया. वैसे यह सब 'चाणक्य नीति' के निम्न श्लोक का अनुवाद है:

परोक्षे कार्यहंतारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्, वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुंभं पयोमुखम्.

—2-5

सज्जनप्रशंसा और दुर्जननिंदा पर भी तुलसी ने पर्याप्त लिखा है. सज्जन पुरुष अपने अनुकूल और प्रतिकूल का भेद किए बिना ही सब का उपकार करते हैं. इस के लिए तुलसी ने फूल का उदाहरण लिया है :

बंदौं संत, समानचित हित अनहित नहिं कोय,
अंजलिगत सुभ सुमन, जिमि सम सुगंध कर दोय.

—रा. च. मा., बालकांड

यह भावना संस्कृत की निम्न सूक्ति से ली गई है :

अंजलिस्थानि पुष्पाणि वासयंति करद्वयम्,
न ही सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा.

—सूक्तिरत्नाकर, 115

मूल श्लोक में जो 'सुमनसां' तथा 'वामदक्षिणयोः' में श्लेष का चमत्कार है, उसे तुलसी नहीं ला पाए हैं.

अब हम तुलसी साहित्य के कुछ ऐसे स्थल लेते हैं जो सूक्ति के रूप में जनसाधारण की जिह्वा पर विराजमान रहते हैं. अधिक चक्कर में न पड़ कर साथ साथ ही वे स्थल भी देते जाएंगे, जिन के ये अनुवाद हैं:

कोउ न काहु सुख दुख कर दाता. निज कृत कर्म भोग सब ताता.

—रा. च मा., बालकांड

सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता स्वकर्म सूत्र ग्रथितो हि लोकः
आरत काह न करहि कुकरमू —रा. च. मा., अयोध्याकांड
बुभुक्षितः किं न करोति पापम् —पंचतंत्र 2-97
अरध तजहिं बुध सरवस जाता. —रा. च. मा., अयोध्याकांड
सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पंडितः. —पंचतंत्र 5-41
जननी जोबन विटप कुठारी —रा. च. मा., अयोध्याकांड
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्.
सचिव वैद्य गुरु तीनि जो प्रिय बोलहिं भय त्रास,
राजधर्म तनु तीनि को, होहिं वेगि ही नास.

—रा: च. मा., सुंदरकांड

वैद्यो गुरुश्च मंत्री च यस्य राज्ञः प्रियंवदाः, शरीरधर्मकोशेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते.

—सूक्तिरत्नाकर, 940

संभावित कहं अपजस लाहू, मरन कोटि सम दारुन दाहू.

—रा. च. मा., अयोध्याकांड

संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते. गीता 2-34

बांझ कि जान प्रसव की पीरा. —रा. च. मा. बालकांड
नहिं वंध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्. —'सूक्तिरत्नाकर, 450

उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि,
प्रीति परीक्षा तिहुन की वैर वितिक्रम जानि.
दोहावली, 252

उत्कृष्टमध्यमनिकृष्ट जनेषु मैत्री यद्वच्छिलासु सिकतासु जलेषु रेखा,
वैरं निकृष्टजनमध्यम उत्तमेषु यद्वच्छिलासु सिकतासु जलेषु रेखा.
—सूक्तिरत्नाकर, 191

गिरा अनयन नयन बिनु बानी. —रा. च. मा., बालकांड
या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति, सूक्तिरत्नाकर 605
पंडित सोइ जो गाल बजावा. —रा. च. मा., उत्तरकांड
पांडित्ये चापलं वचः —'भागवत' स्कंध 11, अध्याय 2-4

अब हम रामचरितमानस के प्रमुख स्थलों को लेते हैं, जिन के लिए तुलसी की प्रतिभा और वर्णन चातुरी की भूरिभूरि प्रशंसा की जाती है. पता नहीं पाठकों को यह जान कर कैसा लगेगा कि वे सब के सब भिन्नभिन्न ग्रंथों के अनुवाद हैं.

सीता स्वयंबर में विवाह की शर्त की घोषणा की जा रही है :

रावन बान महाभट भारे, देखि सरासन गंवहिं सिधारे.
सोइ पुरारि कोदंड कठोरा, राज समाज आजु जो तोरा.
त्रिभुवन जय समेत वैदेही, बिनहिं विचार बरै हठि तेही.
—रा. च. मा., बालकांड

उक्त शब्द तुलसी के हों, पर भाव हैं हनुमन्नाटककार भवभूति के :

श्रृणुत जनककल्पा क्षत्रियाः शुल्कमेते दशवदनभुजानां कुंठिता यत्र शक्ति.
नमयति धनुरैशं यस्तदारोपणेन, त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दारा.
—अंक प्रथम, श्लोक 18

अनेक राजाओं ने शिव धनुष उठाने का प्रयत्न किया, पर सब असफल रहे. इस पर दुखी हो कर जनक को कहना पड़ा:

दीपदीप के भूपति नाना, आए सुनि हम जो पनु ठाना.
देव दनुज धरि मनुज सरीरा, विपुल वीर आए रनधीरा.
कुंवरि मनोहरि विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय.
पावन हार विरंचि जनु, रचेउ न धनुदमनीय.
कहहु काहि यह लाभ न भावा, काहु न संकर चाप चढ़ावा.
रहे उठाउब तोरब भाई, तिल भरि भूमि न सकेउ छुड़ाई.
अब जनि कोउ भाखै भट मानी, वीर विहीन मही मैं जानी.
—रा. च. मा., बालकांड

उक्त स्थल की दूसरी और चौथी पंक्ति को छोड़ कर शेष सब 'हनुमन्नाटक'

के निम्न श्लोक का अनुवाद है:

आद्वीपात् परतोऽप्यमी नृपतय: सर्वे समभ्यागता:
कन्याया: कलधौतकोमलरुचे: कीर्तेश्च लाभ: पर:,
नाकृष्टं न च टंकितं न नमितं नोत्थापितं स्थानत:
केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम्.

—अंक 1, श्लोक 10

रावण आदि के उठाने पर धनुष किस प्रकार अडिग रहा इस का वर्णन भी देखते चलिए :

भूप सहस दस एकहि बारा, लगे उठावन टरे न टारा.
डिगै न संभु शरासन कैसे, कामी वचन सती मन जैसे.

—रा. च. मा. बालकांड

इस में 'एकहि बारा' कहने के लिए तुलसी ने रावण का नाम अपनी ओर से जोड़ दिया है. शेष सब करामात प्रसन्नराघव नाटक के निम्न श्लोक की है :

बाणस्य बाहुशिखरै: परिपीड्यमानं नेदं धनुश्चलित किंचिदपीन्दुमौले:,
कामातुरस्य वचसामिव संविधानैरभ्यर्थितं प्रकृति चारुमन: सतीनाम्.

—अंक प्रथम, श्लोक 56

गुरु की आज्ञा ले कर राम धनुष उठाने चले. लक्ष्मण धरती को धारण करने वाली शक्तियों को सावधान करते हुए बोले :

दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला, धरहु धरनि धरि धीर न डोला.
राम चहहिं संकर धनु तोरा, सजग होहु सुनि आयसु मोरा.

उक्त चौपाई से मिला कर 'हनुमन्नाटक' का निम्न श्लोक पढ़ डालिए :

पृथ्वि स्थिरा भव भुजंगम धारयैनां त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथा:,
दिक्कुंजरा: कुरुत तत् त्रितये दिधीषां राम: करोति हरकार्मुकमाततज्यम्.

—अंक प्रथम, श्लोक 21

शिव का धनुष टूटने का समाचार सुन कर परशुरामजी आ गए. वे इस अपराध के लिए बहुत लालपीले होने लगे तो लक्ष्मण बोले :

छुवत टूट रघुपतिहि न दोसू, मुनिबिनु काज करिय कत रोसू.

वास्तव में बात यह नहीं थी. धनुष छूने से नहीं, खींचने से टूटा था. लक्ष्मण झूठ बोले सो बोले, पर मर्यादापुरुषोत्तम राम ने भी यही कहा:

छुवतहिं टूट पिनाक पुराना, मैं केहि हेतु करब अभिमाना.

इस प्रकार की झूठी बात कहना अनुचित है, इस ओर तुलसी का ध्यान नहीं था. उन्हें तो 'प्रसन्नराघव' नाटक के निम्न श्लोक का अनुवाद करना था:

मया स्पृष्टं न वा स्पष्टं कार्मुकं पुरवैरिण:,
भगवन्नात्मनेवेदमभज्यत करोमि किम्.

—अंक 4, श्लोक 21

परशुराम बहुत गरम हुए और युद्ध की धमकी देने लगे तो राम ने नम्रता-

पूर्वक कहा:

हमहिं तुम्हहिं सरिबरि कसि नाथा, कहहु न कहां चरन कहं माथा.
देव एक गुनु धनुष हमारे, नौ गुन परम पुनीत तुम्हारे.
—रा. च. मा., बालकांड

ब्राह्मण मस्तक के समान होता है, पर क्षत्रिय पैर तुल्य नहीं होता. दूसरे नौ धागों वाला जनेऊ क्या परशुराम पर ही था? वह तो रामलक्ष्मण भी पहने होंगे. तुलसी ने अनेक स्थान पर रामलक्ष्मण को यज्ञोपवीतधारी तो कहा ही है, हनुमानजी तक के कंधे पर इसे लटका दिया है:

कांधे मूज जनेऊ साजै ·—हनुमानचालीसा

फिर इस उक्ति को संगत कैसे कहा जाए? तुलसी का ध्यान संगति पर नहीं था. उन्हें 'प्रसन्नराघव नाटक' के निम्न श्लोक का अनुवाद करना था:

भो ब्रह्मन्! भवता समं न घटते संग्रामवार्तापिन:
सर्वे हीनबला वयं बलवतां यूयं स्थिता मूर्धनि
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजामस्माकं
भवतां पुनर्नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम्.
—अंक 4, श्लोक 25

सीता हरण के पश्चात हनुमान लंका पहुंचे और अशोक वाटिका में सीता को देखा. वे रावण की बात का उत्तर देते समय तिनके की ओट ले लेती हैं:

तृन धरि ओट कहति वैदेही, सुमरि अवधपति परम सनेही.
—रा. च. मा., सुंदरकांड

कथावाचक लोग 'तृनधरि' शब्द का अर्थ करते समय बहुत अधिक तूल बांधने लगते हैं. उन्हें वाल्मीकि का निम्न श्लोक देखना चाहिए, जिस का अनुवाद तुलसी बाबा ने उक्त अर्धाली के रूप में किया है:

चिंतयंती वरारोहे पतिमेव पतिव्रता, तृणमतरत: कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता,
—सुंदरकांड 12-1

रावण ने जब सीता के सामने अपनी पटरानी बनने का प्रस्ताव रखा तो सीता ने उत्तर दिया:

स्याम सरोज दाम सम सुंदर, सोय भुज करिकर सम दशकंधर.
सो भुज कंठ कितव असि घोरा, सुनु सठ अस प्रमान प्रन मोरा.
—रा. च. मा., सुंदरकांड

ये पंक्तियां भी 'हनुमन्नाटक' के निम्न श्लोक के अनुवाद रूप में हैं:

विरम विरम रक्ष: किं वृथा जल्पितेन, स्पृशति नहि मदीयं कंठसीमानमन्य:,
रघुपति भुजदंडादुत्पलश्याम कांतेदश मुख, भवदीयान् निष्कृपाद् वा कृपाणात्.
—अंक दशम, श्लोक 16

रावण चला गया तो सीता दुखी व विनीत हो कर अशोक वृक्ष से आग मांगने लगीं. वह जल कर मरना चाहती थीं:

सुनिय विनय मम विटप असोका, सत्य नाम करु हरु मम सोका.
नूतन किसलय अनल समाना, देइ अगिनि तन करहु निदाना.
—रा. च. मा. सुंदरकांड

अशोक वृक्ष की कोपलों को अग्निकण या अग्निशिखा समझने की कल्पना तुलसी की नहीं है. वह 'प्रसन्नराघव' के निम्न श्लोक से ली गई है:

कुरु सकरुणं चेत: श्रीमन्नशोक वनस्पते दहनकणिकामेकां तावन् मम प्रकटीकुरु,
ननु विरहिणां संतापाय स्फुटीकुरुते भवान् नवकिसलयश्रेणीव्याजात् कृशानु-
शिखावलिम्. —अंक 6, श्लोक 35

थोड़ी देर पश्चात् हनुमान सीता के सामने प्रकट हुए. वह राम के संदेश रूप में क्या कहे? पिता का प्रेमसंदेश पुत्र माता को क्या दे. तुलसी ने यहां शृंगार का बड़ा मर्यादित रूप प्रस्तुत किया है.

पहली बार जब मैं ने पढ़ा तो मन उल्लास से भर गया:

राम कहे वियोग तव सीता, मो कहं जगत भयेउ विपरीता.
नव तरु किसलय मनहुं कृसानू, कालनिसा सम निसि ससि भानू.
कुवलय विपिन कुंतवन सरिसा, वारिद तप्त तेल जनु बरिसा.
जेहि त रहिय करत सोइ पीरा, उरध श्वास सम त्रिविध समीरा.
—रा. च. मा., सुंदरकांड

कहेऊ ते कछु दुख घटि होई, कहहुं काहि यह जान न कोई.
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा, जानत प्रिया एक मन मोरा.
सो मन रहत सदा तोहि पांहीं, समुझि प्रीति रस इतनेहि मांही.
—रा. च. मा., सुंदरकांड

पर क्या कहूं अपने अध्ययन को 'प्रसन्नराघव' नाटक के निम्न श्लोकों को पढ़ कर धारणा बदलनी पड़ी:

हिमांशुश्चंडांशुर्नवजलधरो दावदहन:
शरद्वीचीवात: कुपितफणिनि:श्वासपवन:
नवा मल्ली मल्ली कुवलयवनं कुंतगहनम्
ममत्वद् विश्लेषात् सुमुखि विपरीतं जगदिदम्. 43
कस्याख्यापव्यतिकरमिमं मुक्तदु:खो भवेयम्
को जानीते निभृतमुभयोरावयो: स्नेहसारम्,
जानात्येकं शशधरमुखि! प्रेमतत्वं मनो मे
त्वामेवैतत् चिरमनुगतं तत्प्रिये किं करोमि. —44 अंक 6

राम सागर पर सेतु बना कर सेना सहित पार उतर गए. उन्होंने अंगद को रावण के पास भेजा. बातचीत के बीच रावण राम की सेना की दुर्बलता बताता हुआ कहने लगा:

तुम्हरे कटक मांहि सुनु अंगद, मो सन भिरहिं कवन योधा वद,
तव प्रभु नारि विरह बलहीना, अनुज तासु दुख दुखित मलीना.

तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ, अनुज हमार भीरु अति सोऊ.
शिल्प कर्म जानहिं नलनीला, है कपि एक महा बलशीला.
आवा प्रथम नगर जेहि जारा, सुनि हंसि बोला बालि कुमारा.

कोई भी व्यक्ति बातचीत की इस कुशलता के लिए प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता. आप को यदि प्रशंसा करनी हो तो भवभूति की कीजिए, जिन के 'हनुमन्नाटक' में निम्न श्लोक हैं:

राम: स्त्रीविरहेण हारितवपुंस्तच्चिन्तया लक्ष्मण:
सुग्रीवोऽगदशल्भेदकतया निर्मूलकूलद्रुमा:
गण्य कस्य विभीषण: स च रिपो: कारुण्यदैन्यातिथि:
लंकातंकविटंकपावकपटुर्वंद्यो ममैक: कपि:.

—अंक 8, श्लोक 9

तुलसी का वर्षा वर्णन बहुत प्रसिद्ध है पर यह बहुत कम लोग जानते होंगे कि वह 'भागवत' के दशम स्कंध के बीसवें अध्याय का अनुवाद है.

नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं:

दादुर धुनि चहुं ओर सुहाई वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई
(श्रुत्वा पर्जन्य निनदं मण्डूका: व्यसृजन गिरा
तूष्णीं शयाना प्राग्यद्वत् ब्राह्मणा नियमात्यये.) 9
छुद्र नदी भरि चलि उतराई जस थोरेउ धन खल बौराई.
(आसन्नुत्पथवाहिन्य: क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यती:,
पुंसो यथा स्वतंत्रस्य देहद्रविकसम्पद:) 10
ससि संपन्न सोहु महि कैसी, उपकारी की संपति जैसी.
(हरिता हरिभि: शष्पैरिंद्रगोपैश्च लोहिता,
उच्छिलींधुकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभृत्.) 11
हरित भूमि तृण संकुल, समुझि परै नहिं पंथ,
जिमि पाखंड विवाद ते, लुप्त, होंहि सद् ग्रंथ.
(मार्गा: बभूवु: संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृता:,
नाभ्यस्यमाना: श्रुतयो द्विजै: कालहता इव.) 16
लछिमन देखहु मोर गन नाचत वारिध पेखि,
गृही विरति रत हरस जस विष्णु भक्त कंह देखि

—रा. च. मा, किष्किधाकांड

(मेघागमोत्सवाहृष्टा: प्रत्यनंदन् शिखंडिन:,
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा: यथाच्युतजनागमे) 20

अपने कलिकाल वर्णन के लिए भी तुलसी बहुत प्रसिद्ध हैं. पर यह वर्णन भी उन का अपना नहीं, 'श्रीमद्भागवत' से लिया गया है. कुछ उदाहरण देखिए:

शूद्र करहिं जप तप व्रत दाना, बैठि वरासन कहहिं पुराना.
शूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना, मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना.

(शूद्राः प्रतिगृहीष्यन्ति तपो वेशोपजीविनः,
धर्मं वक्ष्यंत्यधर्मज्ञाः अधिरुह्योत्तमासनम्) 38

सुनु व्यालारि कराल कलि मल अवगुन आगार,
गुनौ बहुत कलि काल, कर, बिनु प्रयास निस्तार.
(कलेर्दोषनिधेः राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः,
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्.) 51

कृतयुग द्वापर त्रेता, पूजा मख ग्रह योग,
जो गति होय हरिनाम ते, कलि पावहि सो लोग.
—रा. च. मा., उत्तरकांड

(कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः,
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात्.) 52
—भागवत, स्कंध 12, अध्याय 3

दोचार बातें और कह कर इस लेख को समाप्त करेंगे. तुलसी ने 'प्राकृत जन गुन गाना' नहीं किया, केवल राम नाम का ही वर्णन किया है. इस का कारण वह इस प्रकार बताते हैं:

भक्त हेतु विधि भवन' बिहाई, सुमिरत शारद आवति धाई.
रामचरित सर बिनु अन्हवाये, सो सुभ जाप न कोटि उपाये.

कैसी विचित्र कल्पना है! कवि के स्मरण करते ही सरस्वती ब्रह्मलोक छोड़ कर दौड़ी आती हैं. आने में उन्हें जो श्रम होता है. वह तब तक दूर नहीं होता, जब तक वे रामचरित रूपी सरोवर में स्नान न कर लें. राम भक्ति से भीनी यह कल्पना भी तुलसी की अपनी नहीं है. इस के लिए भी वह 'प्रसन्नराघव' के निम्न श्लोक के कृतज्ञ हैं:

झटिति जगतीमागच्छन्त्याः पितामह विस्मयात्महति पथि यो देव्या
वाचः श्रमः समजायत, अथ कथमसौ मुंचेदेनं न चेदवगाहते
रघुपतिगुणग्रामश्लाघा सुधामयदीर्घिकाम्. —अंक 1, श्लोक 11

तुलसी ने राम और शिव की तुलना करते हुए 'दोहावली' में लिखा है:

जो संपति शिव राबनहिं, दीन्ह दिए दस माथ.
सोइ संपदा विभीषणहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ.
—रा. च. मा., सुंदरकांड

तुलसी ने तो राम को शिव का अनन्य भक्त और शिव को राम का प्रेमी दिखाया है. फिर यह ऊंचनीच दिखाने वाली तुलना कैसी? बात वही है जो मैं पहले कह चुका हूं. तुलसी अनुवाद के बेहद शौकीन थे. अपनी रचना में किसी स्थल का अनुवाद जोड़ने के मोह में उन्हें कुछ भी ध्यान नहीं रहता था. उक्त गड़बड़ी के लिए भी 'हनुमन्नाटक' का निम्न श्लोक जिम्मेदार है:

या विभूतिर्दशग्रीवे शिरच्छेदेऽपि शंकरात्,
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे.

अनुवाद की झोंक में तुलसी को उचितअनुचित का ध्यान नहीं रहता था. अपने कथन के प्रमाण में हम एक स्थल की ओर चर्चा करेंगे.

राम वनवास एवं दशरथ मरण के पश्चात् भरत राम को मनाने वन गए. मार्ग में वह भरद्वाज के आश्रम में ठहरे. भरद्वाज को चिंता हुई कि भरत का स्वागत कैसे करें? पूजा तो देवता समान ही होनी चाहिए:

मुनिहिं सोच पाहुन बड़ नेवता तसि पूजा चाहिय जस देवता.

भरद्वाजजी ने ध्यान लगा कर रिद्धि सिद्धि को बुलाया और भरत का उचित सत्कार करने की आज्ञा दी:

रामविरह व्याकुल भरतु सानुज सहित समाज,
पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज.

रिद्धिसिद्धियों ने स्वागत का जो सामान प्रस्तुत किया, वह इस प्रकार था:

रितु बसंत बह त्रिविध बयारी सब कहं सुलभ पदारथ चारी.

—रा. च. मा., अयोध्याकांड

सुक चंदन वनितादिक भोगा, देखि हरष विस्मयबस लोगा.

अयोध्यावासियों को, जिन में भरत भी सम्मिलित थे, चारों पदार्थ सुलभ थे. आगे इन से भी जोरदार पदार्थ पेश किए. माला, चंदन, स्त्री आदि भोग की वस्तुएं. माला और चंदन तक तो ठीक है, पर भरत जैसे अतिथि को औरत पेश करना क्या उचित था? 'आदि' शब्द से कोई मदिरा का अर्थ लगा ले तो उसे कौन रोक सकता है?

इस पंक्ति को भक्त लोग चाहे चुपचाप पढ़ जाते हों, पर यहां आ कर अपना मस्तिष्क तो अनेक प्रश्नचिह्नों से भर गया. क्या उस समय के रिषि-मुनि इतने गिरे हुए थे कि प्रसन्न करने के लिए औरतें पेश करते थे? क्या भरत एवं अन्य राजकुमार औरतों के शौकीन थे? क्या यह सब तुलसी के आदर्श के अनुकूल है? यह बात दूसरी है कि ये औरतें भरद्वाज की तपस्या द्वारा निर्मित थीं और भरत इस चक्कर में नहीं आए. पर इन के औचित्य का प्रश्न अपने स्थान पर है.

'रामचरितमानस' के अनेक मर्मज्ञों से पूछा, पर समाधान नहीं हुआ. बहुतों ने तो माना नहीं कि ऐसा करना अनुचित था.

एक बार 'वेदांतसार' पढ़ रहा था. निम्न पंक्ति पढ़तेपढ़ते यह शंका निर्मूल हो गई:

ऐहिकानां स्रकचंदनवनितादिविषय भोगानां कर्मजन्यतया अनित्यत्ववद् इत्यादि.

—गुरु शांतस्वामी द्वारा संपादित प्रथम संस्करण, पृष्ठ 10

तो बात यह थी कि तुलसी बाबा ने 'वेदांत सार' में से भोग के लक्षण वाली पंक्ति नोट कर ली और उपयुक्त अवसर देख कर 'रामचरितमानस' में जोड़ दी. उस समय यह भूल गए कि इस का 'वनिता' शब्द कितना अनर्थ कर सकता है.

मुझे जिन पुस्तकों को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, संभव है, तुलसी बाबा ने उस से अधिक पुस्तकें पढ़ी होंगी. संस्कृत के अतिरिक्त वह फारसी के भी विद्वान् थे. अतः उन के साहित्य के उक्त अनुवाद बटलोई के चावल समझ लीजिए.

धनुषयज्ञ : रामचरितमानस का एक असंगत प्रसंग

क्या सीता के विवाह का आयोजन स्वयंवर कहा जा सकता है? प्राचीन भारत की अनेक विवाह विधियों में स्वयंवर का भी उल्लेख किया जाता है. वैसे मनु द्वारा गिनाई गई विवाह की आठ विधियों में स्वयंवर का नाम नहीं है. स्वयंवर प्रथा द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है कि प्राचीन काल में भारतीय नारी की सामाजिक दशा अच्छी थी, वह अपनी इच्छा से अपना पति चुन सकती थी.

तुलसीदास ने अपने 'रामचरित मानस, में प्राचीन भारत की सभी गौरवशाली प्रथाओं का समावेश करने का प्रयत्न किया है. स्वयंवर प्रथा गौरवशाली है या नहीं, इस विषय पर तो किसी अलग निबंध में विचार किया जाएगा, यहां हम केवल इस बात पर विचार करना चाहते हैं कि सीता के विवाह के आयोजन को स्वयंवर की संज्ञा देना कहां तक युक्तिसंगत है? मतलब यह कि क्या 'धनुषयज्ञ' नाम का भी कोई आयोजन होता है?

तुलसीदास ने सीता के विवाह संबंधी आयोजन को दो नाम दिए हैं: धनुषयज्ञ और स्वयंवर.

तब मुनि प्रभु सन कहा बुझाई, चरित एक प्रभु देखिय जाई,
धनुष जग्य सुनि रघुकुल नाथा, हरषि चले मुनिवर के साथा.
—राम बाल.पृ. 208

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई, जहं धनुमख हित भूमि बनाई.
—राम. बाल. पृ. 219

भगति हेतु सोइ दीन दयाला, चितवत चकित धनुषमख शाला.
—राम. बाल. पृ.220

तात जनक तनया यह सोई, धनुष जग्य जेहि कारन होई.
—राम. बाल. पृ. 224

पुनि मुनि वृंद समेत कृपाला, देखन चले धनुषमख शाला.
—राम. बाल. पृ.232

हम पूछना चाहते हैं कि यह 'धनुषयज्ञ' या 'धनुषमख' कौन सा यज्ञ है? इस का विधान किस गृह्यसूत्र, स्मृति या ब्राह्मण ग्रंथ में है? तुलसी ने राम के सभी कर्म 'लोक वेदानुकूल' बताए हैं. क्या कोई रामकथा विशेषज्ञ बता सकता है कि 'धनुषयज्ञ' का उल्लेख किस लौकिक गाथा या वेदवेदांग में है? जिस प्रकार धार्मिक ग्रंथों में श्रौतयज्ञ, स्मार्तयज्ञ, श्येन यज्ञ, अश्वमेधयज्ञ आदि का विधान व फल वर्णित है, वैसा 'धनुषयज्ञ' के विषय में भी किसी ने पढ़ा है?

क्या बहुत से लोगों द्वारा इकट्ठे हो कर किसी धनुष को उठाने का प्रयत्न ही धनुषयज्ञ है? इस प्रकार तो जितनी भी वजन उठाने की प्रतियोगिताएं हैं, उन सभी को 'यज्ञ' कहा जा सकता है. इस प्रकार तो बिना किसी विशेष खर्च के पाषाणयज्ञ, लक्कड़यज्ञ, बोरायज्ञ आदि का आयोजन भी संभव है.

यदि धनुषयज्ञ में धनुष उठाने या तोड़ने का कार्यक्रम था तो विश्वामित्र को क्यों बुलाया गया? हमारे विचार में यह तुलसी की अपनी खोज थी. वाल्मीकि ने अपनी रामायण में 'धनुषयज्ञ' शब्द का कहीं भी उपयोग नहीं किया है. वहां सीता के विवाह संबंधी आयोजन को 'स्वयंवर, भी नहीं कहा गया है.

जनक ने धनुष उठाने की प्रतियोगिता अवश्य रखी थी. सीता उन की अपनी कन्या नहीं थी इसलिए वह उस के वर का निर्णय स्वयं न कर के शक्तिपरीक्षा द्वारा करना चाहते थे. वाल्मीकि ने सीता के लिए 'वीर्यशुल्का' शब्द का प्रयोग किया है:

वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा
भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम. —15

जनक की इस कन्या से विवाह करने के लिए अनेक राजा आए. राजा जनक ने उन के सामने धनुष उठाने की शर्त रखी. उस धनुष को कोई नहीं उठा पाया:

वरयामासुरागत्य राजानो मुनिपुंगव
तेषां वरयतां कन्यां सर्वेषां पृथिवीक्षिताम. —16
वीर्यशुल्केति भगवन्न ददामि सुतामहम्.
ततः सर्वे नृपतयः समेत्य मुनिपुंगव. —17
मिथिला मभ्युपागम्य वीर्यजिज्ञासवस्तदा,
तेषां जिज्ञासमानानामैशं धनु रुपाहृतम्. —18
हनशेकुर्ग्रहणे तस्लय धनुषस्तोलनेऽपि वा. —19

वही चमकीला धनुष मैं रामलक्ष्मण को भी दिखाऊंगा. अगर राम इस पर डोरी चढ़ा देंगे तो मैं अपनी अयोनिजा कन्या उन्हें दे दूंगा:

तदेतन्मुनिशार्दूल धनुः परमभास्वरम्,
रामलक्ष्मणयोश्चापि दर्शायिष्यामि सुव्रत. —25
यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणं मुने,

सुतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेरहम्. —26
—वाल्मीकि रा. बाल. अध्याय—66

वाल्मीकि के अनुसार धनुषयज्ञ जैसी कोई बात नहीं थी. हां, धनुष उठाने के लिए अनेक राजा अपना बलपरीक्षण कर चुके थे. इस के बाद जनक ने एक यज्ञ का आयोजन किया था. ऋषियों ने कहा कि हम लोग जनक के यज्ञ में शामिल होंगे और राम उस विचित्र धनुष को देखेंगे. इस प्रकार सब लोगों का मिथिला जाना उचित है:

मैथिलस्य नरश्रेष्ठ जनकस्य भविष्यति,
यज्ञः परमधर्मिष्ठस्तस्य यास्यामेह वयम्. —6
त्वं चैव नरशार्दूल सहास्माभि गमिष्यसि
अद्‌भुतं च धनुरत्नं तत्रैकं द्रष्टुमर्हसि. —7
वाल्मीकि रा. बाल. अध्याय—31

इस प्रकार वाल्मीकि ने 'यज्ञ' और 'धनुष' शब्दों का अलगअलग प्रयोग अवश्य किया है पर 'धनुषयज्ञ' नामक नवीन यज्ञ की बात उन्हें नहीं सूझी थी. वाल्मीकि के अनुसार तो राजा लोग पहले ही साहस छोड़ कर चले गए थे. राम को वह धनुष बाद में दिखाया गया. तुलसी को अपने राम का यह एकांत पराक्रम नहीं रुचा होगा. 'जंगल में मोर नाचा, किस ने देखा?' प्रशंसा की बात तो यही थी कि सभी साहसहीन राजाओं के सामने राम धनुष उठाते. जिस धनुष को दूसरा कोई धरती से हिला भी न सका, उसे राम ने तोड़ दिया!

तुलसी ने धनुष उठाने के लिए ही सब राजाओं की उपस्थिति पसंद नहीं की, बल्कि राम और परशुराम की बातचीत के लिए भी वही समय उचित समझा. वाल्मीकि के अनुसार, परशुराम राम से तब मिले थे, जब उन की बारात जनकपुर से लौट कर अयोध्या जा रही थी. बड़े लोगों को पराजित या अपमानित कर के ही लोग महान बनते हैं, ऐसी तुलसी की मान्यता रही होगी. तुलसी राम को ईश्वर (?) का अवतार मानते थे. ईश्वर को सब से महान होना ही चाहिए! इसी महत्ता का प्रदर्शन कराने के लिए तुलसी ने धनुभंग और परशुराम संवाद भरी सभा में रखे जो वाल्मीकि के अनुसार एकांत की घटनाएं थीं.

तुलसी ने धनुभंग के समय सब राजाओं को एकत्र इसलिए किया था कि राम का महत्त्व बढ़ सके. राजाओं की भीड़ और विवाह की बात सोच कर उन के मस्तिष्क में 'स्वयंवर' वाली बात कौंध गई होगी. उद्देश्य कुछ भी रहा हो पर सीता के विवाह में अनेक राजा एकत्र थे. इधर स्वयंवर में भी अनेक राजा एकत्र होते हैं. तो फिर सीता के विवाह के इस आयोजन को 'धनुषयज्ञ' के साथसाथ 'स्वयंवर' भी क्यों न कह दिया जाए?

बस, फिर क्या था! तुलसी बाबा ने उक्त आयोजन को स्वयंवर का नाम दे दिया:

सीय स्वयंवर देखिय जाई, ईस काहि धौं देइ बड़ाई, —राम. बाल. पृ. 231

जिस प्रकार यह आयोजन 'धनुषयज्ञ' नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार हम इसे 'स्वयंवर' कहने में भी असमर्थ हैं. 'स्वयंवर' शब्द का अर्थ है वह आयोजन जिस में कन्या अपना पति अपनेआप चुने. (स्वयं वृणुते कन्या पतिं यस्मिन् सः स्वयंवरः). तुलसी ने भी 'स्वयंवर' शब्द का यही अर्थ लिया है. नारद मोह के प्रसंग में तुलसी ने स्वयंवर का वर्णन इस प्रकार किया है:

करइ स्वयंवर सो नृप बाला, आए तंह अगणित महिपाला.

—पृ. 145

एहि अवसर चाहिय परम शोभा रूप विशाल,
जेहि विलोकि रीझैं कुंअरि, तब मेलैं जयमाल.

पृ. 146

निजनिज आसन बैठे राजा, बहु बनाव करि सहित समाजा,
मुनि मन हरष रूप अति मोरें, मोहि तजि आनहि वरहि न भोरें

पृ. 147

सखी संग लै कुंअरि तब चलि जनु राज मराल,
देखत फिरइ महीप सब कर सरोज जयमाल.

पृ. 148

(उपरोक्त सभी पंक्तियां 'रामचरित मानस,' बालकाण्ड से ली गई हैं.)

क्या सीता के विवाह में भी उन्हें यह सुविधा थी कि उपस्थित राजसमाज में से किसी को अपना पति चुन लें? इस विवाह में सीता तो क्या, उन के घर वालों या नगरनिवासियों तक की पसंद का कोई स्थान नहीं था. जो भी व्यक्ति धनुष उठा लेता या तोड़ देता, उसी को सीता पति के रूप में स्वीकार करने के लिए विवश थी.

यह बात दूसरी है कि सीता तथा अन्य लोग राम के रूप पर मोहित हो कर उन्हीं को पसंद कर चुके थे और संयोग से राम धनुष तोड़ने में सफल हुए. यदि राम धनुष नहीं तोड़ पाते या कोई अन्य व्यक्ति जनक की प्रतिज्ञा पूरी कर देता तो सीता की स्थिति क्या हो जाती?

स्वयंवर के आयोजन से तो कन्या को प्रसन्न होना चाहिए. इस में उसे अपनी पसंद का पति चुनने का अधिकार रहता है. क्या सीता इस आयोजन से प्रसन्न थीं? तुलसी के ही शब्दों में उन की मनोदशा देखिए:

जानि कठिन सिव चाप बिसूरति, चली राखि उर स्यामल मूरति.

पृ. 227

तब रामहिं विलोक वैदेही सभय हृदय विनवति जेहि तेही
मन हीं मन मनाव अकुलानी... पृ. 245
नीकें निरखि नयन भरि सोभा, पितु पन सुमिरि बहुरि मनु छोभा,
अहह तात दारुन हठ ठानी, समुझत नहिं कछु लाभ न हानी.
सचिव सभय सिख देइ न कोई, बुध समाज बड़ अनुचित होई.

कहं धनु कुलिसहु चाहि कठोरा, कहं स्यामल मृदु गात किसोरा.
विधि केहि भांति धरौं उर धीरा, सिरस सुमन किमि बेधिय हीरा.
सकल सभा कै मति भै भोरी, अब मोहि संभु चाप गति तोरी.

पृ. 246

लोचन जलु रह लोचन कोना, जैसे परम कृपन कर सोना.

पृ. 247

(यह सभी पंक्तियां 'रामचरित मानस' के बाल कांड से ली गई हैं.)

कन्या की प्रसन्नता ही माता का सब से बड़ा सुख है. स्वयंवर के आयोजन से सभी माताएं प्रसन्न होती होंगी. मातापिता के दुखी होने का अवसर केवल तभी आ सकता है, जब कन्या किसी गलत व्यक्ति को वरण कर ले. पर यह स्थिति स्वयंवर समाप्त होने पर ही आ सकती है.

सीता की माता इस आयोजन से कितनी प्रसन्न थीं, यह भी देख लीजिए:

रामहि प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बोलाइ,
सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ.
सखि सब कौतुक देखनि हारे, जेउ कहावत हितू हमारे,
कोउ न बुझाइ कहहि गुरु पाहीं, ए बालक अस हठ भलि नाहीं.

—राम. बाल. पृ. 244

भूप सयानप सकल सिरानी, सखि बिधिगति कछु जाति न जानी.

—राम. बाल. पृ. 245

जहां कन्या और उस की माता विवाह की बात पर रोती और विलाप करती हों, उस आयोजन को स्वयंवर कैसे कहा जाए? स्वयंवर में कन्या अपनी इच्छा से वर को जयमाला पहनाती है. राम के गले में जयमाला सीता ने भी डाली थी पर अपनी इच्छा से नहीं, शतानंद पुरोहित की आज्ञा से:

सतानंद तब आयसु दीन्हा, सीता गवनु राम पहिं कीन्हा.

—राम. बाल. पृ. 251

गावहिं छबि अवलोकि सहेली, सिय जयमाल राम उर मेली.

—राम. बाल.

यह जयमाला सीता ने अपनी इच्छा से पहिनाई होती तो धनुष तोड़ने की आवश्यकता ही न पड़ती. वह पहले ही राम का कंठ अपनी जयमाला से सुशोभित कर चुकी होतीं.

अंत में हम यही कहेंगे कि सीता के विवाह के समय धनुष तोड़ने की शर्त थी. यज्ञ हुआ था, राजा लोग एकत्र हुए थे. जयमाला पहनाई गई थी. पर इसे न 'धनुषयज्ञ' कहा जा सकता है और न 'स्वयंवर'. कितने आश्चर्य की बात है कि सैकड़ों वर्ष से रामकथा पर चर्चा करते समय लोग इन शब्दों का निस्संकोच प्रयोग करते आ रहे हैं. ●

रामचरितमानस के कुछ असंगत स्थल

भारतीय साहित्य में तुलसी के 'रामचरितमानस' का सब से अधिक प्रचार हुआ है. यह बात ठीक है पर साथ ही इस में कोई संदेह नहीं कि ऐसे लोग बहुत कम होंगे जिन्होंने 'रामचरितमानस' पढ़ते समय मस्तिष्क की खिड़कियां खुली रखी हों. 'रामचरितमानस' के अधिकांश पाठकों के मस्तिष्क को धर्म, श्रद्धा, अंधविश्वास और स्वर्गनरक की घटाएं घेरे रहती हैं.

यह बात हम इस आधार पर कह रहे हैं कि यदि लोगों ने स्वतंत्रमस्तिष्क से 'रामचरितमानस' का अध्ययन किया होता तो उस की अनेक असंगतियों पर उन का ध्यान अवश्य गया होता. असंगतियों पर ध्यान जाने की दशा में उन की चर्चा अधिक होती. पर हम देखते हैं कि न तो आलोचना साहित्य में और न साधारण जनता में इस प्रकार की चर्चा पाई जाती है.

नीचे हम कुछ ऐसे स्थलों की ओर संकेत कर रहे हैं जो हमारी दृष्टि में असंगत हैं. 'रामचरितमानस' के भक्तों और विशेषज्ञों से अनुरोध है कि वे इन शंकाओं का स्वस्थ समाधान कर के हमें अनुगृहीत करें. ये अंश इस प्रकार हैं:

माया नगर के राजा शीलनिधि की कन्या पर नारदजी मोहित हो गए और स्वयंवर में उसे प्राप्त करने के लिए विष्णु से सुंदरता मांगने गए:

> एहि अवसर चाहिय परम सोभा रूप बिसाल.
> जो बिलोकि रीझै कुंवरि तब मेलै जय माल.
> हरिसन मागहुं सुंदरताई, होइयहि जातगहरु अति भाई.
> बहुविधि विनय कीन्ह तेहि काला, प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला.
> अति आरति कहि कथा सुनाई, करहु कृपा करि होहु सहाई.
> आपन रूप देहु प्रभु मोही, आन भांति नहिं पावहुं ओही.
>
> —बाल कांड, पृष्ठ: 146

नारदजी योगी थे (वेद न देइ सुनहु मुनि जोगी)—बाल कांड, पृष्ठ 147 योगी की शक्ति कम नहीं होती. योगी अपनी इच्छा से मनचाहा रूप बना

सकता है. नारद योगी होते हुए भी विष्णु के पास रूप मांगने क्यों गए?

पुराणों में इस प्रकार के अनेक प्रसंग मिलते हैं जिन में योगियों द्वारा इच्छानुसार रूप बनाने की बात कही गई है. एक व्यक्ति ने तो अत्यंत सुंदर रूप बना कर राजा की सैकड़ों लड़कियों से विवाह किया था. योग संबंधी ग्रंथ भी इस प्रकार की बात कहते पाए जाते हैं.

रूप मांगने पर विष्णु ने नारद का मुंह बंदर का बना दिया. नारद के इस रूप को देख कर शिव के दो गण स्वयंवर सभा में मुसकराने लगे. राजकुमारी ने नारद का वरण नहीं किया तो वह बड़ी उलझन में पड़ गए. इसी समय शिवगण नारद से यह कह कर भागे कि शीशे में अपना मुंह देखो. नारद ने पानी में अपनी सूरत देखी और शिवगणों को भारी सा शाप दे डाला:

मुनि अति बिकल मोहमति नाठी, मनि गिरि गई छूटि जनु गांठी.
तब हरगन बोले मुसकाई, निजमुख मुकुर बिलोकहु जाई.
अस कहि दोउ भागे भय भारी, वदन दीख मुनि वारि निहारी.
वेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा, तिन्हहिं सराप दीन्ह अति गाढ़ा.

— बाल कांड, पृष्ठ: 149

हमारी समझ से तो शिवगणों ने कोई अपराध नहीं किया था. उन्हें शाप देने में नारद ने कौन सी बुद्धिमानी की? क्या किसी को वास्तविकता बता देना भी अपराध है? नारद बड़ी मानसिक परेशानी में थे. वह स्वयं को विष्णुरूपधारी समझ कर राजकुमारी न पाने की पहेली नहीं सुलझा पा रहे थे. यदि शिव के गण नारद को शीशा देखने की सलाह नहीं देते तो बेचारे न जाने कब तक परेशान रहते? नारद को तो शिवगणों का उपकार मानना चाहिए.

एक बात हमारी समझ में यह नहीं आती कि नारदजी ने स्वयंवर में जाने से पहले शीशा क्यों नहीं देखा? आजकल के तिलकधारी साधुओं के समान उस समय के बाबा भी अपनी झोली में शीशा अवश्य रखते होंगे. नारद जी स्वयंवर में आते समय अपना बैरागी बाना रख आए होंगे. तभी तो शिव के गणों ने उन्हें जा कर शीशा देखने की सलाह दी.

लगे हाथ एक बात और कह दें. शीशे के बिना नारद अपना बंदर जैसा मुंह नहीं देख सके तो कोई बात नहीं थी पर विष्णु ने तो उन का शेष शरीर भी भयंकर बना दिया था. आश्चर्य है कि नारदजी ने अपने हाथोंपैरों पर भी ध्यान नहीं दिया :

मरकट वदन भयंकर देही, देखत हृदय क्रोध भा तेही,

—बाल कांड, पृष्ठ: 148

राजा प्रतापभानु के यहां ब्राह्मण खाने बैठे. जब भोजन परोसा जाने लगा तो आकाशवाणी हुई :

विप्रवृंद उठिउठि गृह जाहू, है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू.
भयेउ रसोईं भूसुर मांसू.

—बाल कांड, पृष्ठ 177

32/7

बस फिर क्या था? ब्राह्मणों ने शाप दे डाला :

बोले विप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह विचार.
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार.
छत्र बंधु तैं विप्र बोलाई, घालै लिए सहित समुदाई.
ईश्वर राखा धरम हमारा, जैहसितैं समेत परिवारा.
संवत मध्य नास तव होऊ, जल दाता न रहहि कुल कोऊ.

बाल कांड, पृष्ठ: 177

इतने में ही फिर आकाशवाणी हुई:

विप्रहु शाप विचारि न दीन्हा, नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा.

—बाल कांड, पृष्ठ: 177

यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि राजा प्रतापभानु के यहां एक लाख ब्राह्मण परिवार भोजन करने बैठे थे. उन्होंने बिना कोई विचार किए हुए शाप कैसे दे दिया? अगर तुरंत शाप दिया जाता तो सब के मुख से अलग-अलग बातें निकलतीं. जो ब्राह्मण शाप दे कर राजा को सपरिवार नष्ट कर सकते थे, क्या उन में वास्तविकता जानने की शक्ति नहीं थी? आकाशवाणी के लिए हम क्या कहें? वह अगर पूरी सूचना एक ही बार में दे देती तो क्यों निर्दोष को दंड मिलता? शाप भी कैसा विचित्र अस्त्र था जो चलाने वाले के संशोधन से भी बाहर था. शाप के विवेचन पर हम फिर कभी विचार करेंगे.

रावण की तपस्या से प्रसन्न हो कर ब्रह्माजी ने रावण से वर मांगने को कहा. रावण बोला:

हम काहूके मरहिं न मारे, बानरमनुज जाति दुइ बारे. —बाल कांड, पृष्ठ: 179

वर मांगने में रावण का उद्देश्य अमर होने का ही था. उस ने सीधी बात क्यों नहीं कही कि मैं किसी के मारे नहीं मरूंगा. उस ने वानर और मनुज दो को क्यों छोड़ दिया? क्या वानर और मनुष्य के हाथ से मरने में विशेष पुण्य था? ऐसा लगता है कि ये सब किस्से राम कथा में जोड़ने के लिए गढ़े गए हैं.

राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने गए. वहां जो कुछ हुआ वह इस प्रकार है:

चले जात मुनि दीन्ह दिखाई, सुनि ताड़का क्रोध करि धाई.
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा, दीन जानि तेहि निजपद दीन्हा.

—बाल कांड पृष्ठ: 207

कहना यह है कि यहां ताड़का के लिए 'दीन' शब्द का प्रयोग कहां तक उचित है? क्या ताड़का दीन थी? मारीच और सुबाहु की मां, यज्ञ विध्वंसकारी शक्ति की स्वामिनी ताड़का, दीन कौन से कोष के अनुसार थी? यदि राम ने दीन जान कर ही ताड़का को 'निजपद' दिया तो संसार के तत्कालीन अन्य दीनों ने ही क्या बिगाड़ा था!

राम और लक्ष्मण विश्वामित्रजी के संग जनकपुर जा रहे थे. बहुत से ऋषि भी साथ थे. मार्ग में गंगा में नहाए. ब्राह्मणों को बहुत सा दान मिला:

तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए, विविध दान महि देवन्ह पाए.

—बाल कांड, पृष्ठ: 210

ब्राह्मणों को भांतिभांति का दान मिला, यह ठीक है. गंगा स्नान के बाद लोग दान करते ही हैं. पर हम जानना चाहते हैं कि यह दान दिया किस ने? राम ने या ऋषियों ने? हमारे विचार से दोनों ही अकिंचन थे. उस समय नोटों का प्रचलन था नहीं जो साथ ले चलते. ऋषिमुनि लोग पहले तो संपन्न नहीं होते. दूसरे, वे ब्राह्मणों से क्या हीन कोटि के थे जो ब्राह्मणों को दान करते? रही रामलक्ष्मण की बात, सो उन्हें दशरथ ने विश्वामित्र के साथ खाली हाथ भेजा था. खजाना साथ भेजने का कहीं प्रसंग ही नहीं आता.

दशरथ की मृत्यु राम के वियोग में हुई थी. पहले ही स्पष्ट था कि वह राम के वियोग में जीवित नहीं रह सकेंगे. कैकेयी ने राम के बनवास और भरत के राज्याभिषेक का वर मांगा था. उस ने यह तो नहीं कहा था कि दशरथजी राम के साथ न जाएं पर दशरथजी स्वयं यह बात सोच सकते थे. उन की समझ में नहीं आई तो कोई भी मंत्री यह साधारण सी बात बता कर समस्या सुलझा सकता था.

दशरथजी को राम का वियोग जब असह्य हो गया तो उन्होंने सुमंत से कहा:

सखा रामु सिय लखन जहं तहां मोहि पहुंचाउ
नाहित चाहत चलन अब प्रान कहउं सति भाउ.

—अयोध्या कांड पृष्ठ: 453

हम पूछना चाहते हैं कि दशरथ की इस आज्ञा का पालन क्यों नहीं किया गया? उन्हें राम के पास पहुंचाने में क्या अड़चन थी?

रावण ने विवश किया तो मारीच सोने का मृग बन कर राम को दूर ले गया. वहां जो कुछ हुआ वह तुलसी के शब्दों में इस प्रकार है:

तब तकि राम कठिन सर मारा, धरनि परेउ करि घोर पुकारा.
लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा, पाछे सुमिरेसि मन महुं रामा.
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा, सुमिरेसि राम समेत सनेहा.
अंतर प्रेम तासु पहिचाना, मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना.

—अरण्य कांड पृष्ठ: 629

पता नहीं राम ने मारीच का अंतरप्रेम कैसे पहचान लिया? उस के किसी काम से तो यह प्रकट नहीं होता कि वह मन में राम से प्रेम करता था और विवश हो कर रावण के साथ आया था.

राम का बाण लगने पर उस का मरना निश्चित था. अगर वह राम का प्रेमी या भक्त होता तो उस समय सच्ची बात कह सकता था. वह लक्ष्मण को बुलाने के स्थान पर राम को वास्तविकता बता सकता था. इस से सीता का

हरण भी न होता और रावण भी मारा जाता.

मरते समय बड़ेबड़े अपराधी भी सत्य बोलने लगते हैं. पर मारीच तो मरते मरते रावण का काम कर गया. इस से यही सिद्ध होता है कि मारीच रावण का पक्का आदमी था. फिर राम के द्वारा उस का अंतर प्रेम पहचानना और 'मुनिदुर्लभ गति' देना कहां तक उचित है?

सीताहरण के पश्चात राम अत्यंत दुखी थे. नारदजी ऐसे में राम के पास गए. वहां का प्रसंग तुलसी के शब्दों में इस प्रकार है:

नाना विधि विनती करि प्रभु प्रसन्न जिय जानि,
नारद बोले वचन तब जोरि सरोरुह पानि.
सुनहु उदार सहज रघुनायक सुंदर अगम सुगम वर दायक.
देहु एक वर मांगहु स्वामी जद्यपि जानत अंतरजामी.

राम ने कहा:

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ, जन सन कबहुं कि करहुं दुराऊ.
कवन वस्तु अस प्रिय मोहि लागी, जो मुनिवर न सकहु तुम्हमांगी.
जन कहुं कछु अदेय नहि मोरे, अस विश्वास तजहु जनि भोरे.
तब नारद बोले हरषाई, अस वर मांगउं करउं ढिठाई.
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका, श्रुति कह अधिक एक तें एका.
राम सकल नामन्ह ते अधिका, होउ नाथ अघखग गन बधिका.
राका रजनी भगति तव, रामनाम सोइ सोम,
अपर नाम उडुगन विमल, बसहु भगत उर व्योम.
एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ
तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नायहु माथ.

—अरण्य कांड, पृष्ठ: 647

इस से बड़ी खुशामद और आत्मप्रशंसा का प्रसंग शायद ही कहीं मिले! नारद ने कितनी भूमिका बांधी पर वर क्या मांगा, 'आप के बहुत से नाम हैं जो एक से एक बढ़ कर हैं. लेकिन राम नाम उन सब नामों से अधिक है. आप की भक्ति पूर्णिमा की रात है. राम नाम चंदा है, अन्य नाम तारागण हैं. ये सब भक्तों के हृदयरूपी आकाश में निवास करें.

बेशर्मी की हद हो गई, जब राम ने इस पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी. किसी दूसरे के सामने यह प्रस्ताव रख कर स्वीकृति ली जाती, तब ठीक था.

वास्तविकता यह लगती है कि तुलसी अपने उपास्य राम का नाम सब से महत्त्वपूर्ण बताना चाहते थे. उस के लिए तुलसी ने यह प्रसंग चुना. हम पूछना चाहते हैं कि क्या इस बात के लिए यह प्रसंग उचित था? क्या इस से राम की प्रतिष्ठा कम नहीं होती?

सीताहरण के विषय में जटायु पहले ही राम को बता चुका था:

तब कह गीध वचन धरि धीरा, सुनहु राम भंजन भव भीरा.

नाथ दसानन यह गति कीन्हीं, तेहि खल जनकसुता हरि लीन्हीं.
लै दच्छिन दिसि गयेउ गुसाईं बिलपति अति कुररी की नाईं.

आगे के एक प्रसंग में राम, लक्ष्मण से कहते हैं:

वर्षा गत निर्मल रितु आई, सुधि न तात सीता कै पाई.
एक बार कैसेहुं सुधि जानौं, कालहु जीति निमिष महं आनौं.
कतहुं रहउ जौं जीवति होई, तात जतन करि आनहुं सोई.

क्या ऊपर की दोनों बातों में कोई सामंजस्य है? जब जटायु बता चुका था कि रावण सीता को बलपूर्वक उठा कर दक्षिण की ओर ले गया है तो अनिश्चय की स्थिति कहां रही? क्या राम इतना भी नही जानते थे कि रावण कहां का राजा है ? वह जटायु से समाचार पा कर अकेले ही लंका की ओर चल सकते थे या सुग्रीव से लंका में बंदर भेजने की बात कह सकते थे? फिर बेचारा सुग्रीव इधरउधर वानरों के खोजी दल क्यों भेजता? वह वानरों से सीधे लंका जाने की ही बात कहता.

इस प्रकार की परस्पर असंबद्ध बातें देख कर यह अनुमान होता है कि तुलसी बाबा या तो भंग पी कर कविता लिखते होंगे या उन्हें अपनी रचनाएं दोबारा पढ़ना अरुचिकर लगता होगा, अन्यथा यह भूलें किस प्रकार संभव हैं?

तुलसी ने राम के मुख से लक्ष्मण को अपना सगा भाई और अपनी माता का इकलौता पुत्र कहलवाया है :

अस विचारि जिय जागहु ताता, मिलहि न जगत सहोदर भ्राता.
निज जननी के एक कुमारा, तात तासु तुम प्रान अधारा.

—लंका कांड, पृष्ठ: 795

रामकथा की दृष्टि से तो दोनों बातें गलत हैं ही, वैसे भी एक प्रसंग में उक्त दोनों बातें नहीं कही जानी चाहिए थीं. एक व्यक्ति एक साथ ही किसी का सहोदर भ्राता और अपनी मां का अकेला पुत्र नहीं हो सकता.

तुलसी के भुलक्कड़पन का यह प्रसंग समाप्त करने से पहले हम एक बात और कहना चाहते हैं. जन साधारण 'हनुमान चालीसा' को तुलसीदास की रचना मानते हैं. पर विद्वानों ने इसे तुलसी के ग्रंथों में स्थान नहीं दिया है.

हमारा विश्वास है कि 'हनुमान चालीसा' अगर किसी की रचना हो सकती है तो वह तुलसी बाबा की. अपने पक्ष में हम कोई बाह्य प्रमाण न दे कर एक आंतरिक प्रमाण देंगे. 'हनुमान चालीसा' के प्रारंभ में ही हनुमानजी के तीन भिन्नभिन्न पिता बताए गए हैं :

शंकर सुवन केसरी नंदन, तेज प्रताप महा जग बंदन.
अंजनि पुत्र पवन सुत नामा......

यह तो हनुमानजी के भक्त लोग ही जाने कि हनुमान के पिता कौन थे? शंकर, केसरी या पवन? चौपाई की एक पंक्ति में हनुमान के दो पिता बताने का साहस तुलसी के अतिरिक्त और कौन कर सकता था?

तुलसी और वेद

तुलसीदास भक्ति काल के कवि थे. भक्ति भावना धर्म की अनेक विचारधाराओं में से एक है. धार्मिक साहित्य की सर्व प्राचीन पुस्तक वेद है, ऐसी धर्मांध भारतीयों की मान्यता है. इसलिए नास्तिक दर्शनों को छोड़ कर सभी दर्शन, सभी संप्रदाय और सभी मतमतांतर अपने विचारों को वेद के अनुकूल बताते हैं. भारत का धार्मिक वातावरण कुछ ऐसा है कि जो बात यहां वेदानुकूल सिद्ध हो जाती है, लोग उसे बिना हीलोहुज्जत के मान लेते हैं. महात्मा होने पर भी तुलसीदास इस बात का लोभ नहीं सह सके कि उन की मान्यताओं व उन के साहित्य का अधिक से अधिक प्रचार हो. अधिकतम लोग उन के स्वर में स्वर मिला कर बोलें. इसलिए उन्होंने भी अपने साहित्य को वेदानुकूल सिद्ध करने का पूरा प्रयत्न किया है. तुलसी के समय तक धार्मिक जगत में पुराणों की मान्यता भी वेदों से कम नहीं थी. कबीर आदि संत कवियों के प्रचार से जनता के मानस में संतोंसाधुओं की बात के प्रति भी आदर जाग उठा था. इसलिए तुलसी बाबा ने अपनी बात जनता के हृदय में उतारने के लिए वेदों के साथसाथ पुराणों और संतों को भी कष्ट दिया है. विद्वानों का आदर समाज ने सदा किया है, इसलिए कहींकहीं उन का भी स्मरण कर लिया गया है. तुलसी साहित्य में ऐसे बहुत से स्थल मिलेंगे, जिन में इन सब को गवाह बनाया गया है :

वेद पुरान संत मत एहू, सकल सुकृत फल राम सनेहू.

—रामचरित मानस, 51

सहसा करि पाछे पछिताहीं, कहहि वेद बुध ते बुध नाहीं.

—रामचरित मानस, 355

तुलसी ने अपने साहित्य में वेद के अतिरिक्त वेद के पर्यायवाची शब्द श्रुति और आगमनिगम को भी उद्धृत किया है. आगमनिगम शब्द कहीं साथसाथ आए हैं, कहीं एकाकी. उक्त तीनों शब्द वेद के प्रसिद्ध पर्यायवाची हैं, फिर

भी हम यह बात तुलसी साहित्य से ही सिद्ध कर देना उचित समझते हैं. वेदों को त्रयी कहा जाता है, पर उन की संख्या चार है. निम्न स्थलों में श्रुति, निगम और आगम की संख्या भी चार ही बताई गई है :

चहुं जुग चहुं श्रुति नाम प्रभाऊ, कलि विशेष नहिं आन उपाऊ.

—रामचरित मानस, 49

अव्यक्तमूलमनादि तरु, त्वच चारि निगमागम भने.

—रामचरित मानस, 602

तुलसी बाबा ने वेद एवं उन के पर्यायवाची शब्दों को अपने साहित्य में 362 बार पुकारा है. ऐसा उन्होंने इस कारण किया है कि पढ़ने वाला उन के साहित्य को वेदसम्मत मान लेने पर विवश हो जाए. पाठकों की जानकारी के लिए उक्त शब्दों का अलगअलग विवरण दिया जाता है :

ग्रंथ	वेद	निगमागम	श्रुति	योग
रामचरित मानस	109	34	66	209
वैराग्य संदीपनी	2	—	—	2
बरवै रामायण	2	1	—	3
पार्वती मंगल	2	—	—	2
जानकी मंगल	1	—	1	2
रामाज्ञा प्रश्न	2	—	—	2
दोहावली	8	1	1	10
कवितावली	22	3	—	25
हनुमान बाहुक	2	—	—	2
गीतावली	19	5	1	25
कृष्ण गीतावली	1	—	—	1
विनय पत्रिका	50	12	16	78
सर्वयोग	220	56	85	361

तुलसी ने एक स्थान पर वेदों को त्रयी भी कहा है, अतः हम ने कुल संख्या 362 लिखी है. वह स्थल निम्न है :

अदभुत त्रयी किधौं पठई है, मग लोगन सुख दैन.

—गीतावली 335

रामचरित मानस के भिन्नभिन्न कांडों में उक्त शब्दों की संख्या का अनुपात इस प्रकार है :

कांड	वेद	निगमागम	श्रुति	योग
बालकांड	45	10	15	70
अयोध्याकांड	29	8	4	41
अरण्यकांड	3	1	7	11
किष्किंधाकांड	2	—	2	4
सुंदरकांड	—	1	2	3
लंकाकांड	5	1	3	9
उत्तरकांड	25	13	33	71
सर्वयोग	109	34	66	209

साधारण पाठक ही नहीं, बहुत से अध्ययन करने वालों पर भी तुलसी बाबा का जादू चल जाता है. वे तुलसी साहित्य को वेद सम्मत ही नहीं, वेदों का निचोड़ और तुलसी बाबा को वेदों का सर्वज्ञ पंडित माननेकहने लगते हैं. तुलसी साहित्य में उत्तम कृति रामचरित मानस को पांचवां वेद मानने में बहुत कुछ वेद व उस के पर्यायों को बारबार दुहराने का ही हाथ है. तुलसी बाबा ने रामचरित मानस को जब स्वयं ही वेदपुराण सम्मत कह दिया, तब तो किसी को संशय रह ही नहीं गया :

नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि,
स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति.

पर वास्तविकता कुछ और ही है. तुलसी की रचनाएं, जिन में रामचरित मानस भी है, चाहे नाना पुराण सम्मत भले ही हों पर वे वेद से मेल नहीं खातीं. तुलसी साहित्य का गंभीर अध्ययन तो हमें यहां तक कहने को विवश करता है कि तुलसी बाबा ने वेदों का अध्ययन नहीं किया था. उन्हें वेदों की साधारण जानकारी थी. जितनी कि लोगों को दूसरों से सुन कर हो जाती है. हमारी बात से बहुत से धर्मांध लोगों के हृदय को आघात पहुंच सकता है. हम इस के लिए क्षमा चाहते हैं. ध्यान रहे हम तुलसी साहित्य की अच्छाईबुराई के विषय में कुछ नहीं कह रहे हैं :

तुलसी साहित्य में 26 स्थानों पर वेद, दो स्थानों पर निगम और दो स्थानों पर श्रुति शब्द उच्चारण के संबंध में आए हैं. इन स्थलों में वेद आदि के पढ़ने-पढ़ाने और सुननेसुनाने का वर्णन है. इन से न तुलसी का वेद ज्ञान स्पष्ट होता है, न उन के साहित्य का वेदानुकूल होना. कुछ उदाहरण देखिए :

कतहुं विरुद वेदी उच्चरहीं, कतहुं वेद ध्वनि भूसुर करहीं.
—रामचरित मानस, 196

जहां बैठि मुनि गन सहित नित सिय राम सुजान,

सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान.

—रामचरित मानस, 358

वेद तथा उस के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग 79 स्थानों पर तुलसी बाबा ने इस प्रकार किया है जो साधारणतया उचित लगता है. इन में 47 स्थानों पर वेद, 14 स्थानों पर आगमनिगम और 18 स्थानों पर श्रुति शब्द प्रयुक्त हुआ है. ये स्थल ऐसे साधारण विचारों वाले हैं जिन के वेदानुकूल होने का जनसाधारण को भी ज्ञान रहता है. इन में भी 12 स्थल विवादास्पद हैं. 11 वेद वालों में व एक आगमनिगम वालों में. उदाहरणार्थ कुछ स्थल प्रस्तुत किए जाते हैं:

कहहिं वेद इतिहास पुराना, विधि प्रपंच गुन अवगुन साना.

—रामचरित मानस, 38

समजमनियम फूल फल नाना, हरि पद रति रस वेद बखाना.

—रामचरित मानस, 58

वेद कहत, बुध कहत हैं और कहतु हौं टेरि,
तुलसी प्रभु सांचो हितू तू हिये की आंखिन हेरि.

—विनयपत्रिका, 554

हैं श्रुति विदित उपाय सकल, सुर केहिकेहि दीन निहोरै.

—विनयपत्रिका, 510

धरम न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुरान बखाना.

—रामचरित मानस, 284

इन में वे स्थल भी सम्मिलित हैं, जिन में तुलसी ने कलियुग निंदा में ब्राह्मणों को वेद विदूषक एवं श्रुति बेचक कहा है तथा स्वयं को वेदविहीन बताया है. हम ने इस स्तंभ में ऐसे स्थलों की गणना की है, जिन के औचित्य की संभावना हो सकती है. ऊपर उद्धृत स्थलों में ऐसी साधारण बातें हैं जो सभी धर्म ग्रंथों में प्रायः होती हैं. संसार गुणअवगुण से मिला हुआ है, यमनियमादि का तत्त्व ईश्वर प्रेम है, ईश्वर सब से बड़ा मित्र है, आदि सिद्धांत सभी धर्म ग्रंथों में होने चाहिए.

इस स्तंभ के अंतर्गत जो स्थल विवादास्पद हैं, उन में से भी कुछ देखिए:

लाभु न कछु हरि भक्ति समाना, जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना.

—रामचरित मानस, 663

कहहिं संत मुनि वेद पुराना, नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना.

—रामचरित मानस, 666

बिनु गुरु होइकि ज्ञान, ज्ञानकि होय विराग बिनु,
गावहिं वेद पुरान, सुखकि लहिय हरि भगति बिनु.

—दोहवली, 114

उक्त उदाहरणों में जो बातें कही गई हैं, वे साधारणतया तो ठीक लगती

हैं, पर सर्वमान्य नहीं हैं. वेदों का मुख्य विषय कर्मकांड है. उपासना और कर्मकांड सब का फल ज्ञान बताया गया है, जब कि भक्ति मार्ग वाले भक्ति को सर्वोपरि समझते हैं. उद्धव गोपी संवाद सभी भक्तों का प्रिय विषय रहा है, जिस में ज्ञान को भक्ति से नीचा ठहराया गया है.

तुलसी बाबा ने वेदों को संत, शारदा, शेष, शंकर आदि के साथ तो सैंकड़ों स्थलों पर स्मरण किया है, पर 30 स्थानों पर तो उन का वर्णन इस प्रकार किया है, मानो वेदादि भी कोई पुरुष हों जो किसी निश्चित कार्य को करने में समर्थ न हों. जहां तक वेद कहें 'श्रुति गावें, निगम पुकारें' आदि वाले स्थल हैं, वहां तक वेदों में इस का वर्णन है, तात्पर्य लगा कर काम चलाया जा सकता है, पर जहां किसी काम के कर सकने की बात है, वहां उस की संगति वेदों से नहीं लगाई जा सकती. अयोध्या की शोभा का वर्णन या तुलसी के अवगुणों की गणना वेद भी नहीं कर सकते, इस की भी कोई तुक है? कोई अपरिचित तो यहां तक कह बैठेगा कि इस आदमी को इतना तक पता नहीं कि वेद एक पुस्तक का नाम है. कुछ इसी प्रकार के स्थल पेश हैं:

प्रेम प्रमोदु विनोद बड़ाई, समउ समाज मनोहर ताई.
कहि न सकहिं सत सारद सेसू, वेद विरंचि महेस गनेसू.
—रामचरित मानस, 230

वंदउं चारिउ वेद भव वारिधि वोहित सरिस,
जिन्हहि न सपनेहु खेद बरनत रघुवर विसद जसु.
—रामचरित मानस, 44

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी, मत हमार अस सुनहि सयानी,
तदपि संत मुनि वेद पुराना, जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना.
—रामचरित मानस, 104

बरनत यह अमित रूप, थकित निगम नागभूप.
—गीतावली, 410

निगम सेस सारद सुक संकरु, बरनत रूप न पावत पारु.
—गीतावली, 411

निगम सेष सारद निहोरि जो अपने दोष गनावौं,
तौ न सिराहिं कल्प सत लगि प्रभु कहा एक मुख गावौं.
—विनयपत्रिका, 530

कोटिहुं बदन नहिं बनै बरनत जग जननि शोभा महा,
संकुचहिं कहत श्रुति शेष सारद मंद मति तुलसी महा.
—रामचरित मानस, 93

सत सारदा शेष श्रुति मिलि करि शोभा बरनि न जाई.
—विनयपत्रिका, 492

कहिहै कलुष कौन मेरे कृत करम वचन और मन के,

हारहिं अमित सेष सारद स्रुति गिनत एक एक छनके.
—विनयपत्रिका, 507

तो जनाब नोट कर लीजिए तुलसी बाबा की नई खोजें कि हमारे आप के समान वेदों को भी खेद होता है, उन के भी मति होती है, वे भी थकते हैं, वे भी पार नहीं पाते, उन्हें भी संकोच होता और उन्हें भी खुशामद कर के किसी गणना के लिए राजी किया जा सकता है.

हमें तुलसी साहित्य में 143 स्थल ऐसे मिले हैं. जिन में वेद का नाम ले कर गलत और आपत्तिजनक बातें कही गई हैं, उन बातों का वेद से कोई संबंध नहीं है. अयोध्या वर्णन, तीर्थराज प्रशंसा, काशी महात्म्य, राम कथा आदि ऐसे ही विषय हैं, जिन का वेदों में कहीं वर्णन नहीं हैं. राम भक्ति के आवेश में तुलसी बाबा चाहे कल्प भेद से रामचरित अगणित मान लें, लेकिन वास्तविकता यह है कि वेदों की रचना के समय इन में से किसी का नाम नहीं था. वेदों में जहांजहां काशी, अयोध्या तथा राम शब्द दोएक स्थल पर आए हैं, पर उन का अर्थ क्रमशः चमकती हुई, न जीतने योग्य तथा सुंदर है, नगरी और दशरथ पुत्र नहीं. इसी प्रकार के अन्य स्थान हैं, जिन में कुछ का दिग्दर्शन कराया जाता है:

मज्जहिं सज्जन वृंद बहु पावन सरजू नीर,
जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर श्याम शरीर.
दरस परस मज्जन अरु पाना, हरई पाप कह वेद पुराना.
—रामचरित मानस, 56

सेवहिं सुकृति साधु सुचि पावहिंसबमन काम,
वेदी वेद पुरान गन कहहिं विमल गुन ग्राम.
—तीर्थराज प्रशंसा (रामचरित मानस, 291)

जय गजवदन षडानन माता, जगत जननि दामिनि दुति गाता,
नहिं तब आदि मध्य अवसाना, अमित प्रभाव वेदु नहिं जाना.
—रामचरित मानस, 164

लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही, वेद पुरान प्रशंसहि जाही.
—रामचरित मानस, 115

सकल कामप्रद तीरथ राऊ, वेद विदित जग प्रगट प्रभाऊ.
—रामचरित मानस, 341

जो अपराध भगत कर करई, राम रोष पावक सो जरई.
लोकहु वेदविदित इतिहासा, यह महिमा गावहिं दुरवासा.
—रामचरित मानस, 348

दुइ सुत सुंदर सीता जाए, लवकुस वेद पुरानन गाए.
—रामचरित मानस, 610

जिन को पुनीत वारि धारे सिर पर पुरारि,

त्रिपथ गामिनि जसु वेद कहैं गाइकैं. —कवितावली, 163

संकर से नर गिरिजा सी नारी कासी वासी,
वेद कहीं सही ससिसेखर कृपाल की.
—कवितावली, 240

ठाकुर महेस ठकुराइन उमासी जहां, लोभ वेद हूं विदित महिमा ठहरती.
—कवितावली, 240

सवरी सेस सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ,
नाम उधारे अमित थल वेद विदित गुन गाथ.
—दोहावली, 105

जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि मांगत सकुचाहीं,
वेद विदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं.
—विनयपत्रिका, 456

अब जाना मैं अवध प्रभावा, निगमागम पुरान अस गावा.
रामचरित मानस, 651

अतुलित बल मृगराज मनुज तन दनुज हत्यौ स्रुति साखी.
—विनयपत्रिका, 506

ऊपर जिन का विवरण दिया गया है, उन की प्रशंसा या गाथा पुराणों में तो मिल सकती है, वेद में नहीं. वेदों में तो गंगा का भी नाम नहीं है, सरजू की क्या गिनती? वेदों में सिंधु शब्द अवश्य आया है. कुछ स्थल ऐसे हैं, जिन पर हंसी आए बिना नहीं रहती. कपट मुनि के मित्र राक्षस पाताल केतु ने जब प्रतापभानु के पुरोहित के रूप में रसोई तैयार की, वह श्रुति के गाने के अनुसार थी:

उपरोहित जेवनार बनाई, छरस चारि विधि जसि श्रुति गाई.
—रामचरित मानस, 130

भला वेद न हुए, कोई पाक शास्त्र की पुस्तक हो गई? यजुर्वेद के कुछ मंत्रों में अन्नों के नाम अवश्य गिनाए गए हैं, पर पाक क्रिया का ऐसा बेजोड़ वर्णन कहीं नहीं है, जिस से कुशल रसोइया भी सहायता ले सके.

इसी प्रकार की बात हनुमान के विषय में है. एक ओर तो तुलसी बाबा ने उन्हें पूंछ वाला बंदर कहा है, दूसरी ओर उन्हें वेद, व्याकरण आदि का ज्ञाता बताया है:

जयति विश्व विख्यात बानैत विरुदावली, विदुष बरनत वेद विमल बानी.
—विनयपत्रिका, 467

जयति वेदांतविद विविध विद्या विशद वेदांग विद ब्रह्म वादी.
—विनयपत्रिका, 467

वेद पुरान प्रकट पुरुषारथ सकल सुभट सिरमौर.
—विनयपत्रिका, 470

जयति निगमागम व्याकरन करन लिपि, काव्य कौतुक कला कोटि सिंधो.
—विनयपत्रिका, 468

बंदि छोरि विरुदावली निगमागम गाई.
—विनयपत्रिका, 478

वेदों में राम कथा का नाम ही नहीं है तो हनुमान बेचारे को कौन पूछता है! रही हनुमानजी की पढ़ाईलिखाई की बात, सो क्या कहूं! हनुमान की जो कुछ मान्यता है, वह तुलसी के बाद ही आरंभ हुई है :

सहज अपावन नारि पति सेवत सुभगति लहहिं,
जस गावहिं श्रुति चारि अजहुं तुलसिका हरिहि प्रिय.
—रामचरित मानस, 410

परम धरम श्रुति विदित अहिंसा, पर निंदा सम अघ न गरीसा.
—रामचरित मानस, 672

स्रुति गुरु साधु सुमृति सम्मत यह दृश्य सदा दुखकारी, (संसार निंदा)
तेहि बिनु तजे भजे बिनु रघुपति विपति सकै को टारी.
—विनयपत्रिका, 517

विषय हीन दुख मिले विपति अति सुख सपनेहु नहि पायौ,
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यों धन दुखप्रद स्रुति गायी.
—विनयपत्रिका, 558

वेदों में नारी निंदा नहीं है, यह तो पुराण काल की देन है. अहिंसा परमो धर्मः का सिद्धांत तो बौद्धों का है. यज्ञों में दी जाने वाली बलि का ध्यान कर के इसे वेदविदित कौन कहेगा? इसी प्रकार संसार को सदा दुःखमय मानना और धन को उभय प्रकार दुखप्रद कहना वैदिक विचारधारा के प्रतिकूल है. ये दोनों विचारधाराएं भी बौद्ध धर्म की देन हैं. वेद घरबार छोड़ कर लंगोटी लगाने वालों की रचनाएं नहीं हैं, उन के दृष्टा प्रायः बालबच्चेदार ऋषि थे. वेदों में सैंकड़ों स्थानों पर ईश्वर से धन, पशु, संतान और फसलें देने की प्रार्थनाएं भरी पड़ी हैं.

राम कथा और राम नाम की महिमा से संबंधित बीसियों स्थल ऐसे हैं, जिन में तुलसी ने वेद का हवाला दिया है. हम पहले ही निवेदन कर चुके हैं कि न वेद में राम कथा है, न राम नाम की महिमा गाई गई है और न राम के अनेक नाम गिनाए हैं. बहुत सी विचारधाराओं पर तुलसी बाबा ने आंख बंद कर के वेद की मुहर लगा दी है, हम विस्तार भय से उन सब उद्धरणों को नहीं दे रहे.

शायद यह भूल तुलसी बाबा से इस कारण हुई है कि उन्होंने वेद और पुराण को एक ही चीज समझ लिया है. वेदों में कथानक नहीं है, यदि हैं भी तो बहुत कम और अस्पष्ट, जब कि पुराणों में कहानियां ही कहानियां भरी पड़ी हैं. दूसरे वैदिक काल और पौराणिक काल की परिस्थितियों तथा विचारधाराओं

में जमीनग्रासमान का ग्रंतर है. तुलसी ने 86 स्थलों पर वेदों ग्रौर पुराणों को एक ही डंडे से हांका है, जिन पर 51 स्थलों पर वेद, 17 स्थलों पर ग्रागमनिगम ग्रौर 18 स्थलों पर श्रुति शब्द प्रयुक्त हुग्रा है. कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि वेद ग्रौर पुराण को एक ही जुए में जोतना कहां तक उचित था:

सेष सारदा वेद पुराना, सकल करहिं रघुपति गुनगाना.
— रामचरित मानस, 97

सुमिरत सुलभ दास दु:ख सुनि हरि चलत तुरत पट पीत संभारत,
सखि पुरान निगम ग्रागम सब जानत द्रुपद सुता ग्ररु बारन.
—विनयपत्रिका, 562

जो गति ग्रागम महामुनि दुर्लभ कहत संत श्रुति सदा पुरान,
सोई गति मरन काल ग्रपने पुर देत सदाशिव सबहि, समान.
—विनयपत्रिका, 455

रघुपति (दशरथ पुत्र) का गुणगान, स्मरण करते ही भगवान का गज, द्रौपदी ग्रादि भक्तों की सहायता को नंगे पांव दौड़ना ग्रौर शिवशंकर की नगरी काशी में मरने वालों को मोक्ष मिलना, यह सब पुराणों का विषय है, वेद का नहीं. वेद में ऐसी बेसिरपैर की बातों की भरमार नहीं है.

तुलसी साहित्य में 23 स्थानों पर लोक ग्रौर वेद शब्दों का साथसाथ प्रयोग हुग्रा है ग्रौर 19 स्थानों पर वेद को विवाह, राज्याभिषेक, मृतक दाह ग्रादि की विधि के लिए स्मरण किया गया है. इस विषय में हमें केवल इतना कहना है कि वेद में रीतिरिवाजों ग्रौर संस्कारों का वर्णन नहीं है, यह तो स्मृतियों ग्रौर गृह्य सूत्रों का विषय है. वेदों में वे मंत्र ग्रवश्य हैं जो उक्त ग्रवसरों पर बोले जाते हैं. कौन सा मंत्र किस ग्रवसर पर बोला जाना चाहिए, इस का निर्देश भी गृह्य सूत्रों में ही मिलता है. बहुत से मंत्र ऐसे हैं, जिन का ग्रर्थ उन के प्रयोग के ग्रवसर से बिलकुल मेल नहीं खाता. जैसे शनिश्चर की पूजा के लिए जो 'शं नो देवी' मंत्र बोला जाता है, उस में शनि नहीं, जल की प्रार्थना है.

तुलसी बाबा ने 11 स्थलों पर वेद निगम एवं श्रुति शब्दों का प्रयोग 'नेति' के साथ किया है. यह नेति वाला मामला कुछ समझ में नहीं ग्राता. इन स्थलों में राम, कृष्ण, शिव ग्रादि की प्रशंसा, स्तुति ग्रादि हैं. शायद इस से तुलसी का यह तात्पर्य रहा है कि वेदादि यह स्वीकार करते हैं कि इस का वर्णन हम नहीं कर सकते या इस का ज्ञान हमें नहीं है. दोचार स्थल देखिए :

मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेतिनेति कह वेद,
कृपासिंधु, सोइ कपिन्ह सन करत ग्रनेक विनोद.
—रामचरित मानस, 585

रामस्वरूप तुम्हार वचन ग्रगोचर बुद्धि पर,
ग्रविगत ग्रकथ ग्रपार नेतिनेति नित निगम कह.—रामचरित मानस, 302

सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कह श्रुति गावहीं.

—रामचरित मानस, 45

किन्हीं शब्दों में यह नेति वाली विचारधारा तुलसीदास ने हमारे मत से मिलतीजुलती ही प्रकट की है. जब वेदों में राम आदि कथा है ही नहीं तो वेद बेचारे उन के वर्णन में मजबूरी दिखाने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते हैं?

पर तुलसी ने भी कच्ची गोलियां नहीं खेली थीं, उन्होंने वेदों की इस नेति वाली कमी को पूरा करने के लिए उन्हें साकार रूप में कष्ट दिया है. वेदों ने तीन स्थलों पर साकार रूप में मनुष्य बन कर राम की प्रार्थना की है :

भिन्नभिन्न अस्तुति करि गए सुर निजनिज धाम,
वंदी भेष वेद तब आए जहं श्रीराम.

—रामचरित मानस, 60

देवताओं की स्तुति से काम नहीं चला तो वेद स्वयं वंदी (भाट) का वेश धारण कर के आए और स्तुति कर के चले गए :

सब के देखत वेदन्ह बिनती कीन्ह उदार,
अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार.

—रामचरित मानस, 60

सीता और राम का विवाह भी साधारण ब्राह्मणों ने नहीं पढ़ा था, ब्राह्मणों के भेष में वेदों को आना पड़ा था :

होम समय तनु धरि अतलु अति सुख आहुति लेहिं
विप्र भेष धरि वेद सब कहि विवाह विधि देहिं.

—रामचरित मानस, 21

अब तक हम ने तुलसी साहित्य के विषय में जो आंकड़े गिनाए हैं, उन की सूची इस प्रकार है :

विषय	वेद	आगमनिगम	श्रुति	योग
उच्चारण	26	2	2	30
औचित्य की संभावना	47	14	18	79
नं० 2 में विवादास्पद	11	1	—	12
वेदों का पुरुषों के समान वर्णन	13	10	7	30
अशुद्ध एवं आपत्तिजनक प्रयोग	78	17	48	143
लोक के साथ	23	—	—	23
पुराण के साथ	51	17	18	86
संस्कार के समय	17	1	1	19
नेति	3	7	1	11
नाम से मत कथन	8	2	4	14

इन का सर्वयोग इसलिए नहीं किया गया है कि एक स्थल कहींकहीं एकाधिक विषय से संबद्ध है.

पहले दिल्ली के एक मशहूर दवाखाने की शरबत की बोतलों पर एक तालिका लगी रहती थी जिस में यह निर्देश था कि इस में विभिन्न विटामिनों की मात्रा कितनी है? किसी राजकीय अधिकारी ने उस की वैज्ञानिक जांच कराई तो वह सब असत्य निकला. आजकल लोग वस्तुएं नहीं विटामिन खाना अधिक पसंद करते हैं, विशेष कर पढ़ेलिखों पर विटामिन का जादू एकदम प्रभाव डालता है. इसी लिए शर्बत बनाने वालों ने विटामिन की शरण ली. तुलसीदास ने भी वेद एवं उस के पर्यायवाची शब्दों की पुकार इसी लिए मचाई है कि उस समय भारतीय जनता वेदों से अनभिज्ञ होने पर भी बहुत श्रद्धालु थी.

हमारा निवेदन केवल इतना है कि तुलसी बाबा ने किसी बात को वेद सम्मत बताने से पहले उस स्थल को वेद में ढूंढ़ा नहीं था. जो बात उन के मन को अच्छी लगी उसे उन्होंने वेदादि में वर्णित कह डाला है. वेद, पुराण आदि तुलसी बाबा के तकिया कलाम बने हुए थे.

वेद, पुराण, शेष, शारदा, शंकर, संत आदि को उन्होंने इस प्रकार एक डंडे से हांका है. इस प्रसंग में हमें अपने बड़े भाई साहब की याद बरबस आ जाती है. हमारे य बड़े भाई प्रेमचंद के बड़े भाई साहब से कम नहीं हैं. वह पढ़ने के नाम पर प्राइमरी स्कूल से ही लौट आए हैं. उन्हें न जाने यह कैसे विश्वास हो गया है कि आजकल जो भी नवीन आविष्कार होते हैं वे सब सिविक्स और साइंस द्वारा किए जाते हैं.

हम ने कई बार समझाने का प्रयत्न किया कि सिविक्स और साइंस दोनों सर्वथा भिन्न हैं पर उन्होंने नहीं सुना.

पुराण आदि के साथ वेदों को कष्ट देने में तुलसी बाबा हमारे बड़े भाई साहब से भी आगे थे. इतना विवेचन* कर के संभवतः अब हम साधिकार कह सकते हैं कि तुलसी ने वेदों का अध्ययन नहीं किया था. उन की वेदों के प्रति श्रद्धा अवश्य थी. तुलसी साहित्य में जो बातें वेदानुकूल हैं, वे उसी प्रकार साधारण ज्ञान से संबंधित हैं जैसे बिजली वाले घर में लोग फ्यूज जोड़ना जान जाते हैं.

*रामचरित मानस की पृष्ठ संख्याएं गीता प्रेस, गोरखपुर के गुटके से तथा अन्य ग्रंथों की पृष्ठ संख्याएं नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खंड के अनुसार दी गई हैं.

तुलसी के आंकड़े

तुलसीकृत रामचरितमानस को जो पंचम वेद मानते हैं, उन श्रद्धालुओं की बात तो अलग है, हां जिन्होंने अर्थ समझते हुए या साहित्य की दृष्टि से उसे देखा है, उन्हें दो बातें अवश्य खटकी होंगी. एक तो तुलसी की लंबीचौड़ी आंकड़ेबाजी और दूसरी थोड़ीथोड़ी देर बाद आकाश से होने वाली पुष्प वर्षा. पूरे रामचरितमानस में देवताओं ने लगभग 60 बार पुष्प वर्षा की है. गीता प्रेस से प्रकाशित मानस मूल गुटका की पृष्ठ संख्या 680 है. इस प्रकार औसतन प्रति दस पृष्ठों में पुष्प वर्षा होती दीख जाती है. लगता है, देवता फूलों से झोली भरे इसी काम के लिए बैठे रहते होंगे. और कहां से आते होंगे इतने फूल!

तुलसी की संख्याओं के सामने तो भारत सरकार की पंचवर्षीय योजनाओं के आंकड़े फीके पड़ जाते हैं. यदि रामचरितमानस की किसी प्रति में सब संख्याएं मोटे टाइप में प्रकाशित की जाएं, तो उन से भिन्नभिन्न देशों की जनसंख्या का भ्रम हो सकता है. तुलसी ने सौ से नीचे की संख्या को दोचार बार ही याद किया होगा. उन की सब से प्रिय संख्या थी कोटि (करोड़), जिस का प्रयोग उन्होंने अपने साहित्य में 231 बार किया है. नीचे की सारिणी से उन की संख्याओं की जानकारी प्राप्त हो सकती है:

रचना	कोटि	शत	सहस्त्र	योग
विनय पत्रिका	38	4	3	45
गीतावली	27	4	1	32
कवितावली	20	2	0	22
दोहावली	3	1	2	6
पार्वती मंगल	5	1	0	6
जानकी मंगल	1	1	0	2

रचना	कोटि	शत	सहस्त्र	योग
रामाज्ञा प्रश्नावली	2	0	1	3
कृष्ण गीतावली	3	0	0	3
रामलला नहछू	3	0	0	3
वैराग्यसंदीपिनी	3	0	0	3
रामचरितमानस	125	57	26	208
संपूर्ण साहित्य	231	70	33	334

ऊपर की सारिणी इस बात की साक्षी है कि तुलसी ने सौ या इस से अधिक संख्या 334 बार प्रयुक्त की है, जिस में 231 बार कोटि शब्द आया है. कोटि कह देना तुलसी के लिए साधारण बात थी. तुलसी को जहां भी सौंदर्य की बात कहनी पड़ी है, उन्होंने कामदेव को याद किया है और एक भी स्थल ऐसा नहीं है, जहां किसी को कामदेव से करोड़ (कोटि) गुना सुंदर न बताया हो. हां, कई स्थलों पर कोटि को शत और सहस्त्र से गुणा अवश्य कर दिया गया है. कोटि के साथ काम को तुलसी ने अपने पूरे साहित्य में 29 बार उद्धृत किया है, जिस में छः बार कोटि को शत या सहस्त्र से गुणा किया गया है—डारों वारि वारि अंगन पैं कोटि कोटि शतमार.

नारी सौंदर्य के लिए रति का केवल दो बार स्मरण हुआ है. एक बार अकेली और दूसरी बार अपने पति के साथ.

रूप रासि बिधि नारि संवारी, रति सत कोटि तासु बलिहारी.

—मानस: 424.

सुंदरता की उपमा का विषय तो खैर निराकार से संबंधित है, जो चाहे कहो, पर जहां कोई साकार वर्णन हो, वहां ये लंबीचौड़ी संख्याएं बुरी तरह अखरती हैं. सीता स्वयंवर वाले धनुष को दस हजार राजाओं ने एक बार ही उठाना चाहा—न जाने कितने मील लंबा था वह धनुष!

भूप सहस दस एकहिं बारा, लगे उठावन टरहि न टारा.

—मानस: 172.

राम विवह के समय भिखारियों को भीख दी गई, तब भी करोड़ों तरह सेः

जाचक लिए हंकारि दीन्ह दच्छिना कोटि विधि. —मानस: 195.

मंथरा दासी ने कैकयी को राम के विरुद्ध भड़काने के लिए करोड़ों कुटिलपन रचे तथा सपत्नियों की सैंकड़ों कथाएं सुनाईं:

रचिपचि कोटिन कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु,
कहिसि कथा सत सवतिकै जेहि विधि बाढ़ विरोधु.

—मानस: 246.

ऊपर के सब काम होने में एक दिन से भी कम समय लगा. न मालूम कितना बड़ा होता था उस समय का दिन! फिर वह मंथरा कितनी शक्तिशाली रही

होगी, जो एक साथ करोड़ों कुटिलपन रचने और सैकड़ों कथाएं सुनाने में थकी नहीं.

राजा दशरथ ने कैकयी से कहा तो कोटि विधि और अवधवासियों ने कैकयी की कुचाल पर गालियां दी तो करोड़ों:

परेउ राउ कहि कोटि विधि, काहे करसि निदान.

—मानस: 256.

देहिं कुचालिहिं कोटिक गारी, ऐहि विधि विलपहिं पुर नर नारी.

—मानस:263.

राम ने पिता के चरण पकड़ कर करोड़ बार नमस्कार किया. (बेचारे पिता के तो पैर भी दुख गए होंगे?)

पितु पद गहि कहि कोटि नति विनय करिय कर जोरि.

—मानस: 286.

पिता को कोटि नमस्कार करने और सीता को करोड़ों शिक्षाएं देने में राम को कुछ-ही मिनट लगे थे, क्योंकि वे शाम तक शृंगवेरपुर पहुंच गए थे. इतना ही नहीं, सुग्रीव ने सीता की खोज के लिए जो बंदर भेजे वे करोड़ थे और लंका दुर्ग की रक्षा करने वाले वीरों की संख्या भी करोड़ों में थी:

सो सीताकर खोज कराइहि जहं तहं मरकट कोटि पठाइहि.

—मानस: 448.

करि जतन भट कोटिन विकट तन नगर चहुं दिसि रच्छहीं.

—मानस: 470.

कुंभकर्ण के जागते ही रावण ने शराब के एक करोड़ घड़े तथा अनेक भैंसे मंगवाए.

रावण मांगेहु कोटि घट मद अरु महिष अनेक.

—मानस: 545.

रावण ने युद्ध में राम के ऊपर करोड़ों बाण चलाए:

कोटिन आयुध रावण मारे, तिल प्रवान करि काटि निवारे.

—मानस: 557.

इस प्रकार तुलसी ने बिना इस बात का ध्यान किए कि इस स्थल पर करोड़ संख्या उपयुक्त है या नहीं, उस का खुल कर प्रयोग कर दिया है. लगता है, यह उन का तकियाकलाम था.

नीचे की संख्या पर तो विश्वास करना एकदम असंभव ही है. मनु और शतरूपा पुत्र प्राप्ति के लिए 23 हजार वर्ष तपस्या करते रहे:

एहि विधि बीते बरष षट, सहस बारि अहार,
संवत सप्त सहस्त्र पुनि रहे समीर अधार.
बरस सहस दस त्यागेउ सोऊ,ठाढ़े रहे एक पद दोऊ.

—मानस: 116.

कुमारी पार्वती ने इकतालीस सौ वर्ष से कुछ अधिक समय तपस्या की, तब हीं बेचारी के हाथ पीले हो पाए.

संवत सहस मूल फल खाए, सागु खाय सत बरस गंवाए.
कछु दिन भोजन बारि बतासा, किए कठिन कछु दिन उपवासा.
बेल पाति महि परइ सुखाई, तीनि सहस संवत सो खाई.
पुनि परिहरे सुखाने परना, उमहि नाम तब भयेहु अपरना.

—मानस: 77

कपट मुनि ने सत्यकेतु के पुत्र प्रतापभानु को एक वर्ष में लगभग तीन करोड़ 65 लाख ब्राह्मण परिवारों को भोजन कराने की सलाह दी. फिर भी बहुत से रिवार शेष रह गए.

"जाय उपाय रचहु नृप एहू, संवत भरि संकल्प करेहू.
नित नूतन द्विज सहस सत, बरेहु सहित परिवार.
मैं तुम्हरे संकल्प लगि, दिनहिं करबि जेवनार.

—मानस: 128

उस समय इतनी जनसंख्या तो संपूर्ण भारत की भी नहीं रही होगी.

स्वयंवर वाले धनुष को तो दस हजार राजाओं ने ही एक बार उठाया ा, पर युद्ध में घायल लक्ष्मण को उठाने के लिए करोड़ों योद्धा लग पड़े. धनुष के बारे में तो मान सकते हैं कि वह बहुत लंबा बना दिया गया होगा, पर लक्ष्मण की लंबाई का क्या हिसाब लगाएं, जिन का शरीर करोड़ों हाथों का आधार न सका? काश, तुलसी ने लक्ष्मण के शरीर की लंबाईचौड़ाई भी लिखी होती. मेरा अनुमान है कि साधारण मनुष्य के शरीर पर करोड़ों चीटियां भी नहीं आ सकतीं.

मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाया,
जगदाधार शेष किमि उठै, चले खिसियाय. —मानस: 539

राम की सेना में जितने यूथप (टोली नायक) थे, उन की संख्या आज के विश्व की जनसंख्या से कई गुनी थी, सेना की तो बात ही क्या! 88 पद्म नायकों को खड़े होने के लिए लंका तो क्या, सारा भारत कम पड़ेगा. फिर सेना ने छोटे से मैदान में युद्ध कैसे कर लिया.

अस मैं सुना भुवन दसकंधर, पदम अठासी जूथप बंदर.

—मानस: 498

गणना के साथसाथ नाप के विषय में भी तुलसी ने जो मुंह में आया, कह दिया है. तुलसी ने दंडकारण्य से दक्षिणी सागर तट को सौ योजन (400 कोस या 630 मील के लगभग) माना है, जिसे आज का भूगोल स्वीकार नहीं करता.

सत जोजन आयहु छन मांहीं, तिन सौं बयरु किए भल नाहीं.

—मानस: 426

जो नाघइ सत जोजन सागर, करइ सो राम काज मति आगर.

—मानस : 436

लंका और रामेश्वर के बीच में सागर की लंबाई को भी तुलसी ने सौ योजन ही बताया है—आज लंका और भारत के बीच जो दूरी है, उस से अधिक दूरी होने की इतिहास कभी साक्षी नहीं देता. इस के विपरीत लोगों का मत है कि किसी समय लंका और आस्ट्रेलिया भारत से मिले हुए थे. फिर नानापुराणनिगमागमसम्मत कहने वाले तुलसी बाबा का आधार न जाने क्या रहा होगा? एक और दृष्टि से विचार करें तब भी लगता है तुलसी आंकड़ों के मामले में सोचविचार से काम नहीं लेते थे. सीता की खोज कर के हनुमान जा रहे थे कि मार्ग में उन्हें सुरसा मिल गई, जिस ने हनुमान को निगलने के लिए अपना मुंह सौ योजन फैला लिया.

सत जोजन तेहि आनन कीन्हा, अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा.

—मानस : 469

रामेश्वर से लंका तक उस का मुंह ही था, फिर अन्य शरीर तो दोनों के बीच में फंस कर चूरचूर हो गया होगा? यदि इस बात को आकाश में होने वाली बता कर पीछा छुड़ा लिया जाए, तब भी अगले प्रसंग का क्या समाधान है, जब राम ने पुल पर हो कर सागर पार किया, तो समुद्री जीव उन के दर्शन करने निकल पड़े. उन में बहुत से सौ योजन लंबे थे. कुछ ऐसे थे, जो उन्हें खा सकते थे और खाने वालों को भक्षण करने वालों की भी कमी नहीं थी.

मकर नक्र नाना झषि व्याला, सत योजन तन परम बिसाला,
अइसेउ एक तिन्हहिं जे खाहीं, एकन्ह के डर तेपि डराहिं.

—मानस: 508

लंका और रामेश्वर के तटों को जोड़ने के लिए तो ऐसा एक ही जीव पर्याप्त था. राम ने व्यर्थ पुल बनवाने की परेशानी उठाई. सागर के किनारे खड़े हो जाते और दर्शनार्थी जलजीवों की भीड़ लग जाती. किनारे पर खड़े रहते और सारी सेना पार उतर जाती. वास्तविकता की भूमि पर उतरें तो बुद्धि चकरा जाती है कि सौ योजन के सागर में सौ योजन लंबे अनेक जीवजंतु, उन्हें खाने वाले और खाने वाले को भी खाने वाले जंतु बेचारे कैसे समाए होंगे? यदि तुलसी बाबा पूर्वापर प्रसंग का कुछ भी ध्यान रखते तो ऐसी परस्पर विरोधी बातें नहीं लिखते.

तुलसी ने 'रामचरित मानस' समाप्त करतेकरते दो स्थलों पर संख्याओं का खुल कर प्रयोग किया है:

नर सहस्त्र, महं सुनहु पुरारी, कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी.
धर्मसील कोटिक महं कोई, विषय विमुख विराग रत होई.
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई, सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई.
ज्ञानवंत कोटिक महं कोऊ, जीवन मुक्त सुकृत जग सोऊ.

तिन्ह सहस्त्र महं सब सुखखानी, दुर्लभ ब्रह्म लीन विज्ञानी.

—मानस : 625

ऊपर की संख्याओं का गुणा किया जाए, तो आज विश्व की बढ़ती जनसंख्या में भी ब्रह्मलीनों की संख्या दशमलव एक नहीं होगी.

दूसरा स्थल वास्तव में कमाल का है, जहां लगातार तेईस बार तुलसी बाबा ने कोटि शब्द प्रयोग किया है:

रामु काम सत कोटि सुभगतन, दुर्गा कोटि अमित अरि मरदन,
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा, नभ सत कोटि अमित अवकासा.
मरुत कोटि सत बिपुल बल विसत कोटि प्रकास,
ससि सतकोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास.
काल कोटि सम सरित अति दुस्तर दुर्ग दरंत,
धूमकेतु सतकोटि सम दुराधरष भगवंत.
प्रभु अगाध सत कोटि पताला, समन कोटि सम सरित कराला.
तीरथ अमित कोटि सम पावन, नाम अखिल अघपूग नसावन.
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा, सिंधु कोटि सतसम गंभीरा.
कामधेनु सतकोटि समाना, सकल काम दायक भगवाना.
सारद कोटि अमित चतुराई, विधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई.
बिस्नु कोटि सम पालनकर्त्ता, रुद्रकोटि सत सम संहर्त्ता.
धनद कोटि सत सम धनवाना, माया कोटि प्रपंच निधाना.
भार धरन सतकोटि अहीसा, निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा.
निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै,
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै.

—मानस : 647-48.

लगता है तुलसी ने मानस में एक निश्चित संख्या में कोटि शब्द का प्रयोग करने का संकल्प लिया था, अंत में जितने कोटि शब्द रह गए, वह एक स्थान पर रख दिए.

तुलसी के आंकड़ों के लिए तो एक थीसिस अपेक्षित है. तुलसी के आंकड़े पढ़ने के बाद यही धारणा बनती है कि या तो मानस धार्मिक पुस्तक नहीं है या धर्म के मामले में बेसिरपैर की हांकना, जिसे खरे शब्दों में असत्य भाषण कह सकते हैं, कोई अपराध नहीं है. हिंदी के अन्य काव्यों में कल्पना की उड़ान चाहे कैसी भी हो, पर उन में ऐसी आंकड़ेबाजी नहीं मिलेगी.

'रामचरितमानस' की साहित्यिक महत्ता चाहे कुछ भी हो, पर मूलतः यह है धार्मिक ग्रंथ ही. तुलसी ने यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि 'रामचरितमानस'

टिप्पणी : रामचरित मानस की पृष्ठ संख्या गीता प्रेस, गोरखपुर, के मूल गुटका और गीतावली की पृष्ठ संख्या नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, से प्रकाशित तुलसी ग्रंथावली (खंड दो) के आधार पर है.

का तत्त्व राम नाम या राम कथा ही है :

एहि महं रघुपति नाम उदारा, अति पावन पुरान स्रुति सारा.
—बाल कांड, पृष्ठ 41

जदपि कवित रस एकउ नाहीं, राम प्रताप प्रकट एहि पाहीं.
—बाल कांड, पृष्ठ 42

तुलसी ने अपनी कविता को साधारण कवियों की कविता से भिन्न माना है. साधारण (साहित्यिक) कवि जहां देवी सरस्वती को दुखी कर देते हैं वहां तुलसी को विश्वास है कि वह अपनी कविता द्वारा उन्हें 'रामचरित सर' में स्नान करा कर गतश्रम कर देंगे:

भगति हेतु विधि भवन बिहाई, सुमिरत सारद आवति धाई.
रामचरित सर बिनु अन्हवाएं, सो श्रम जाइ न कोटि उपाएं
कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना, सिर धुनि गिरा लागि पछिताना.
—बाल कांड, पृष्ठ 43

इस का तात्पर्य यही हुआ कि 'मानस' साहित्यिक रचना नहीं, धार्मिक कृति है. तुलसी ने 'मानस' के अंत में जो इस का माहात्म्य लिखा है, वह भी इसे धार्मिक रचना ही सिद्ध करता है.

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदम्,
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमांबुपूरं शुभम्.
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहंति ये,
ते संसार पतंगघोर किरणैर्दह्यंति नो मानवा :
—उत्तर कांड, पृष्ठ 1002

यह 'रामचरितमानस' पुण्यरूप, पापों का हरने वाला, सदा कल्याणकारी विज्ञान और भक्ति को देने वाला, माया, मोह और मल का नाश करने वाला, परम निर्मल प्रेम रूपी जल से परिपूर्ण तथा मंगलमय है. जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस मानस सरोवर में गोता लगाते हैं, वे संसार रूपी सूर्य की अति प्रचंड किरणों से नहीं जलते हैं.

तुलसी का 'मानस' जब धार्मिक पुस्तक है तो उस में उसी प्रकार की ऊलजलूल, बेसिरपैर की असंभव और अविश्वसनीय बातें होनी चाहिए जो दूसरे धार्मिक ग्रंथों में होती हैं. जब तक लोगों को लंबीचौड़ी बातें न बताई जाएं, तब तक उन में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती. सभी धार्मिक ग्रंथ रचयिता अपनी रचनाओं के प्रचार के लिए उन के पढ़ने मात्र से अनेक फलों का वर्णन करते हैं. उक्त चौपाई में तो तुलसी ने ऐसा किया ही है, 'मानस' के एक स्तोत्र के पाठमात्र से भी बड़ा लाभ बताया है :

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरितोषये,
ये पठंति नरा भक्त्या तेषां शंभु: प्रसीदति.
—उत्तर कांड, पृष्ठ 996

(भगवान रुद्र की स्तुति का यह अष्टक शंकरजी की प्रसन्नता के लिए ब्राह्मण द्वारा कहा गया. जो मनुष्य इसे भक्तिपूर्वक पढ़ते हैं उन पर भगवान शंकर प्रसन्न होते हैं.)

भक्ति में तन्मय हो कर लोग अनेक बार 'रामचरितमानस' पढ़ते और सुनते हैं. बुद्धि को स्वतंत्र रख कर यदि वे एक बार भी 'मानस' का अध्ययन करते तो उन के सामने ऐसे अनेक प्रश्न खड़े हो जाते जिन्हें लांघ कर आगे बढ़ना असंभव हो जाता. नीचे हम उदाहरणस्वरूप कुछ प्रसंगों की चर्चा कर रहे हैं.

जब से मनुष्य ने होश संभाला है तब से इतिहास में ऐसे एक भी राजा का वर्णन नहीं मिला जिस ने सारे संसार पर एकछत्र राज्य किया हो. अब तक संसार में अनेक भाग इतने अविकसित हैं जहां कोई राज्य व्यवस्था संभव नहीं है. बेचारे सिकंदर ने विश्वविजयी होने का सपना देखा था, पर एशिया महाद्वीप भी नहीं जीत पाया. इतिहास की साक्षी के विरुद्ध तुलसी ने 'मानस' में इतना बड़ा झूठ बोला है. उन्हें एक ऐसे राजा का नाम मालूम था, जिस ने सारे संसार के राजाओं को जीत कर अपने अधीन कर लिया था:

जब प्रताप रबि भयेउ नृप फिरी दुहाई देस,
प्रजापाल अति बेदबिधि कतहूं नहीं अघ लेस.
नृप हितकारक सचिव सियाना, नामधरम रचि सुक्र समाना.
सचिव सयान बंध बलबीरा, आपु प्रतापपुंज रनधीरा,
विजय हेतु कठकई बनाई, सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई.
जहं तहं परीं अनेक लराईं, जीते सकल भूप बरियाई.
सप्त दीप भुजबल बस कीन्हें, लैलै दंड छांड़ि नृप दीन्हें.
स्वबस बिस्व करि बाहुबल निज पुर कीन्ह प्रबेसु..

—बाल कांड, पृष्ठ 162-63

राजाओं से संबंधित अनेक कहानियों में बड़ेबड़े कमाल के रसोइयों की चर्चा आप ने सुनी होगी. क्या आप ने कोई ऐसा रसोइया भी सुना है जो अकेला लाखों आदमियों के लिए भोजन बना सकता हो? आदमी भी साधारण नहीं ब्राह्मण, जो भोजन करने में प्रसिद्ध होते हैं.

तुलसी बाबा के शब्दों में उस का परिचय देखिए:

जौं नरेस मैं करउं रसोई तुम्ह परसउ मोहि जान न कोई.
अन्न सो जोइजोइ भोजन करई, सोइसोइ तब आयसु अनुसरई.
पुनि तिन्ह के गृह जेवई जोऊ, तव बस होइ भूप सुन सोऊ.
जाइ उपाय रचहु नृप एहू, संवत भरि संकलप करेहू.
नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार,
मैं तुम्हरे संकलप लगि दिनहिं करबि जेवनार.

—बाल कांड, पृष्ठ 173

एक लाख ब्राह्मण परिवारों के लिए एक वर्ष तक प्रति दिन अकेले भोजन बनाना कैसे संभव है? यह शंका राजा को होनी स्वाभाविक थी. दिन भर में इतने व्यक्तियों का सामान चूल्हे पर रखना और उतारना भी संभव नहीं है. वह रसोइया किसी दूसरे की सहायता लेता हो, ऐसी बात भी नहीं थी. उस कपटी मुनि ने अपने हाथ के बने भोजन में ही ब्राह्मणों को वश में करने का प्रभाव बताया था:

सुनु नृप विविध जतन जग मांहीं, कष्ट साध्य पुनि होंहि कि नाहीं.
अहइ एक अति सुगम उपाई, तहां परंतु एक कठिनाई.
मम आधीन जुगुति नृप सोई, मोर जाब तव नगर न होई.
एहि विधि भूप कष्ट अति थोरे, होइ हैं सकल विप्र बस तोरे.

—बाल कांड, पृष्ठ 173-74

साधु ने अपनेआप को सर्व समर्थ बताया था, इसलिए उस के विषय में राजा ने विश्वास कर लिया हो, तब भी कोई बात नहीं है. पर राजा अपने विषय में तो कह सकता था, "महाराज, मैं अकेला एक लाख ब्राह्मण परिवारों को कैसे भोजन परोस सकूंगा?" भोजन परोसना तो अलग रहा, इतने आदमियों को पत्तलें या लगीलगाई थालियां परोसने में ही सारे दिन से अधिक समय लगेगा.

साधारणतः एक लाख परिवारों की पंक्ति में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पैदल चलना भी एक दिन का सरल काम नहीं है और वह भी राजा के लिए. पर इस तथ्य की ओर ध्यान कौन देता? तुलसी बाबा को तो ऐसा आकर्षक झूठ बोलना था जो श्रोताओं और पाठकों को विभोर कर दे.

रामादि बालकों के जन्म से राजा दशरथ को अत्यंत प्रसन्नता हुई. होनी स्वाभाविक भी थी. कहां तो दशरथजी की तीनों रानियों के चुहिया का बच्चा भी नहीं हुआ और कहां एक साथ चार संतानें, और वे भी लड़के. राजा के साथ ही प्रजा को भी प्रसन्न होना पड़ा. प्रसन्नता में लोग दोनों हाथों से धन लुटाते हैं. दशरथ ने पहले तो ब्राह्मणों को जी खोल कर दान दिया:

नंदी मुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह,
हाटक, धेनु, वसन, मनि, नृप विप्रन्ह कहं दीन्ह.

राजा की प्रसन्नता यहीं तक सीमित नहीं रही. प्रजा ने भी प्रसन्नता का प्रदर्शन किया:

ध्वज पताक तोरन पुर छावा, कहि न जाहि जेहि भांति बनावा.
सुमन वृष्टि अकास ते होई, ब्रह्मानंद मगन सब कोई.
वृंदवृंद मिलि चलीं लोगाई, सहज सिंगार किए उठि धाई,
कनक कलस मंगल भरि धारा, गावत पैठहिं भूप दुआरा
करि आरति नेवछावरि करहीं, बारबार सिसु चरनन्हि परहीं.
मागध सूत बंदि गन गायक, पावन गुन गावहिं रघुनायक.

सर्वसु दान दीन्ह सब काहू, जिन्ह पावा राखा नहिं ताहू.
मृगमद चंदन कुंकुम कीचा, मची सकल बीथिन्ह बिचवीचा.
—बाल कांड, पृष्ठ 194-95

तुलसी बाबा तो भक्ति के आवेश में लिखते चले गए और धर्मप्राण पाठक भी पढ़ते चलते हैं, पर विचारशील पाठक बेचारा क्या करे? 'सर्वसु दान दीन्ह सब काहूं' इस का सीधासादा यही अर्थ है कि सभी अयोध्यावासियों ने अपना सर्वस्व दान कर दिया. क्या मैं पूछ सकता हूं कि यह दान किस ने लिया? सभी लोग अपना सर्वस्व लुटा रहे थे तो दान ले कौन रहा था? अगली पंक्ति 'जिन्ह पावा राखा नहिं ताहू' तो स्थिति को और भी बिगाड़ देती है. दान लेने वाले ही पैदा नहीं हो रहे थे. फिर ले कर जिन्हें दिया गया, उन की खोज कहां की जाए!

अधिकतर टीकाकार उक्त पंक्ति का अर्थ इस प्रकार लगाते हैं—राजा दशरथ ने किसी को अपना सर्वस्व दान कर दिया. जिस ने पाया उस ने भी नहीं रखा अर्थात दान कर दिया. पहले तो यहां दशरथ को खींच कर लाना संभव नहीं है. दूसरे, दशरथजी के पास कितने सर्वस्व थे जो सब को एकएक देते रहे? क्या उन के सर्वस्व में राज्य नहीं आता था? उन लोगों ने वह दान किसे दिया? क्योंकि 'सब काहू' शब्द की सीमा से बाहर कोई नहीं रहना चाहिए. 'दशरथ ने अपना सर्वस्व सब लोगों को दान दिया,' यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता क्योंकि 'सब काहू' एवं 'ताहू' शब्द एकबचन है. दान ले कर देने की समस्या तो ज्यों की त्यों है ही.

अयोध्या में दशरथपुत्रों का जन्मउत्सव देख कर सूर्य भगवान चलना भूल गए. सूर्य के चलने से ही दिन चलता है. सूर्य भगवान एक मास तक रुके रहे. सूर्य का रुकना ठीक था—दशरथ सूर्यवंशी जो थे! संतान न होने से वंश समाप्त ही हो रहा था. अपने वंश की प्रसन्नता मेंवह सीधे सम्मिलित न हो सके तो दूर से देख भी नहीं सकते थे? दूसरे, अयोध्या की शोभा भी कुछ कम आकर्षक नहीं थी:

अवधपुरी सोहइ एहि भांती, प्रभुहि मिलन आई जनु राती.
देखि भानु जनु मन सकुचानी, तदपि बनी संध्या अनुमानी.
अगर धूप वह जनु अंधियारी, उड़इ अबीर मनहुं अरुनारी.
मंदिर मनि समूह जनु तारा, नृप गृह कलस सो इंदु उदारा.
भवन वेद धुनि अति मृदु बानी, जनु खग मुखर समय अनुसानी.
कौतुक देखि पतंग भुलाना, एक मास तेइं जात न जाना.
मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ,
रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन विधि होइ.
यह रहस्य काहू नहिं जाना, दिनमनि चले करत गुनगाना.
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा, चले भवन बरनत निज भागा.
—बाल कांड, पृष्ठ 195-96

अच्छा हुआ जो उस जमाने में घड़ियां नहीं थीं. यदि आजकल ऐसा हो जाए तो लोग 'बोर' होने की सीमा पार कर लें. अयोध्या में उपस्थित लोग तो उत्सव में मग्न रहे, पर अयोध्या से बाहर के लोगों ने इतना बड़ा दिन कैसे बिताया होगा? यह कल्पना इस मान्यता पर आधारित है कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है. सूर्य उदय होने से ही दिन निकलता है, इसी लिए सूर्य का नाम 'दिनकर' है. सूर्य जब तक छिपे नहीं, तब तक रात कैसे हो? आज जब कि पुरानी मान्यता गलत सिद्ध हो चुकी है और धरती के घूमने से दिन-रात होने का सिद्धांत सर्वमान्य हो चुका है, तब इस प्रसंग को कैसे युक्तियुक्त ठहराया जा सकता है?

विश्वामित्रजी अपने यज्ञ की रक्षा के लिए रामलक्ष्मण को ले आए. यज्ञ आरंभ करते ही मारीच सहायकों सहित विघ्न डालने आया. राम ने बिना फल का बाण मार कर उसे सौ योजन दूर सागर पार फेंक दियाः

आयुध सर्व समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि,
कंदमूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि.
प्रात कहा मुनि सन रघुराई, निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई.
होम करन लागे मुनि भारी, आपु रहे मख कैं रखवारी.
सुनि मारीच निसाचर क्रोही, ले सहाय धावा मुनिद्रोही.
बिनु फर राम बान तेहि मारा, सत योजन गा सागर पारा.

—बाल कांड, पृष्ठ 207

राम ने ताड़का को क्यों मार डाला और मारीच को क्यों दूर फेंक दिया, इस विषय पर भी शंका हो सकती है, पर सौ योजन की दूरी तो किसी प्रकार भी समझ में आने वाली नहीं है. 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार विश्वामित्र का आश्रम बिहार में था. यहां से वह राम को ले कर जनकपुर के धनुषयज्ञ में गए थे. वहां से फेंका हुआ मारीच सागर के पार अर्थात लंका में जा कर गिरा. पर यह दूरी तो सौ योजन नहीं है. तुलसी के अनुसार सौ योजन तो भारत और लंका के बीच का समुद्र ही था.

जो लांघइ सत जोजन सागर, करइ सो राम काज मति आगर.

—किष्किंधा कांड, पृष्ठ 681

तुलसी बाबा को अपनी नाप का स्वयं ही ध्यान नहीं रहा. पहले तो 'सत जोजन गा सागर पारा' का अर्थ 'वह सौ योजन दूर सागर के तट पर गिरा' ऐसा लगाया ही नहीं जा सकता. दूसरे बिहार से रामेश्वरम वाला सागर तट सौ योजन (300 मील) से बहुत अधिक है.

दशरथ को 75 और 100 वर्ष के बीच में पुत्र जन्मे थे. उन्हे 50 वर्ष पश्चात वानप्रस्थ और 75 वर्ष पश्चात संन्यास लेना चाहिए था. पर वंश चलने के विषय में निश्चिंत हुए बिना वैराग्य कैसे लें? जब तक शरीर में दम रहा, तब तक स्वयं प्रयत्न करते रहे. शरीर शिथिल होने पर मुनियों की औषधि का सहारा

लिया. तुलसी ने चौथेपन वाली बात स्वयं स्वीकार की है:

चौथेपन पायऊं सुत चारी, विप्र वचन नहिं कहेउ विचारी.

—बाल कांड, पृष्ठ 205

75 वर्ष की अवस्था होतेहोते दशरथजी के सभी बाल सफेद हो जाने चाहिए. पर तुलसी ने उस समय दशरथ के कुछ बाल सफेद बताए हैं, जब राम के विवाह को कई वर्ष बीत गए थे. एक बार दशरथजी मुकुट ठीक करने के लिए शीशा देख रहे थे, तभी उन्हें अपने ये श्वेत केश दीखे:

राय सुभायं मुकुर कर लीन्हा, वदनु विलोकि मुकुट सम कीन्हा.
श्रवन समीप भए सित केसा, मनहुं जरठपन अस उपदेसा.
नृप जुबराज राम कहं देहू, जीवन जनमु लाहु किन लेहू.

—अयोध्या कांड, पृष्ठ 337

पता नहीं, दशरथजी कौन सा तेल लगाते थे जो उन के बाल 100 वर्ष की अवस्था में भी काले बने रहे. फिर रामलीला वाले दशरथ के सभी बाल सफेद किस आधार पर दिखाते हैं?

दशरथ के मरने पर तुरंत उन का दाह नहीं हो सका. भरत के आने तक उन का शव सुरक्षित रखना था. नाव में तेल भर कर उस में शव रखा गया.

तैल नाव भरि नृप तनु राखा, दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा.
धावहु वेगि भरत पहं जाहू, नृप सुधि कतहुं कहहु जनि काहू.

अयोध्या कांड, पृष्ठ 458

यह तो ठीक है कि उस समय के लोग शव सुरक्षित रखने का कोई वैज्ञानिक साधन नहीं जानते थे, इसलिए बेचारों ने शव को तेल में डुबाना निश्चित किया. पर क्या उस समय कोई ऐसा बरतन प्रचलित नहीं था जिस में शव डुबाने लायक तेल भरा जाता? क्या उन्हें राजा दशरथ का शव रखने को नाव ही रह गई थी?

सीता को खोजने वाले वानर निराश हो कर पछतावा कर रहे थे. उन की आवाज सुन कर संपाती गुफा से बाहर निकला और बंदरों को देख कर बोला, 'आज सब को खा जाऊंगा.' बंदर यह बात सुन कर डर गए:

हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना, नहिं जैहैं जुबराज प्रबीना.
अस कहि लवन सिंधु तट जाई, बैठे कपि सब दर्भ डसाई.
एहि विधि कथा कहत बहु भांती, गिरि कंदरा सुनी संपाती.
बाहेर होई देखि बहु कीसा, मोहि अहार दीन्ह जगदीसा.
कबहुं न मिल भरि उदर अहारा, आजु दीन्ह विधि एकहिं बारा.
डरपे गीध वचन सुनि काना, अब भा मरन सत्य हम जाना.

—किष्किंधा कांड, पृष्ठ, 678-79

गीध की बात सुन कर वानरों के डरने की बात समझ से बाहर है. वानरों को इतना भी ज्ञान नहीं था कि गीध मरे पशु को खाता है, जीवित को नहीं. ये वानर साधारण बानर नहीं थे. इन में हनुमान, अंगद, नील, नल, जांबवंत

आदि ज्ञान व बलसंपन्न वानर सम्मिलित थे. फिर गीध भी बिना पंखों का. उस के पंख तो पहले ही जल गए थे.

माना कि संपाती साधारण गीध नहीं था. पर क्या वह सब बंदरों को एक साथ खा सकता था? जो हनुमान सुरसा के सामने बत्तीस योजन के बन गए थे और सीता के सामने 'कनक भूधराकार सरीरा' हो गए थे, उन्होंने संपाती के सामने कोई कमाल दिखाने का निश्चय क्यों नहीं किया? क्या हनुमानजी का जादू औरतों के ही सामने चलता था? वायुवेग से चलने वाले वानरों का बिना पंख के गीध से डर जाना और अपना मरण निश्चित समझ लेना कम आश्चर्य की बात नहीं है.

हनुमान सौ योजन का सागर लांघने को अनेक पहाड़ों पर उचकते रहे. वह जिस पर्वत पर पैर रखते थे, वही तुरंत पाताल चला जाता था. पता नहीं, बेचारे किस प्रकार इतना लंबा कूद सके. मार्ग में मिल गई सुरसा. उस ने उन्हें खाना चाहा. वह मुंह बढ़ाने लगी और हनुमानजी भी बढ़ने लगे. उस ने अपना मुंह सौ योजन का कर लिया:

जसजस सुरसा बदन बढ़ावा, तासु दुगुन कपि रूप दिखावा.
सत जोजन तेहि आनन कीन्हा... —सुंदर कांड, पृष्ठ 687

तुलसीदासजी के ही वचनानुसार भारत और लंका के बीच का सागर सौ योजन था. इस किनारे पर हनुमानजी के साथी वानर बैठे थे और उस पार थी लंका.

सौ योजन चौड़े मुख वाली सुरसा के पैर कम से कम चार सौ योजन तो रहे ही होंगे. कहां खड़ी हुई होगी सुरसा? सौ योजन मुख बढ़ाने से पहले हनुमानजी का विस्तार हिसाब से पचास योजन होना चाहिए. वह भी कहीं खड़े हुए होंगे. इतना ही नहीं, सागर में मैनाक पर्वत भी था जिसे छू कर हनुमानजी आए थे. आगे एक छायाग्राहिणी निशाचरी भी उन की प्रतीक्षा कर रही थी.

एक निवेदन और है. क्या हनुमानजी किसी सड़क पर चल रहे थे जो सब से रुकरुक कर मुलाकात करते जाते थे? क्या छलांग लगा कर बीच हवा में रुक कर कोई काम कर सकना संभव है?

कुंभकर्ण आखिर कितना विशाल था! तुलसी बाबा ने उस का कोई नाप नहीं दिया. यदि वह देते तो सुविधा रहती. वह करोड़ों वानरों को एक बार में खा लेता था. करोड़ों को अपने शरीर से रगड़ कर समाप्त कर देता था और करोड़ों को धूल में मिला देता था.

कुंभकरन रन रंग विरुद्धा, सनमुख चला काल जनु क्रुद्धा.
कोटिकोटि कपि धरिधरि खाई,जनु टीडी दल गुहा समाई.
कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा, कोटिन्ह मींजि मिलव महि गर्दा.
—लंका कांड, पृष्ठ 800

तो कुंभकर्ण और वानरों के शरीर का अनुपात पर्वत और टिड्डी के समान

था. करोड़ों बंदर हाथों में पकड़ कर एक साथ मुंह में डालना किस प्रकार संभव हो सका, इसे तुलसी बाबा ही जानें. कुंभकर्ण मुंह फैला कर उन्हें निगल लेता होगा, पर शरीर से रगड़ कर मारने और धूल में मिलाने के लिए तो उन्हें हाथ से पकड़ना ही पड़ेगा. इसे जाने भी दें तो अगली बात एकदम लाजवाब है.

मुख नासा स्रवननि की बाटा, निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा.

तो कुंभकर्ण रीछबंदरों को बिना चबाए ही निगल लेता था. क्या इस प्रकार की क्रिया के साथ 'खाई' शब्द प्रयोग हो सकता है? उस के खाए हुए बंदर मुंह, नाक और कानों की राह निकल भागते थे. नाक से निकलना तो संभव है क्यों कि मुख और नाक का रास्ता एक होता है, पर मुख और कान की राह रीछ, बंदरों का निकलना अपनी समझ में नहीं आता. मुंह से तो वह खा ही रहा था. यदि खा चुका था तो मुंह बंद कर सकता था. क्या उस ने वानर, रीछों को बाहर निकलने देने को ही खाया था? कानों और मुंह का स्रोत एक होता है क्या? मुंह का खाया कान की राह निकल सकता है? इन बातों की ओर तुलसी बाबा का ध्यान किस लिए जाता? उन्हें तो एक अजूबा खड़ा करना था.

आप ने सिर वाले धड़ों को तो बोलते देखा या सुना होगा! आइए, बिना सिर वाले ऐसे धड़ों के विषय में पढ़िए जो हल्ला मचाते थे:

रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं. धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं.

—लंका कांड, पृष्ठ 801

पता नहीं, सिर कट जाने पर धड़ 'पकड़ो, मारो' का गाना बिना मुंह के कैसे गाते होंगे? संभव है, रावण ने या विधाता ने उन के धड़ में कोई ऐसा अतिरिक्त अंग लगा दिया हो जिस के द्वारा बोला या गाया जा सके.

रामरावण युद्ध में रावण रथ पर सवार हो कर लड़ रहा था और राम पैदल थे. यह देख कर विभीषण बड़ा दुखी हुआ. राम ने उस की बात सुन कर जो कहा, उसे तुलसी के शब्दों में ही देखिए:

रावन रथी बिरथ रघुबीरा, देखि विभीषन भयेउ अधीरा.
अधिक प्रीति मन भा संदेहा, बंदि चरन कह सहित सनेहा.
नाथ न रथ नहिं तन पदत्राना, केहि विधि जितब वीर बलवाना.
सुनहु सखा कह कृपा निधाना, जेहि जय होइ सो स्यंदन आना.
सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य सील दृढ़ धुजा पताका.
बल विवेक दम परहित घोरे, छमा कृपा समता रजु जोरे.
सखा धर्ममय अस रथ जाके, जीतन कहं न कतहुं रिपु ताके.

—लंका कांड, पृष्ठ 814-15

इस प्रकार का रथ किसी साधुसंन्यासी को तो अजातशत्रु बना सकता है, पर रणभूमि में विजय नहीं दिला सकता. पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने उक्त बात कही है तो ठीक ही होगी. राम उस रघुवंश में उत्पन्न हुए थे जो सत्य भाषण के लिए प्रसिद्ध था. यदि राम अपने बताए हुए आदर्शवादी रथ के द्वारा

ही रावण को जीत कर दिखाते तो एक बात थी. पर कुछ ही देर बाद वह इंद्र द्वारा भेजे हुए रथ पर सहर्ष चढ़ गए.

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा, उपजा उर अति क्षोभ विसेषा.
सुरपति निज रथ तुरत पठावा, हरष सहित मातलि लै आवा.
तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा, हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा.

—लंका कांड, पृष्ठ 825

रावण के शीश और मुख राम ने बारबार काटे, पर वह दोबारातिबारा निकल आए. राम ने विभीषण की ओर देखा तो उस ने इस का कारण बता दिया. फिर राम को रावण का वध करने में देर नहीं लगी:

काटत बढ़हिं सीस अधिकाई, जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई.
मरइ न रिपु श्रम भयउ विशेषा, राम विभीषन तन तव देखा.
नाभिकुंड पियूष बस याकें, नाथ जियत रावन बलु ताकें.
सुनत विभीषन बचन कृपाला, हरषि गहे कर बान कराला.
खैंचि सरासन श्रवन लगि, छाड़े सर इकतीस.
रघुनायक सायक चले मानहुं काल फणीस.
सायक एक नाभि सर सोषा, अपर लगे भुज सिर करि रोषा.
लै सिर बाहु चले नाराचा, सिरभुजहीन रुंड महि नाचा.

—लंका कांड, पृष्ठ 841-42

तो रावण की नाभि कोई खिड़की या शीशी थी जिस में अमृत कंगारू के बच्चे के समान रखा था. अमृत पीने वाला व्यक्ति मरता नहीं है. रावण ने अमृत न पी कर नाभि में क्यों रख लिया था? फिर क्या नाभि में रखा अमृत अमर नहीं बना सकता? अमृत भी क्या कोई 'सप्लाई स्टेशन' था जिस के नष्ट होते ही बिजली से होने वाले सब काम बंद हो गए? अच्छा होता कि तुलसी बाबा रावण की नाभि में अमृत की कल्पना न करते. पर करते कैसे नहीं? बिना इस के विचित्रता कैसे उत्पन्न होती?

ऊपर बिना सिर के धड़ द्वारा बोलने वाले राक्षसों वाली बात विस्तार से कह चुके हैं. रावण राक्षसों का राजा था, तो फिर उस का धड़ ही बिना बोले क्यों रहता? राम के बाणों ने रावण के सिर और हाथ तो मंदोदरी के महल में पहुंचा दिए थे. रणभूमि में धड़ गरज उठा :

लै सिर बाहु चले नाराचा, सिर भुज हीन रुंड महि नाचा.
धरनि धंसइ धर धाव प्रचंडा, तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा.
गर्जेउ मरत घोर रव भारी, कहां 'रामु रन हतौं प्रचारी.'
मंदोदरि आगे भुज सीसा, धरि सर चले जहां जगदीसा.

—लंका कांड, पृष्ठ 842

रावण का धड़ वैसे नहीं बोला. राम ने उस के दो टुकड़े कर दिए तब उस ने कहा, "राम कहां हैं? मैं ललकार कर उन्हें लड़ाई में मारूंगा."

इस बात को तो तुलसी बाबा ही जानते होंगे कि धड़ दो टुकड़े होने पर इतने स्पष्ट शब्द किस अंग से बोल सका?

राम के चमत्कारी और भयंकर बाण रावण के शीशों और भुजाओं को मंदोदरी के सामने रख कर चले आए. मंदोदरी रावण को मरा जान कर विलाप करने लगी. अन्य पत्नियां भी साथ थीं.

मंदोदरि आगे भुज सीसा, धरि सर चले जहां जगदीसा.
पति गति देखत मंदोदरी, मुरुछित विकल धरनि खसि परी.
जुबति वृंद रोवत उठि धाई, तेहि उठाइ रावन पहं आई.
पति गति देखि ते करहिं पुकारा, छूटे बचनहिं बपुष संभारा.
उर ताड़ना करहिं विधि नाना, रोवत करहिं प्रताप बखाना.
तब बस विधि प्रपंच सब नाचा, सभय दिसिप नित नावहिं माथा.
अब तब सिर भुज जंबुक खाहीं, राम विमुख यह अनुचित नाहीं.

—लंका कांड, पृष्ठ 842-44

रावण के हाथों और सिरों को गीदड़ कहां खा रहे थे? वे तो उन्हीं सब के सामने पड़े थे. क्या रावण की पत्नियों ने इस विशेष अवसर के लिए महल में गीदड़ पाल रखे थे?

राक्षसों के विरुद्ध हुई लड़ाई में राम की सेना के अनेक महत्त्वपूर्ण रीछ, बंदर मारे गए थे. राम ने उन्हें जिलाने के लिए इंद्र से कहा. इंद्र ने आकाश से अमृत की वर्षा की, जिस से भालू, कपि जीवित हो गए. उन के समीप ही पड़े राक्षसों पर अमृत वर्षा का कोई प्रभाव नहीं हुआ.

सुनु सुरपति कपि भालू हमारे, परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे.
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना, सकल जिआउ सुरेस सुजाना.
सुधा बरसि कपि भालु जिआए, हरषि उठे सब प्रभु पहं आए.
सुधा वृष्टि भै दुहु दल ऊपर, जिए भालु कपि नहिं रजनीचर.

—लंका कांड, पृष्ठ 856

तो अमृत भी पक्षपात करता है. अमृत तो एक अचूक औषधि है. क्या वही दवा कुछ मरीजों को अच्छा कर देती है और दूसरे जाति के लोगों पर कोई प्रभाव नहीं करती?

14 वर्ष बीतने को थे. राम ने अपने पहुंचने से पहले हनुमान से अयोध्या में भरत के पास अपने आने का समाचार भिजवाया. भरत ने हनुमान को नहीं पहचाना.

राम विरह सागर महं भरत मगंन मन होत,
विप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत.
देखत हनुमान अति हरषेउ, पुलक गात लोचन जल बरसेउ.
मन महं बहुत भांति सुख मानी, बोलेउ स्रवन सुधा सम बानी.
जासु विरह सोचउ दिनराती, रटउ निरंतर गुनगन पांती

रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता,आयेउ कुसल देवमुनि त्राता.
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत,सीता अनुज सहित प्रभु आवत.
सुनत वचन बिसरे सब दूखा, तृषावंत जिमि पाइ पियूषा.
को तुम्ह तात कहां ते आए,मोहि परम प्रिय वचन सुनाए.
—उत्तर कांड, पृष्ठ 869-70

भरत ने हनुमान को क्यों नहीं पहचाना? एक मास से कुछ कम पहले ही दोनों की असाधारण भेंट हो चुकी थी. लक्ष्मण के शक्ति बाण लगने वाली रात हनुमान अयोध्या पर से लौट रहे थे. भरत ने पहाड़ ले जाते हुए हनुमान को राक्षस समझ कर बाण मारा. बाद में उन्हें राम का सेवक जान कर भरत बहुत दुखी हुए. इस घटना के बाद युद्ध 17 दिन चला था. क्या इतने कम समय में भरतजी उस व्यक्ति को भूल गए?

भरत राम के अनन्य भक्त थे. रामदूत की सहायता करने के बजाय उसे बाण मार दिया. यह घटना तो भरत को जीवन भर सदा स्मरण रहनी चाहिए थी:

गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ, अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ.
देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि,
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि.
परेउ मुरछि महि लागत सायक, सुमिरत रामराम रघुनायक.
सुनि प्रिय वचन भरत तब धाए, कपि समीप अति आतुर आए.
विकल विलोकि कीस उर लावा, जागत नहिं बहु भांति जगावा.
—लंका कांड, पृष्ठ 792-93

बालक राम ने कागभुशुंडि को पकड़ने के लिए हाथ फैलाया. कौआजी महाराज सात आवरण पार कर गए. पर उस हाथ ने पीछा नहीं छोड़ा. आगे की कथा तुलसी के शब्दों में सुनिए.

जानु पानि धाए मोहि धरना, स्यामल गात अरुन कर चरना.
तब मैं भागि चलेउ उरगारी, राम गहन कहं भुजा पसारी.
जिमिजिमि दूरी उड़ाउं अकासा, तहं हरि भुज देखेउं निज पासा.
ब्रह्मलोक लगि गयउं मैं, चितयउं 'पाछ उड़ात.
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात.
सप्तावरन भेद करि, जहां लगें गति मोरि.
गयउं तहां प्रभु भुज निरखि व्याकुल भयउं बहोरि.
मूंदेउ नयन त्रसित जब भयेऊं, पुनि चितवत कोसलपुर गयेऊं.
—उत्तर कांड, पृष्ठ 941-42

राम ने हाथ बढ़ा कर काग को पकड़ना चाहा और काग के उड़ने के साथ ही उस की लंबाई बढ़ाते गए. इस संबंध में हम कुछ कहना नहीं चाहते. राम ईश्वर थे और ईश्वर सब कुछ कर सकता है. वह चाहे कौआ पकड़े चाहे

कोयल. वैसे जिन लोगों ने उस दृश्य को देखा होगा, वे तो अवश्य चक्कर में पड़ गए होंगे. आजकल राकेटों से निकले धुएं की क्या रेखा बनती है जो राम का लंबा हाथ रेखा जैसा लगा होगा? पर आगे जो हुआ, वह बात बुद्धि में नहीं बैठती :

मोहि विलोकि रामु मुसुकाहीं, विहंसत तुरत गयउं मुख माहीं.
उदर मांझ सुनु अंडज राया, देखेउं बहु ब्रह्मांड निकाया.
अति विचित्र तहं लोक अनेका, रचना अधिक एक तें एका.
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा, अगनित उडुगन रबि रजनीसा.
अगनित लोकपाल जमकाला, अगनित भूधर भूमि बिसाला.
एकएक ब्रह्मांड महुं रहउं बरस सत एक.
एहि विधि देखत फिरउं मैं अंड कटाह अनेक,
भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका, बीते मनहुं कल्प सत एका.
फिरतफिरत निज आश्रम आयउं, तहं पुनि रहि कछु काल गंवायउ.
निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउं, निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउं.
उभय घरी महं मैं सब देखा, भयउं भ्रमित मन मोह विसेषा.
देखि कृपाल विकल मोहि विहंसे तब रघुबीर,
विहंसत ही मुख बाहेर आयउं सुनु मतिधीर.

—उत्तर कांड, पृष्ठ 942-44

राम के पेट में कौआ घुस गया. एकएक ब्रह्मांड में सौसौ वर्ष घूमता रहा. वहां बेचारे ने न जाने क्याक्या देखा. वहीं अपना आश्रम देख कर उस में रहने लगा. राम का जन्म सुन कर अयोध्या आ गया. वहां उसे देख कर राम पुनः हंसे. तब बेचारा बाहर निकल पाया. वह अपने को बाहर समझ रहा था, पर था राम के मुंह में. वास्तव में दो घड़ी का समय बीता था, पर कौआजी को लगा सौ कल्प बीत गए.

कैसी भूलभूलैया है! जादूगर लड़की को बंद करता है टोकरी में और वह थोड़ी देर बाद बाहर से आती मालूम होती है.

राम का कमाल इस से कई गुना जोरदार है. क्या राम राजमहल में लावारिस घूमते रहते थे जो न उन्हें कोई कौआ पकड़ने से रोकता था और न मुंह में घुसनेनिकलने वाले कौओं को ही मारता था?

औचित्य पर कौन ध्यान दे! भक्त को तो अपने भगवान की लीला की अलौकिकता सिद्ध करनी है. बिना ऐसा किए सुनने वालों पर प्रभाव भी नहीं पड़ता.

राम अपनी लीला के विषय में किसी का भ्रम नहीं देख सकते. कौशल्या एक बार राम को भगवान न समझ कर बालक समझने लगीं तो राम को विराट रूप धारण कर माता की बुद्धि ठीक करनी पड़ी. बड़ेबूढ़ों की बुद्धि कुछ कमजोर पड़ जाती है. राम ने माता के सामने अपना चतुर्भुज रूप रख कर अपनी

ईश्वरता सिद्ध कर दी थी:

भये प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी,
लोचन अभिरामा तन घन स्यामा निज आयुध भुज चारी.
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा,
कीजै सिसु लीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा.
—बाल कांड, पृष्ठ 192-193

यह बात होते हुए भी एक दिन माता कौशल्या को आखिर भ्रम हो ही गया:

इहांउहां दुइ बालक देखा, मति भ्रम मोर कि आन विशेषा.
देखि राम जननी अकुलानी, प्रभु हंसि दीन्ह मधुर मुसुकानी.
देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड,
रोमरोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड.
तनु पुलकित मुख बचन न आवा, नयन मूंदि चरननि सिरु नावा.
बिस्मयवंत देखि महतारी, भए बहुरि सिसु रूप खरारी.
—बाल कांड, पृष्ठ 200-201

ऊपर के प्रश्नचिन्हों का भक्त लोग क्या उत्तर देंगे, इसे तो हम नहीं बता सकते. हमारे विचार से तो तुलसी ने मानस में इन का समावेश किया होगा. फैशन का पालन तो करना ही पड़ता है.

(लेख में उद्धृत उद्धरणों की पृष्ठ संख्याएं गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित साढ़े तीन रुपए मूल्य वाले अर्थसहित 'रामचरितमानस' के दशम संस्करण से दी गई हैं—लेखक.)

तुलसी साहित्य में साधुसंत

तुलसी साहित्य का अध्ययन करने वालों का ध्यान एक बात पर गया होगा. उस में संसार से विरक्त महात्माओं के पर्यायवाची शब्दों अर्थात साधु, संत, ऋषि, मुनि, वैरागी, जोगी, सिद्ध आदि की भरमार है. तुलसी का पूरा साहित्य यदि मूल रूप में प्रकाशित किया जाए तो डिमाई आकार के 800 पृष्ठों में आ सकता है. पूरे तुलसी साहित्य में साधुसंत एवं उस के वाचक शब्दों का 1832 बार प्रयोग हुआ है. अनुपात निकालने पर एक पृष्ठ पर इस प्रकार के शब्द दो से अधिक आते हैं.

तुलसी साहित्य में साधुसंत एवं उन के पर्यायवाची शब्दों के होने के समर्थन में अनेक बातें कही जा सकती हैं. एक तो 'रामचरितमानस' धार्मिक ग्रंथ है. धार्मिक ग्रंथों में साधुसंतों का वर्णन होना ही चाहिए. दूसरे, तुलसी ने राम का कथानक ले कर कविता लिखी है. राम के जीवन में साधुबाबाओं का अधिक संपर्क रहा है.

ये बातें आंशिक रूप में ठीक हो सकती हैं, पर इन शब्दों के प्रयोग की भरमार का वास्तविक कारण कुछ और ही है. तुलसी स्वयं साधुसंत थे. अपनी कविता को साधुसंतमय बना कर उन्होंने आत्मप्रचार किया है. तुलसी ने संतों को एक प्रकार से धर्म और ईश्वर का दलाल बना कर अपनी कविता में चित्रित किया है. यह हो सकता है कि तुलसी ने ऐसा जानबूझ कर न किया हो, उन के अंतर्मन में अपने वर्ग के प्रति पक्षपात समाया हो.

तुलसी के आत्मप्रचार की बात हम निराधार नहीं कह रहे हैं. तुलसी ने साधुसंत वाचक लगभग पचीस शब्दों का प्रयोग किया है, पर सब से आदर 'साधुसंत' शब्दों के साथ ही हुआ है. इस प्रकार के शब्दों का विवरण नीचे दिया जा रहा है.

'रामचरितमानस': मुनि 685, ऋषि 58, साधक आठ, सिद्ध 25, जोगी 23, तापस 52, संन्यासी तीन, ब्रह्मचारी एक, विरागी पांच, स्वामी पांच, गोसाईं

12, परमार्थ वादी दो, उदासी एवं उदासीन सात, वैखानस तीन, जती चार बटु छ, बनवासी दो विमुक्त 1, --89।

'रामलला नहछू': मुनि दो. सिद्ध एक—3,

'पार्वतीमंगल': मुनि 13, ऋषि दो—15

'जानकीमंगल': मुनि 25, ऋषि 3—28

'रामशलाका प्रश्नावली': मुनि 19, ऋषि दो, सिद्ध पांच, तापस दो, जती दो, साधक तीन—33

'दोहावली': मुनि आठ, सिद्ध दो, तापस एक, जती एक, जोगी एक—1

'कवितावली': मुनि 25, जोगी छ, तापस पांच, उदासी एक, विरागी दो, सिद्ध आठ, जती एक, साधक दो, ऋषि दो—51.

'हनुमान बाहुक,: मुनि दो, सिद्ध दो—4.

'गीतावली' :मुनि 117, ऋषि 27, सिद्ध 11, तापस दस, साधक 2, जोगी तीन, वनवासी एक, बटु एक, जती एक—173

'कृष्ण गीतावली' मुनि सात, सिद्ध एक, जोगी तीन—11

'विनय पत्रिका': मुनि 61, ऋषि पांच, सिद्ध 19, ब्रह्मचारी तीन, जोगी चार, तापस तीन, विरागी एक, साधक तीन—99

ऊपर हम ने तुलसी साहित्य में साधुसंत शब्दों के अतिरिक्त शब्दों का विवरण दिया है. साधुसंत शब्दों का विवरण इस प्रकार है:

साधु: 'रामचरितमानस' 61, 'वैराग्य संदीपनी' दो, बरवै रामायण दो, 'जानकीमंगल' दो, 'रामशलाका प्रश्नावली' छ:, 'दोहावली' नौ, 'कवितावली' 15, 'गीतावली' 18, 'कृष्ण गीतावली' एक, 'विनय पत्रिका' 29 —145

संत: 'रामचरित मानस, 100, 'वैराग्य संदीपनी' 21, 'जानकीमंगल,' एक, 'दोहावली' छ:, 'गीतावली' पांच, 'विनयपत्रिका' 16, 'कृष्ण गीतावली' एक—

कोई और चर्चा चलाने से पहले हम एक बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं, जो लोग यह कहते हैं कि तुलसी साहित्य में विरक्तवाचक शब्द इसलिए हैं क्योंकि वे रामकथा पर आधारित हैं और राम का संपर्क साधुसंतों से अधिक रहा, उन्हें 'पार्वतीमंगल', 'दोहावली', 'हनुमान बाहुक' 'कृष्ण गीतावली' और 'विनय पत्रिका' के आंकड़ों पर ध्यान देना चाहिए. स्पष्ट है कि इन पुस्तकों में रामकथा नहीं है, पर विस्तार की दृष्टि से इन में आने वाले विरक्तवाचक शब्द कम नहीं हैं. यही बात 'रामचरित मानस' के संबंध में भी कही जा सकती है. 'बाल कांड' और 'अयोध्या कांड' में इस प्रकार के शब्दों का बाहुल्य समझ में आता है क्योंकि इन के कथानक से ऋषिमुनियों का संबंध है. शेष कांडों के विषय में हम तुलसी के पक्षपात को ही कारण मानेंगे. पाठकों की सुविधा के लिए हम 'रामचरित मानस' के कांडों का अलगअलग विवरण दे रहे हैं.

बाल कांड: मुनि 291, ऋषि 28, साधक 3, सिद्ध 11, जोगी 9, तापस 1 संन्यासी एक, ब्रह्मचारी एक, विरागी चार, स्वामी तीन, गोसाईं तीन, परमार्थ

ादी एक, उदासीन एक—376.

अयोध्या कांड: मुनि 173, ऋषि 11, साधक तीन, सिद्ध छ: जोगी पांच, ापस 17, स्वामी एक, उदासी पांच, वैखानस तीन, जती दो, बटु चार, परमार्थ-ादी एक, वनवासी दो, गोसाईं सात—240

अरण्य कांड: मुनि 80, ऋषि छ:, जोगी चार, जती दो, गोसाईं एक, ैरागी एक—94

किष्किंधा कांड: मुनि 11, बटु दो, साधक एक, सिद्ध एक, तापस दो—17

सुंदर कांड: मुनि छ:, ऋषि चार, तापस दो—12

लंका कांड: मुनि 27, जोगी दो, तापस पांच, सिद्ध चार, ऋषि दो—40

उत्तर कांड: मुनि 97, ऋषि सात, संयासी दो, सिद्ध तीन, तापस छ:, ाधक एक, जोगी एक, गोसाईं एक, विमुक्त एक, उदासीन एक—120

ऊपर के विवरणों से यह बात स्पष्ट है कि सब से अधिक प्रयोग मुनि शब्द ा हुआ है. पूरे तुलसी साहित्य में यह शब्द 964 बार आया है पर इस शब्द े साथ तुलसी का उतना मोह नहीं है, जितना साधु और संत शब्दों के साथ . पूरे तुलसी साहित्य में साधु शब्द 145 बार तथा संत शब्द 150 बार आया . इन शब्दों की तुलना में मुनि प्रयोग अधिक है. यदि मुनि के साथ इस के र्यायवाची शब्द ऋषि की संख्या 99 भी जोड़ लें तो यह संख्या और अधिक ो जाती है.

तुलसी साहित्य में किसी रिश्वत वाचक शब्द का प्रयोग कथानक के कारण आ है तो वह है—ऋषि, मुनि शब्द. ये शब्द अधिकांश स्थानों में प्रसंगवश आए और व्यक्ति विशेष के नामों के स्थान पर प्रयोग किए गए हैं. उदाहरण के ूप में नीचे के स्थल देखिए:

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी, हृदय हरष माना मुनि ग्यानी,
तब बसिष्ठ बहुविधि समुझावा, नृप संदेह नास कहं पावा.
अति आदर दोउ तनय बोलाए, हृदय लाइ बहु भांति सिखाए,
मेरे प्राननाथ सुत दोऊ, तुम्ह मुनि पिता आन नहीं कोऊ.

सौंपे भूप रिषिहि सुत, बहुविधि देइ असीस,
जननी भवन गए प्रभु, चले नाइ पद सीस.
पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि भय हरन,
कृपासिंधु मति धीर, अखिल विस्व कारन करन

अरुन नयन उर बाहु बिसाला, नील जलज तनु स्याम तमाला.
कटि पट पीत कसें वर माथा, रुचिर चाप सायक दुहुं हाथा.
स्याम गौर सुंदर दोऊ भाई, विश्वामित्र महानिधि पाई.
प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना, मोहि निति पिता तजेउ भगवाना.
चले जात मुनि दीन्हि दिखाई, सुनि ताड़का क्रोध करि धाई.
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा, दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा.

तब रिषि निज नाथहिं जिय चीन्हीं, विद्यानिधि कहूं विद्या दीन्हीं.
—रामचरित मानस, बाल कांड, पृष्ठ 206-207

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हें, फलु जग जीवन अभिमत दीन्हें.
कानन करउं जनम भरि बासू, एहि तें अधिक न मोर सुपासू.
अंतरजामी रामसिय, तुम्ह सर्वज्ञ सुजान,
जो फुर कहहु त नाथ निज, कीजिए बचन प्रमान.
भरत वचन सुनि देखि सनेहू, सभा सहित मुनि भए विदेहू,
भरत महामहिमा जल रासी, मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी.
गा चह पार जतन बहु हेरा, पावति नाव न बोहितु बेरा.
और करिहि को भरतु बड़ाई, सरसी सीपि कि सिंधु समाई.
भरत मुनिहि मन भीतर भाए, सहित समाज राम पहिं आए.
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु, बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु.
बोले मुनिवर वचन विचारी, देश काल अवसर अनुसारी.
—राम चरित मानस, अयोध्या कांड, पृष्ठ 538

पहले प्रसंग में ऋषिमुनि शब्द विश्वामित्र के लिए एवं दूसरे में वशिष्ठ के लिए आए हैं. पूरे तुलसी साहित्य में कठिनता से दर्जन भर ऐसे स्थल मिलेंगे, जहां इन शब्दों को आदर, महानता, त्याग आदि दिखाने के लिए प्रयोग किया गया है. कुछ स्थल नीचे प्रस्तुत हैं.

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई, तेहि पग चलत सुगम मोहि भाई.
पृष्ठ 45

सुर सुंदरी करहिं कल गाना, सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना.
पृष्ठ 89

तुम्ह जो कहा राम कोउ आना, जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना
पृष्ठ 138

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा, गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा.
पृष्ठ 133

किंकिनि ललाम लगाय ललित, विलोकि सुर नर मुनि ठगे
पृष्ठ 391

तात तीनि अति प्रबल खल, काम, क्रोध अरु लोभ,
मुनि विग्यान धाम मन... —रामचरित मानस, पृष्ठ 643

मुनि का अधिकांश स्थलों में प्रयोग मन मोहने के प्रसंग में हुआ है. कहा गया है कि अमुक वस्तु इतनी सुंदर थी कि मुनियों का मन भी मोह लेती थी. इस प्रकार के स्थल मुनि शब्द का गौरव प्रदर्शित करने वाले नहीं हैं. तुलसी इस स्थान पर किसी भी विरक्तवाचक शब्द का प्रयोग कर सकते थे. मन मोहने के साथ मुनि शब्द का प्रयोग करने से अनुप्रास अलंकार बन जाता है. इसी लिए तुलसी ने इस शब्द का प्रयोग किया है, जैसे:

जिन्हहिं विलोकत मुनि मन मोहैं —पृष्ठ, 277
छजु अखय बटु मुनि मन मोहा —पृष्ठ, 417
मुनि महेस मन मानस हंसा —पृष्ठ, 316
मुनि मन अगम गाधि सुत करनी —पृष्ठ, 137
मंडपु विलोकिविचित्र रचना,
रुचिरता मुनिमन हरे. —पृष्ठ, 295

—रामचरितमानस

ऋषिमुनि शब्दों में मात्राओं की समानता है और दोनों का अर्थ भी एक ही है. तुलसी इन स्थानों पर ऋषि शब्द का प्रयोग कर सकते थे. तुलसी ने अनेक स्थानों पर एक ही व्यक्ति के लिए ऋषि और मुनि दोनों शब्दों का प्रयोग किया है:

एक बार त्रेता जुग माहीं, शंभु गए कुंभज ऋषि पाहीं.
संग सती जग जननि भवानी, पूजे रिषि अखिलेश्वर जानी.
रामकथा मुनिवर्य बखानी, सुनी महेस परम सुख मानी,
ऋषि पूछी हरि भगति सुहाई, कही संभु अधिकारी पाई.

—रामचरित मानस, बाल कांड पृष्ठ, 78

नारि सहित मुनि पद सिरु नावा, चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा,
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना, सुता बोलि मेली मुनि चरना.
त्रिकालग्य सर्वग्य तुम्ह, गति सर्वत्र तुम्हारि,
कहहु सुता के दोष गुन, मुनिवर हृदय विचारि.
कह मुनि विहंसि गूढ़ मृदु बानी, सुता तुम्हारि सकल गुन खानी,
सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी, दुख दंपतिहि उमा हरषानी.

—रामचरित मानस, बाल कांड, 93-94

ऋषिमुनि शब्दों के समान ही जोगी, जती, सिद्ध आदि शब्द भी व्यक्ति विशेष के लिए प्रयुक्त हुए हैं. इन लोगों के न तो गुणों का विस्तृत वर्णन है, न लक्षण दिए गए हैं और न इन की महत्ता प्रदर्शित की गई है. इस के विपरीत साधुसंत शब्द सर्वत्र आदर एवं गौरव के लिए आए हैं. पूरे तुलसी साहित्य में दो स्थानों पर संतों के लक्षण दिए गए है. एक जगह उन के स्वभाव का विस्तृत वर्णन है, एक जगह उन की महिमा वर्णित है:

संतन्ह के लच्छन रघुवीरा, कहहुं नाथ भव भंजन भीरा.
सुनु मुनि संतनु के गुन कहऊं, जिन्हते मैं उन के बस रहऊं.
षट् विकार जित अनयअकामा, अचल अकिंचन सुचि सुखधामा.
अमित बोध अनीह मित भोगी, सत्यसार कवि कोविद जोगी.
सावधान मानद मदहीना, धीर धर्म गति परम प्रवीना.
गुनागार संसार दुख रहित विगत संदेह,
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुं देह न गेह.
निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं, परगुन सुनत अधिक हरषाहीं.

सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती, सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती.
जपतप व्रत दम संजम नेमा, गुरु गोविंद विप्र पद प्रेमा,
श्रद्धा छमा मयत्री दाया, मुदिता मम पद प्रीति ग्रमाया.
बिरति बिबेक बिनयबिग्याना, बोध जथारथ वेद पुराना,
दंभ मान मद करहिं न काऊ, भूलि न देहिं कुमारग पाऊ.
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला, हेतु रहित परहित रत सीला,

—रामचरित मानस, ग्ररण्य कांड, 649-650

संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता, ग्रगनित स्रुतिपुरान बिख्याता.
विषय ग्रलंपट सील गुनाकर, पर दुख दुख सुख पर देखे पर.
सम ग्रभूतरिपु विमद विरागी, लोभा मरष हरष भय त्यागी,
कोमल चित्त दीनन्ह पर दाया, मन क्रम वचन मम भगति ग्रभाया.
सबहि मानप्रद ग्रापु ग्रमानी, भरत प्रान सम मम ते प्रानी.
विगत काम मम नाम परायन, सांति विरति विनती मुदितायन.
सीतलता सरलता मयत्री, द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री.
ए सब लच्छन वसहिं जासु उर, जानेहु तात संत संतत फुर.

—रामचरित मानस, उत्तर कांड, 906-907

सरल बरन भाषा सरल, सरल ग्रर्थमय मानि,
तुलसी सरलै संत जन ताहि परी पहिचानि.
तुलसी एसे कहुं कहूं, धन्य धरनि वहु संत,
परकाजै परमारथी, प्रीति लिए निबहत.
को मुख पट दीन्हें रहै, यथा ग्रर्थ भाषंत,
तुलसी या संसार में, सो विचारियतु संत.
सीतल बानी संत की ससि हू तें ग्रनुमान,
तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान.

—वैराग्य संदीपनी, पृष्ठ 10-11

को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत की,
जिन के विमल विवेक, सेस महेस न कहि सकत.
महि कागद करि सिंधुमसि, तरु लेखनी बनाइ,
तुलसी गनपति सो तदपि, महिमा लिखी न जाइ.
धन्यधन्य मातापिता, धन्य पुत्रवर सोइ,
तुलसी जो रामहि भजै, जैसेहू कैसेहू होइ.

—वैराग्य संदीपनी, पृष्ठ 12

पिछले दो स्थल विस्तार भय से चौथाई दिए गए हैं. तुलसी ने साधुसंत को एक ही माना है. संत महिमा वर्णन में संत के लिए साधु शब्द भी ग्राया है:

जदपि साधु सब ही विधि हीना, तद्यपि समता के न कुलीना.

—वैराग्य संदीपनी, पृष्ठ 13

तुलसी ऐसे, सदगुरु साधू, वेद मध्य गुन विदित अगाधू.

वैसे साधारण व्यवहार में भी एक ही व्यक्ति के लिए साधुसंत शब्द आता है. तुलसी को संन्यासी, ब्रह्मचारी, ऋषि, मुनि, जोगी, सिद्ध कुछ नहीं कहा जा सकता. उन के लिए हम साधु या संत शब्द का ही प्रयोग कर सकते हैं. साधुसंत होने के कारण तुलसी ने इस शब्द के साथ पक्षपात किया है.

ऊपर संत के लक्षण, स्वभाव एवं महिमा को पढ़ कर कुछ लोग यह कह सकते हैं कि साधुसंत शब्दों का अर्थ सज्जन भी हो सकता है. फिर कैसे माना जाए कि तुलसी ने विरक्त होने के कारण इन शब्दों के साथ पक्षपात किया है.

यह बात ठीक है. साधु एवं संत दोनों शब्दों का प्रयोग सज्जन या भला आदमी होता है. तुलसी ने अनेक स्थलों पर इन शब्दों का प्रयोग इस अर्थ में भी किया है.

सुरसरि जलकृत वारुनि जाना, कबहुं न संत करहिं तेहि पाना. पृष्ठ 75
धरम सील ज्ञानी गुनवंता. पृष्ठ 210
सब कोइ कहइ राम सुठि साधू. पृष्ठ 360
समाधानु तब भा यह जाने,भरत कहै मंह साधु सयाने. पृष्ठ 514
एहि सन हठि करिहौं पहिचनी, साधु ते होइ न कारज हानी.
पृष्ठ 691 'रामचरित मानस'

उक्त शंका के उत्तर में निवेदन है कि ऊपर बताए गए लक्षण, स्वभाव एवं महिमा क्या किसी संसारी व्यक्ति की हो सकती है? क्या उक्त गुणों वाला व्यक्ति दुनिया में रह सकता है?

तुलसी ने संत स्वभाव वर्णन के अंतर्गत निम्न बात लिखी है:

कंचन को मृतिका करि मानत, कामिनि काष्ठ सिला पहिचानत.
--वैराग्य संदीपनी, पृष्ठ 12

क्या कंचन को मिट्टी और नारी मात्र को लकड़ीपत्थर समझने वाला व्यक्ति संसारी सज्जन हो सकता है?

इस के अतिरिक्त तुलसी बाबा ने विरागी या महात्मा अर्थ में अधिकांश स्थलों पर साधुसंत शब्दों का प्रयोग किया है:

संत कहहिं असि नीति प्रभु,श्रुति पुरान मुनि गाव. पृष्ठ 77
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी, मत हमार अस सुनहि सयानी,
तदपि संत मुनि वेद पुराना, जस कछु कहहिं स्वंगति अनुमाना.
पृष्ठ 168

तेहि के सत सुत अरु दस भाई,खल प्रति अजय देव दुखदाई,
प्रथमहिं भूप समर सब मारे, विप्र संत सुर भए सुखारे. —पृष्ठ 174
चले संग मुनि साधु समाजा. पृष्ठ 288

साधु समाज संग महि देवा. —पृष्ठ 289
विप्र साधु सुर पूजत राजा. —पृष्ठ 340
सिद्ध साधु मुनिवर अह कहहीं.
—रामचरित मानस पृष्ठ 506
रागद्वेष इरिषा बिमोह बस, रुची न साधु समीति. —पृष्ठ 574
मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिव पी के. —पृष्ठ 546
धरनि धेनु महिदेव साधु सब के सब सोच नसाए. —पृष्ठ 402
—तुलसी ग्रंथावली'

पहले उद्धरण में श्रुति, पुराण और मुनि के साथ आने से संत का अर्थ साधु बाबा है. इसी प्रकार अन्य उद्धरणों में विप्र, सुर, महिदेव आदि के साथ होने से साधुसंत शब्दों का अर्थ विरक्तों से है. यदि इन का प्रयोग सज्जन से होता तो सुर, मुनि, विप्र, सिद्ध आदि शब्दों का प्रयोग भद्दा लगता. क्या सुर मुनि आदि सज्जन नहीं होते?

छठे और सातवें उद्धरण में 'समाज' एवं आठवें में 'समीति' के साथ आने से साधु शब्द का अर्थ संत बाबा है. इन शब्दों का अर्थ है—जमात. जमात साधुओं की ही होती है.

तुलसी ने अनेक स्थानों पर साधुसंतों को धर्म और ईश्वर के दलाल के रूप में प्रस्तुत किया है और साधुसंतों की सेवा करने का उपदेश दिया है.

भवसागर कहं नाव सुद्ध संतन के चरन,
तुलसीदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुखहरन.
—तुलसी ग्रंथावली, पृष्ठ 561

ऐसे नहि सीतापति सेवक साधु, सुमति भले भगत भाव. —तुलसी ग्रंथावली, पृष्ठ 546
सुमिरहु नाम राम कर सेवहु साधु, तुलसी उतरि जाइ भव उदधि अगाधु.
—तुलसी ग्रंथावली, पृष्ठ 24

एक स्थान पर तुलसी ने राम के मुख से कहलवाया है कि संतों को मुझ से अधिक समझना चाहिए. राम शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश दे रहे हैं:

सातवं सम मोहि मय जग देखा, मोते अधिक संत करि लेखा
—रामचरित मानस, पृष्ठ 640

यह सब आत्मप्रचार और आत्मप्रशंसा नहीं तो और क्या है? तुलसी ने इस प्रकार की बातें किसी भी विरक्त वाचक शब्द के साथ नहीं कही हैं. एक स्थान पर तो संतों की प्रशंसा करने वालों में साधु को भी गिना दिया है.

संत संग अपवर्ग कर कामी भवकर पंथ,
कहहिं साधु कवि कोविद स्रुति पुरान सद्ग्रंथ
—तुलसी ग्रंथावली, पृष्ठ 130

कितनी अच्छी बात है? स्वयं ही परीक्षार्थी और स्वयं ही परीक्षक.

तुलसी ने साधुसंत शब्दों को सज्जन वाचक होने के कारण मान्यता नहीं दी है. पूरे तुलसी साहित्य में सज्जन शब्द 33 बार एवं सुजन शब्द 21 बार आया है. यदि सत्संग शब्द के सत का अर्थ भी सज्जन मान लें तो यह संख्या 28 और बढ़ सकती है. तुलसी साहित्य में सत्संग और सत्संगति शब्द 28 बार आए है, संत समाज दो बार, सुसंग दो बार तथा सताम् शब्द एक बार आया है. ये सब प्रयोग जोड़ने पर 87 बैठते हैं जो साधुसंत शब्दों की संख्या से अपेक्षाकृत न्यून हैं.

इन शब्दों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है:

सुजन—'रामचरितमानस' 10, 'दोहावली सात, 'विनय पत्रिका' दो, 'गीतावली' दो 21 सज्जन—'रामचरितमानस' 21, 'पारवती' एक 'जानकीमंगल' एक, 'दोहावली' चार, 'कवितावली' दो, 'हनुमान बाहुक' एक, 'गीतावली' एक, 'विनय पत्रिका'—दो 13.

सतसंगति एवं सत्संग—'रामचरित मानस' 20, 'दोहावली' एक, 'विनय पत्रिका' सात—28

संतसमाज—'रामचरितमानस', दो.

सुसंग—'दोहावली' दो.

सताम्—'रामचरितमानस' एक.

ऊपर किए गए विरक्त वाचक शब्दों के विवेचन से हम एक बात और सिद्ध करना चाहते हैं, वह यह कि तुलसी को वर्णाश्रम धर्म का समर्थक कहना उचित नहीं है. वे यदि किसी के समर्थक थे तो साधुमहात्माओं के. पूरे तुलसी साहित्य में ब्रह्मचारी शब्द का प्रयोग चार बार और संन्यासी का तीन बार हुआ है. गृहस्थ शब्द का प्रयोग भी कुछ स्थलों पर मिलता है. वानप्रस्थी शब्द कहीं देखने में नहीं आता. जहां उन्होंने चारों आश्रमों को याद भी किया है, वहां भी चारों का नाम नहीं लिया है. यदि उन के हृदय में आश्रम व्यवस्था का स्थान होता तो वे इन शब्दों के विपुल प्रयोग के साथ इन का विस्तृत वर्णन भी करते.

तुलसी साहित्य में सात बार बटु शब्द का प्रयोग हुआ है. बटु शब्द का अर्थ है—ब्राह्मण, ब्रह्मचारी. यह बात तुलसी के निम्न प्रयोग से स्वयं स्पष्ट है:

धरि बटु रूप देख तहं जाई, कहेसि मोहि जिय सयन बुझाई,
विप्र रूप धरि कपि तहं गएऊ, माथ नाइ पूछत अस भएऊ.

—रामचरित मानस पृष्ठ 654

क्या अन्य जातियों में ब्रह्मचारी नहीं होते थे. पूरे तुलसी साहित्य में दो एक स्थान पर वणिक शब्द अवश्य आया है, पर कोई भी वैश्य पात्र प्रस्तुत नहीं किया गया है. यह है तुलसी का वर्णाश्रम प्रेम.

तुलसी ने अपने साहित्य में विरक्त वाचक शब्दों का विपुल प्रयोग इसी लिए किया है कि वे विरक्त थे. अन्य विरक्त वाचक शब्दों की अपेक्षा साधुसंत शब्दों को अधिक महत्त्व दिया गया है क्योंकि वे स्वयं साधुसंत ही कहे जा सकते हैं. इस प्रकार तुलसी ने अपने साहित्य में आत्मप्रचार किया है. ●

ब्राह्मणवाद

आज स्वतंत्रता के युग में प्रत्येक ऐतिहासिक महापुरुष और उस के कृतित्व का मूल्यांकन निष्पक्ष भाव तथा नए सिरे से करना नितांत आवश्यक है क्योंकि आज किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा महापुरुषों के जो भी मूल्यांकन विद्यमान हैं, वे प्रायः राजतंत्र या वर्गतंत्र के सपक्ष दृष्टिकोण से प्रस्तुत किए गए हैं जो जनतंत्र के इस युग में कुछ व्यर्थ हो गए हैं.

आज हम यह मानदंड मान कर चलेंगे कि संसार के सभी विषय और सभी वस्तुएं मनुष्य के लिए हैं, न कि मनुष्य विषय या वस्तु विशेष के लिए है. जिन महापुरुषों द्वारा अखंड मानव समाज का अधिक उपकार हुआ है, वे हमारे लिए अधिक मूल्यवान, आदरणीय एवं स्मरणीय हैं. इसे ही मद्देनजर रखते हुए इतिहास के आलोक में हम यह देखेंगे कि तुलसीदास ने देश या अखंड भारतीय समाज के लिए क्या किया है. किंतु यह समझने से पहले हमारे लिए ब्राह्मणवाद को समझ लेना अत्यावश्यक है, क्योंकि यही ब्राह्मणवाद महाकवि तुलसीदास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रहा है.

ब्राह्मणवाद उस वर्गिक निर्देशन को कहते हैं जो ब्राह्मण वर्ग द्वारा रचित दर्शन और साहित्य के माध्यम से हिंदू समाज को चिरकाल से मिलता आ रहा है और जिस के अनुसार उस की रूपरेखा बनती, बिगड़ती या बदलती चली आ रही है.

समाज की बर्बरता की अवस्था में उस के निर्देशक भले ही अस्त्रशस्त्र रहे हों, पर सभ्य समाज के निर्देशक दर्शन और साहित्य ही हैं. ऐसे साहित्य और दर्शन पर केवल एक ही अल्पसंख्यक जन्मजात वर्ग, ब्राह्मण वर्ग, का बलात अधिकार रहता चला आया है. आज का हिंदू समाज इसलामी और यूरोपीय संस्कृतियों द्वारा प्रभावित होते रहने के बावजूद ब्राह्मणवाद के सांचे में ही ढला हुआ है. इसी ब्राह्मणवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हम महाकवि तुलसीदास का अध्ययन कर के यह देखेंगे और समझेंगे कि उन से समाज को

समझा जाता है कि हिंदू समाज की बुनियाद ऋग्वैदिक काल में पड़ी और उसी समय समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामक चार कर्मजात वर्णों में विभक्त हो गया और ये कर्मजात वर्ण सदियों बाद धीरेधीरे बदलते हुए पूर्णतः जन्मजात बन गए. कर्मजात वर्णों का आधार व्यक्ति की योग्यता तथा कर्म थे, पर जन्मजात वर्णों का आधार केवल जन्म रह गया. पहले खुली प्रतिद्वंद्विता थी जिस में सफल हो कर कोई भी व्यक्ति अपने जीवन को अपनी इच्छा के अनुसार बना सकता था, पर वर्णों का आधार जन्म बन जाने से व्यक्ति की यह सुविधा सर्वथा समाप्त हो गई.

ऋग्वैदिक काल आर्यअनार्य के संघर्ष का कठोरतम काल था. स्वभावतः उस समय अधिक महत्त्व योद्धाओं का था. वे ही समाज का 'क्षत' होने अर्थात कटनेमरने से 'त्राण' करते थे. इसी लिएं वे 'क्षत्रिय' कह कर सम्मानित किए गए. वे ही अपने समाज के निर्देशक थे. बाद में लड़ाईझगड़े कम हो गए तो क्षत्रियों का सम्मान भी कम हो गया. अपेक्षाकृत शांति काल में एक चिंतक वर्ग उदित हुआ जो ब्रह्म की कल्पना के आधार पर 'ब्राह्मण' कहलाया. सामान्य जनता वैश्य और शूद्र बन कर रही. अब क्षत्रियों के स्थान पर ब्राह्मणों का सम्मान बढ़ गया और वे ही समाज के स्वच्छंद निर्देशक बन गए. समाज के निर्देशन के लिए क्षत्रियों और ब्राह्मणों में घोर संघर्ष भी हुए, पर ब्राह्मण की कलम के आगे क्षत्रिय की तलवार की करारी हार हुई. ब्राह्मण स्वरचित दर्शन और साहित्य के माध्यम से क्षत्रियों के मस्तिष्क पर पूर्णतः हावी हो गए.

विजयी ब्राह्मण बड़ी तेजी से अपने वर्गस्वार्थ की ओर बढ़ा. उस ने प्रत्येक वर्ण को एक योनि मान लिया और उसे स्वकल्पित विराट पुरुष के विभिन्न अंगों से अलगअलग उत्पन्न और उसी के अनुसार ऊंचनीच बताया. ब्राह्मण बना मुख या मस्तक, क्षत्रिय भुजा, वैश्य जंघा, और शूद्र पैर. इस प्रकार ब्राह्मणवाद ने तीनों अब्राह्मण वर्गों को मस्तकविहीन खंड बना दिया और स्वयं धड़रहित मुंड बन गया. हाथपैर श्रम कर सकते हैं किंतु मस्तक के अभाव में वे देखसुन, सोचविचार नहीं सकते. इस के विपरीत मस्तक देखसुन, खापी, सोच-विचार सकता है किंतु वह अपनी मेहनत की कमाई पर जी नहीं सकता. सर्वांग-पूर्ण भारतीय व्यक्तित्व को ब्राह्मणवाद ने सर्वथा एकांगी और पराश्रित बना कर छोड़ दिया. यह मानवता की अभूतपूर्व और बहुत बड़ी क्षति थी.

उपर्युक्त अंगों के अनुसार ही ब्राह्मण धर्माध्यक्षों ने चिंतनप्रधान छः कर्मों को अपने लिए रखा और युद्ध, कृषि, सेवा आदि श्रमप्रधान कर्म अब्राह्मण वर्णों में वितरित कर दिए. सर्वथा सुयोग्य होने पर भी पढ़ाने, यज्ञ कराने और दान लेने का अधिकार किसी अन्य वर्ण को नहीं दिया गया. उन्होंने पढ़ाने के माध्यम से अब्राह्मणों के मस्तिष्क एवं विचारों पर अपना अधिकार रखा और यज्ञ तथा दान के माध्यम से सम्मानपूर्वक उन की कमाई के उपभोक्ता बन गए.

इस उपभोग के लिए आध्यात्मिकता अथवा अज्ञेय शक्ति का सहारा लिया गया क्योंकि दृश्य जगत के सहारे विशाल अब्राह्मण समाज को चिरकाल तक प्रभावित बनाए रखना असंभव था.

ब्राह्मण वर्ग की जीविका एवं सुखसुविधा को अधिक सुलभ बनाए रखने के लिए यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रंथों में प्रचुर दानदक्षिणा के साथ अश्वमेध, गोमेध, सर्वजित आदि बड़ेबड़े यज्ञों के विधिविधान बनाए गए. सर्वजित वह यज्ञ था जिस में अपना सारा धन ब्राह्मणों को दान कर दिया जाता था. राम के पूर्वज राजा दिलीप ने अपना सब कुछ दान कर के मिट्टी के बरतन में खापी कर अपने को धन्य माना था. दान और यज्ञ धर्म के प्रधान अंग एवं आवश्यक कर्तव्य बना दिए गए.

बुद्ध से पूर्व यज्ञों, मत्स्यन्याय से लड़े जाने वाले राजाओं के आपसी युद्धों और अंगुलिमाल्य जैसे खूनी डाकुओं द्वारा घोर हिंसा होने लगी. हिंसा की आग में जनजीवन बेपनाह जलने लगा. हिंसा की उस आग को बौद्ध धर्म ने शांत किया. परंतु छद्मवेशी बौद्ध भिक्षुओं ने बौद्ध धर्म को भारत में समाप्त-प्राय कर दिया और सारी जनता ब्राह्मण धर्म में चली गई.

प्राचीन काल में हारे हुए सैनिक विजेता द्वारा गुलाम बना लिए जाते थे. वही दुर्दशा बौद्ध धर्म से ब्राह्मण धर्म में लौटी जनता की हुई. वह सारी की सारी शूद्र वर्ग में डाल दी गई. कहा गया कि कलियुग में ब्राह्मण और शूद्र दो ही वर्ण हैं. तब से ही 'द्विज' शब्द से केवल ब्राह्मण का बोध होने लगा.

यदि दो ही वर्णों में समाज को बांट दिया जाता तो विशाल शूद्र समाज में ब्राह्मणवाद के विरुद्ध ऐसी चेतना जागती जो उस के तख्ते को उलट देती. वह बौद्ध क्रांति से भी बड़ी क्रांति कर देती. इस संभावना को सदा के लिए समाप्त कर देने के लिए सीढ़ीनुमा ढंग से जातिपांति को हजारों टुकड़ों में बांट कर उन में शादीब्याह और खानपान के संबंधों को सर्वथा काट कर समाज की एकता की शक्ति छिन्नभिन्न कर दी गई. तब से छोटीछोटी उपजातियां अपने छोटेछोटे दायरों में चक्कर खाती हुई मृतप्राय बनती चली गईं.

यद्यपि ब्राह्मण वर्ग के आरंभिक निर्माण में काफी वर्णसंकरता रही है—वशिष्ठ, नारद आदि ऋषिमुनि वैसे ही बताए गए हैं, तथापि ब्राह्मण शास्त्रकारों ने सभी अब्राह्मण जातियों को वर्णसंकर या शूद्र ही लिख मारा है. राजपूत जाति को भी, जिसे व्यवहारतः ब्राह्मणों ने क्षत्रियवत रख कर उसी के हाथों प्राचीन क्षत्रियों व वैश्यों का शूद्रीकरण, शोषण व दलन और बहुत कुछ बौद्धों का संहार भी करवाया, चुपके से वर्णसंकर और शूद्र श्रेणी में डाल दिया. (देखिए : ब्रह्मवैवर्त महापुराण, संकर जाति वर्णनाध्याय, श्लोक 6. स्कंद पुराण, सह्याद्रि खंड, अध्याय 26, शूद्र कमलाकर. वृहज्ज्योतिषार्णव, संकर जाति वर्णनाध्याय इत्यादि.)

जब ब्राह्मणवाद को सार्थक बनाने वाले राजपूत समाज की यह दुर्दशा हुई

तो और जातियां किस अंत को छूती थीं. इस प्रकार, ब्राह्मण धर्माध्यक्षों ने हिंदू समाज को नीचों और महानीचों का विशाल पुंज बना दिया. जिस समाज में इस प्रकार की वैधानिक नीचता हो उस का कल्याण कौन कर सकता है?

बौद्ध काल के बाद ब्राह्मण की सहजसुलभ जीविका के आधार यज्ञ समाप्त हो गए थे. अब उन्हें उसी रूप में लौटा पाना असंभव था. अब उन के स्थान पर मूर्तिपूजा और देवभक्ति को अपनाया गया. अब कथानकप्रधान विभिन्न पुराण आदि ग्रंथ रचे गए जिन में वर्णित किसी देवता के नाम लेने और दर्शन करने या किसी 'पवित्र' नदी में स्नान करने मात्र से पाप छूटने लगे, मुक्ति मिलने लगी और सातसात पुरखे तरने लगे. कहा गया कि जिस ने ब्राह्मणों को दानदक्षिणा दे कर मूर्तिपूजा करवाई, योगजाप करवाया, वही राजामहाराजा, धनी और संपन्न हुआ; जिस ने ऐसा नहीं किया, वह दीनदुखी एवं दरिद्र बना. 'जो इस जन्म में करेगा, वही आगे पाएगा,' इस धर्मादेश से प्रभावित हो कर राजामहाराजा विशाल देवमंदिर बनवाने लगे और उन्हें प्रचुर धनधान्य से भरने लगे. किसान, मजदूर, श्रमिक जनता भी परलोक सुधारने के लिए पेट काट कर भी मठोंमंदिरों में दान देने लगी. फलतः मुसलिम शासन काल से पूर्व समस्त भारत की संपत्ति दो ही जगह केंद्रित हो गई. एक ब्राह्मणों के मठोंमंदिरों में और दूसरे राजाओं और सामंतों के यहां. इसी लिए महमूद गजनवी और मुहम्मद गौरी ने मठोंमंदिरों और राजाओंसामंतों को लूटने की परंपरा चलाई.

मुसलिम राज्य स्थापित होने पर शोषितदलित जनता धड़ल्ले से इसलाम की गोद में जा कर राहत महसूस करने लगी. अब हिंदू धर्माध्यक्षों के पैरों तले से धरती खिसकने लगी. इस समस्या का समाधान यह था कि इस शोषितदलित जनता को जो राहत इसलाम में दी जा रही थी, उस से अधिक राहत हिंदू के नाते, भाई के नाते, अपने घर में दी जाती, जिस से उन का क्षोभ मिट जाता और वे हिंदू बने रहते, मुसलमानों की दाल न गल पाती (तब शायद पाकिस्तान का सवाल भी न उठता). पर ऐसा नहीं हुआ. इसलाम के आघात सहने के लिए धर्माध्यक्षों ने कच्छपप्रवृत्ति अपना ली और भगवान की भक्ति का सहारा ले लिया.

बौद्ध काल में दक्षिण भारत ब्राह्मणवाद का अड्डा बन गया था. वहीं के षड्यंत्र के आधार पर बौद्ध धर्म को तोड़फोड़ कर समाप्त किया गया था. मुसलिम संकट काल में भी वहीं के रामानुजाचार्य और बल्लभाचार्य आदि ने उत्तरी भारत में द्विजों में रामकृष्ण की भक्ति का प्रचार किया. जब इस से काम चलता नजर नहीं आया तो स्वामी रामानंद को 'हरि को भजे सो हरि का होय' कह कर कबीर जुलाहे, रविदास चमार, आदि तथाकथित नीच कुल वालों को भी अपना शिष्य बनाना पड़ा.

संभवतः स्वामी रामानंद ने रामविग्रह के अपवित्र हो जाने के भय से

इन शिष्यों को साकार रामभक्ति की दीक्षा नहीं दी होगी और काम चलाने के लिए निराकारोपासना को ही काफी समझा होगा या इन के विवेक की कसौटी पर कस कर उन की साकार भक्ति निराकार बन गई होगी. फलतः निराकार राम के ये भक्त अपनेअपने ढंग से शोषितदलितों में, विशेषकर अपने जातिभाइयों, में रामभक्ति का प्रचार करने लगे और कहने लगे कि "यह देश बिराना है, यहां सुखदुख सहते और भगवान की भक्ति करते हुए, 'जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिए' के अनुसार मरने के बाद प्रियतम का सहयोग मिलेगा और अपार सुख का उपभोग मिलेगा." इसी सहयोग और उपभोग के लालच में अधिकांश क्षुब्ध समुदाय, जीवन की नरक यातना भोगता हुआ भी, भक्ति के महाजाल में फंस कर हिंदू बना रह गया. निर्गुणवादी संतों में गुरु गोविंदसिंह की तरह यह विश्वास नहीं जग सका कि सामूहिक प्रयत्न द्वारा वर्तमान जीवन को भी सुखी व संपन्न बनाया जा सकता है. फिर भी प्रगति की ओर उन का एक कदम अवश्य था. पहली बार उन्हें थोड़ा सम्मान मिला. यदि राम के युग में ये ऐसी भक्ति और योगजाप करते तो संभवतः शंबूक की तरह उन के गले काट दिए जाते.

भक्ति के प्रचार से क्षुब्ध जनता को हिंदू बनाए रखने में धर्माध्यक्षों को सफलता तो काफी मिली, पर उन की जीविका के आधार मठों, मंदिरों और मूर्तियों को जहां एक ओर मुसलमान ध्वस्त कर रहे थे, वहां दूसरी ओर निर्गुणवादी संत भी उन के विरुद्ध जनता में प्रचार करने लगे. साथ ही वर्णव्यवस्था और जातिपांति व ऊंचनीच के विरुद्ध भी उन की आवाज उठने लगी. यही वह समय था जब मूर्तिपूजा समाप्तप्राय हो गई. इस से ब्राह्मणों की प्रचुर आय बंद हो गई और राजपूत काल के अत्यंत संपन्न ब्राह्मण अत्यंत विपन्न बन गए.

निर्गुणवादी संत समाज की अखंडता, समानता तथा मानवता पर जोर डाल रहे थे; जिस से प्रभावित हो कर अनेक ब्राह्मण भी उन के शिष्य बन कर उन की सेवा करने लगे. पर जैसे वृक्षों का रस पी कर पलने वाली अमरलता समतल जमीन पर नहीं पनप सकती, ठीक वैसे ही परोपजीवी ब्राह्मणवाद समता या मानवता के धरातल पर नहीं पनप सकता था। फिर भी कुसमय समझ कर धर्माध्यक्ष वर्ग सब कुछ सहता रहा.

हुमायूं तक मुसलिम शासन हिंदुओं के लिए अत्यंत कठोर रहा. शेरशाह ने हिंदुओं के सहयोग से उसे अपदस्थ कर दिया. इस के रहस्य को अकबर ने समझा. उस ने शादीब्याह तक कर के हिंदुओं से घनिष्ठता और भी बढ़ा ली. उस का समय हिंदुओं के लिए स्वर्ण काल बन गया. इसी स्वर्ण काल में भक्ति के क्षेत्र में दो ब्राह्मण महाकवि, सूर और तुलसी, उतरे. कबीर आदि संतों की निर्गुण भक्ति की धारा, जो अखंड मानवता को सींचने जा रही थी, इन प्रतिभाशाली कवियों द्वारा सूखते हुए ब्राह्मणवाद की ओर सगुण भक्ति बना

32/10

कर मोड़ दी गई, जिस से समता एवं मानवता की खेती मर गई और विषमतामूलक ब्राह्मणवाद की मरती हुई खेती पुनः लहलहा उठी.

इस दिशा में महाकवि तुलसीदास अधिक सफल हुए क्योंकि बचपन से मृत्यु तक इन की जीवनचर्या ऐसी रही कि मूर्ख से विद्वान तक, गरीब से अमीर तक, सभी स्तर के व्यक्तियों से इन का घनिष्ठ संपर्क रहा. इन का ज्ञान और अनुभव महान बन गया. इन्होंने हिंदू समाज की नसनाड़ी भली भांति पहचानी. ब्राह्मणवाद पर आए हुए घोर संकट को भी इन्होंने समझा. उस संकट के निवारण के लिए इन्होंने जहांजहां जैसी आवश्यकता हुई, अपने काव्य-साहित्य में तोलतोल कर मनोरंजक निशाने लगाए, जिन के प्रभाव से जनता ओतप्रोत और उन के वशीभूत हो गई.

तुलसीदास ने आंखें मूंद कर ब्राह्मणवाद की परंपरा का समर्थन किया, शास्त्रकारों की उक्तियों को दोहराया. जन्मजात ब्राह्मण की महत्ता बतलाते हुए मनु ने कहा था :

1. ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिगच्छति. 1. 99.
(ब्राह्मण जन्म मात्र से पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ है.)
2. सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम् 1. 100.
(संसार में जो कुछ है, सब ब्राह्मण का है.)
3. अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत्. 9. 317.
(मूर्ख हो या विद्वान, ब्राह्मण महान देवता है.)
4. यद्यप्यनिष्टेषु वर्त्तते सर्वकर्मसु सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत्. 9. 319.
(यद्यपि ब्राह्मण सभी प्रकार के अनिष्ट (कुकर्म) करते हैं, तथापि वे सभी तरह पूज्य हैं, वे महान देवता हैं.)
5. ब्राह्मण संभवेनैव दैवानामपि दैवतम्.
(ब्राह्मण जन्म मात्र से देवों का भी देव है.)

इन्हीं भावों को दोहराते हुए तुलसीदास ने कहा :

1. शापत ताड़त परुष कहंता, विप्र पूज्य अस गावहिं संता.
(शापते, मारते, कठोर बोलते हुए भी ब्राह्मण पूज्य हैं.)
2. पूजिए विप्र शील गुण हीना, नहीं शूद्र सब कला प्रवीना.
(दुराचारी, गुणहीन ब्राह्मण को पूजो, कलाओं में कुशल शूद्र को नहीं.)
3. कवच अभेद विप्र गुरु पूजा, यहि सम विजय उपाय न दूजा.
(ब्राह्मण गुरु की पूजा कवच है, विजय का ऐसा दूसरा उपाय नहीं है.)
4. पूज्य एक जग में नहि दूजा, मन क्रम वचन विप्र पद पूजा.
(संसार में एक ही पूज्य है, दूसरा नहीं—सब तरह ब्राह्मण को पूजना.)

अब शूद्र के बारे में मनु कहते हैं :

1. एकजाति द्विजातिस्तु वाचा दारुण या क्षिपेत्,

जिह्वा या प्रान्पुवाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः.

(जो शूद्र ब्राह्मण को कड़ी बात कहे, राजा उस की जीभ काट ले क्योंकि वह नीच जाति में जन्मा है.)

2. नामजातिग्रहं तेषामभिद्रोहे न कुर्वतः,
निक्षेप्योऽयोमयो शंकुः ज्वलन्नास्यै दशांगुलः.

(यदि कोई शूद्र ब्राह्मण को कुवचन कहे तो उस के मुंह में लोहे की 10 अंगुलें आग में तपा कर ठोंक दो.)

3. धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः,
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः.

(जो शूद्र घमंड से ब्राह्मण को धर्मोपदेश देता है राजा उस के मुंह व कान में खौलता गरम तेल डलवा दे.)

4. विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्तयते.

(ब्राह्मण सेवा ही शूद्र का धर्म है.)

5. उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च,
पुलका चैव धान्यानां जीर्णश्चैव परिच्छदाः.

(ब्राह्मण अपने सेवक शूद्र को जूठा अन्न, फटेपुराने वस्त्र, अन्न के दाने, टूटे हुए बरतन दे.)

व्यासस्मृति कहती है :

वर्द्धकी नापितो गोपः आशापः कुंभकारकः,
वाणिक्कित कायस्थ मालाकार कुटुंबिनः,
वरटो मेद चांडालः दासो श्वपचकोलकाः,
एषां संभाषणात्स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम्.

(बढ़ई, नाई, ग्वाला, कुम्हार, बनिया, किरात, कायस्थ, भंगी, कोल, चंडाल, ये सब अंत्यज कहलाते हैं. इन से बात करने पर स्नान और इन को देख लेने पर सूर्य के दर्शन से शुद्धि होती है.)

ये हैं हमारे धार्मिक विधान, जो एक वर्ग के हिंदुओं द्वारा अन्य वर्गों के हिंदुओं के लिए रचे गए हैं और जिन का पालन कठपुतली हिंदू राजा, विशेषकर राजपूत राजा, आंखें मूंद कर करते रहे हैं. इसी परंपरा का निर्वाह करते हुए तुलसीदास कहते हैं :

1. जे वर्णाधम तेली कुम्हारा, श्वपच किरात कोल कलवारा.
2. ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी.
3. आभीर यवन किरात खल, श्वपचादि अति, अघ (पाप) रूप जे.

इस प्रकार महाकवि तुलसीदास ने ब्राह्मण शास्त्रकारों की अब्राह्मण समाज के प्रति उपेक्षा और घृणा की भावना का खुल कर समर्थन किया. उन्होंने वर्ण और जातिभेद की संकीर्णता से ऊपर उठ कर संत कबीर की तरह अखंड मानवता की ओर नहीं देखा तो न सही, अखंड हिंदुत्व की ओर भी नहीं देखा.

उन की नजर में केवल अपने वर्ग, ब्राह्मण वर्ग, की छोटी सी दुनिया रही और उन्होंने उसी को रामभक्ति के सहारे सुखीसंपन्न, सम्मानित बनाए रखने का प्रयास किया.

उत्तर प्रदेश तो विशेष तौर पर तुलसीदास का आंख मूंद कर अनुसरण करने लगा. बजाय दासता का विरोध करने के, महाकवि तुलसीदास ने उन्हें राजभक्ति सिखाई चाहे वह मुसलमान शासक ही क्यों न हो.

तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के प्रभाव से मुसलिम काल की मिटती हुई मूर्तिपूजा अंगरेज काल में बड़े जोरशोर से बढ़ी, यहां तक कि यह ग्रंथ स्वयं पूजा जाने लगा, कदमकदम पर मंदिर बनने लगे और लाखों निठल्ले लोग दूसरों की कमाई पर सम्मानपूर्वक पलने लगे. वर्तमान स्वराज्य काल में तो यह दशा है कि किसी सरकारी सड़क व रेलवे लाइन पर या किसी भी गलीकूचे में जहां भी किसी ने झंडा गाड़ दिया वहीं मूर्तिपूजा की सुलभ दुकानदारी शुरू हो गई.

उत्तर प्रदेश में तो हर शहर में मंदिरों की बाढ़ आ गई. रामकृष्ण आदि का सहारा ले कर गलीगली में मंदिर खुल गए.

तुलसी साहित्य से ब्राह्मण वर्ग का काफी उपकार हुआ परंतु अब्राह्मण शोषितदलित वर्गों की और भी दुर्दशा हुई, जिस से हिंदू समाज मुसलमान शासकों की निर्बलता का लाभ नहीं उठा सका और भारत अंगरेजों के हाथ में चला गया. यदि यूरोपीय झंझावात झकझोर कर जगा नहीं देता तो हिंदू समाज उसी दुर्दशा में बेहोश पड़ा रहता. आज समाज में जो परिवर्तन आया है वह यूरोपीय वैज्ञानिक संस्कृति के कारण है, न कि भारतीय संस्कृति के कारण. लेकिन आज भी हमारे धर्माध्यक्ष इन्हीं धर्मशास्त्रों की लीक पर चल रहे हैं.

तुलसीदास का जन्मस्थान उत्तर प्रदेश, और विशेषतः पूर्वी उत्तर प्रदेश, तो देश का सब से गरीब हिस्सा बन गया. पंजाब और महाराष्ट्र में जो उन्नति हुई उस की अवहेलना करते हुए उत्तर प्रदेश तुलसी के गुणगान और रामभक्ति में लगा रहा.

सच कहा जाए तो हमारे धर्मशास्त्र और तुलसी कृत 'रामचरितमानस' हमारी स्वतंत्रता को अभिशाप बना रहे हैं. हमारा संविधान कहता है कि राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति समान है, किसी से घृणा करना, किसी को अछूत मानना दंडनीय अपराध है, लेकिन असंख्य पंडेपुरोहित अपने धार्मिक विधान के हवाले दे कर अपने यजमानों के कानों में निरंतर फूंकते रहते हैं कि अमुक जाति से छू जाने पर पुरखे नरक में पड़ जाते हैं. आज जो कुछ हो रहा है वह घोर कलियुग की माया है. निश्चय ही चिरकाल की मानसिक दासता से ग्रस्त जनता अपने धर्म के विधान की बात मानेगी. इसी से आज हमारी आजादी स्वयं सी बन रही है. यह भारतीय जनतंत्र शासन की घोरतम विडंबना है ●●

साहित्यिक चोरी

साहित्यिक सूझबूझ साहित्याध्ययन से ही उद्भूत होती है, अतः कृतियों में पूर्ववर्ती रचनाओं के भावसाम्य और शब्दसाम्य आ ही जाते हैं. छोटे-मोटे और दोचार साम्यों को साहित्यिक चोरी की संज्ञा नहीं दी जा सकती. उन्नीसवीं शताब्दी में आंग्ल विद्वानों ने इसी आधार पर भारतीय संस्कृत कवियों का पौर्वापर्य निर्धारित किया था. उस समय बड़ा विवाद था कि पहले कौन हुआ? कालिदास या भवभूति, बाल्मीकि या व्यास, गीता या अश्वघोष. अतः इसी साम्य के आधार पर यह निर्णय किया गया तथा संस्कृत साहित्य का कालक्रम निर्धारित किया गया. अंगरेजों ने संस्कृत कवियों की सारी रचनाओं को छान-मारा किंतु गिनती के ही साम्य मिले. इस से प्रकट होता है कि एक-दूसरे के भावों, शब्दों, रूपकों तथा अलंकारों को बचा कर लिखने की कितनी सतर्कता उस समय के कवि बरतते थे जिस से उन पर किसी प्रकार से साहित्यिक स्तेय का आरोप न लग सके. भारतीय साहित्य के इतिहास में यदि साहस के साथ किसी ने इस युगावलंबिनी अस्तेय परंपरा को खंडित किया तथा उपमाओं, रूपकों और अलंकारों की चोरी प्रारंभ की तो वे 'मानस' के प्रणेता तुलसीदास ही थे.

और आश्चर्य तो यह है कि उन के ये चोरी के अलंकरण बहुत दिनों तक जौहरियों तक को भरमाए रहे और आज भी अनेक विद्वान समझते हैं कि ये तुलसी के अपने हैं. अलंकारों की चोरी चाहे लौकिक हो या काव्यशास्त्रीय, सदा ही गर्हित मानी गई है. साहित्यकारों ने एकदूसरे के कथानकों का खुल कर उपयोग किया, वर्णनशैलियों की नकल की, किंतु अलंकारों की चोरी से वे अपने को बचाते ही रहे क्योंकि इस प्रकार की चोरी पक्के सबूत के साथ पकड़ ली जाती है तथा अपयश का भागी बनना पड़ता है.

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के साथ मिश्रबंधुओं ने हिंदी समालोचना के युग का सूत्रपात किया. फिर बाबू श्यामसुंदर दास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल

का जमाना आया. सब ने ठिठक कर तुलसी को देखापरखा. 'मानस' की समलंकृत भाषा पर सब सहमे हुए थे कि ये अलंकरण तुलसी को कहां से मिल गए? वह भी उस युग में जब कि देशी भाषा अपने प्रारंभिक चरण में ही थी. किसी ने तुलसी को साहित्यगगन का मार्तंड घोषित किया, किसी ने चंद्र. पंडित रामनरेश त्रिपाठी संस्कृत के भी विद्वान थे और 'कविता कौमुदी भाग-3' के रूप में संस्कृत साहित्य का इतिहास भी प्रस्तुत कर चुके थे. किंतु वह भी यह न भांप सके कि तुलसी ने अलंकार संस्कृत से चुराए हैं. अपनी पुस्तक 'तुलसी और उन की कविता' में त्रिपाठीजी ने तुलसी को कवि के अतिरिक्त गणितज्ञ और ज्योतिषशास्त्र का भी विद्वान घोषित कर दिया. शायद उन के सम्मुख तुलसी की वह उपमा थी जो उन्होंने राम के वनगमन के प्रसंग में राम और लक्ष्मण के बीच सीता को देख कर दी थी:

उपमा बहुरि कहऊं जिय जोही, जनु बुध विधु बिच रोहिनि सोही.

—अयोध्या कांड 122-2

स्पष्ट है कि तुलसी; राम और लक्ष्मण के बीच सीता को देख अपना मन बहुत टटोल कर उपमा दे रहे हैं कि जैसे बुध और चंद्रमा के बीच रोहिणी नक्षत्र शोभित हो.

कहा जाता है कि आधुनिक ज्योतिषशास्त्र का जन्मदाता डेनमार्कनिवासी कोपरनिकस अपने जीवन भर बुध तारे को अपनी आंखों से न देख सका. वस्तुस्थिति यह है कि बुध सूर्य के अति निकट रहने वाला ग्रह है और सूर्योदय या सूर्यास्त के आसपास ही क्षीणप्रभ सा किसी प्रकार देखा जा सकता है. अब उसी के निकट में चंद्ररोहिणीसंयोग द्वितीया तिथि को फाल्गुनचैत्र में कभी संध्या समय पड़ सकता है और उसे उतने ही व्यायाम से देखा जा सकता है जितने से ईद का चांद देखा जाता है. तुलसी ने इस को मन टटोल कर (जियजोह) रामलक्ष्मणसीता से उपमा दे डाली. तब क्यों न पंडित रामनरेश त्रिपाठी उन्हें ज्योतिषशास्त्र का ज्ञाता मान लें! त्रिपाठीजी की भावनाओं को कैसी ठेस लगती यदि वे ब्रह्मरामायण का निम्नलिखित श्लोक देखते :

वसन्तकामयोर्मध्ये शोभते च यथा रतिः,
बुधचंद्रमसोर्मध्ये यथा राजति रोहिणी.

श्लोक के पहले चरण में वसंत और कामदेव के बीच रति वाली उपमा भी थी. तुलसी ने इस का भी उपयोग कर लिया :

बहुरि कहहुं छवि जसि मन बसई, जनु मधु मदन मध्य रति लसई.

—अयोध्या कांड 122-2

चूंकि वे जोर दे कर कह रहे हैं कि 'फिर कहता हूं, जैसा कि मेरे मन में बसा है' अतः आप ब्रह्मरामायण ढूंढने न जा कर मान लेते हैं कि उपमा चोरी की नहीं होगी, तुलसी की ही होगी. रामलक्ष्मणसीता को वन जाते देख कर तुलसी को एक भी मौलिक उपमा न सूझी, पता नहीं कैसा कविहृदय उन्होंने

पाया था. बस अनेक पुस्तकों से उपमाओं का संग्रह करना उन्होंने प्रारंभ कर दिया. द्रष्टव्य है :

उभय बीच सिय सोहति कैसे, ब्रह्म जीव बिच माया जैसे.
आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनोः. —अध्यात्म रामायण
लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत,
सोह मदन मुनि वेष जनु रति रितुराज समेत. —अयोध्या कांड 133
सीता लक्ष्मणसंयुक्तो रामो राजति मंदिरे,
वसंत रति सम्पन्नो मुनिवेषः स्मरो यथा. —आनंद रामायण
राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत,
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत. —अयोध्या कांड 141
सीता लक्ष्मण सम्पन्नः श्रीरामः पर्णमंदिरे,
भातीव चामरावत्यामिंद्रः स्त्रीपुत्रसंयुतः. —स्कंद रामायण
सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर,
भगति ग्यान बैराग्य जनु सोहत धरे शरीर. —अयोध्या कांड 321
सीतानुजयुतो रामो राजते पर्णमंदिरे,
भक्तिज्ञानविरागाश्च राजंते देहिनो यथा. —आनंद रामायण
अनुज जानकी सहित प्रभु. चाप बान धर राम,
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम. —अरण्य कांड 11
सीतया सह राम त्वं लक्ष्मणेन च वाणभृत्,
मदीये हृदयाकाशे वसेन्दुरिव सर्वदा. —सत्योपाख्यान

कितनी चिंतनीय स्थिति है कि मानस का कवि अपने कथानायक तथा आराध्य की छवि के सात चित्र उपस्थित करता है और सात के सात चोरी के, अपनी मौलिक अभिव्यक्ति एक भी नहीं. इस से बढ़ कर काव्यशास्त्रीय दिवालिएपन का उदाहरण और क्या हो सकता है?

हम सब दोषदर्शक जन तुलसी के शब्दों में 'खल' हैं जो बेकाम ही टांग अड़ाए फिर रहे हैं. हम लोगों की तुलसी को बड़ी चिंता थी, अतः प्रारंभ में ही उन्होंने हम लोगों की वंदना कर ली थी. उन्होंने हम आलोचकों के तेज की अग्नि से उपमा दी जो सब कुछ जला देता है. क्रोध की यमराज से उपमा दी. हम लोगों को अघ और अवगुन का धनी कुबेर बतलाया. भले काम में हम केतु के समान उदित होते हैं और अच्छा तभी तक रहता है जब तक कुंभकर्ण के समान सोते रहते हैं. हमारी उपमा हिमोपल(ओले) से दी गई है जो खेत को नष्ट कर के स्वयं भी गल जाते हैं. हमसब शेषनाग के समान सहस्र मुखों से दूसरे का दोषवर्णन करते हैं, पृथुराज के समान दस सहस्र कानों से दूसरे का दोषवर्णन सुनते हैं, इंद्र के समान हजारों आंखों से दूसरे का दोष देखते हैं, आदिआदि. हमें संतोष होता यदि ये सारी तुलसी की मौलिक उपमाएं ही होतीं. अरे! ये तो महारामायण के निम्न पदों से ग्रहण की गई हैं. मिला कर देख लीजिए :

खला वह्निसमा: क्रोधे यमराजसमा: खलु,
अघावगुणवित्तस्य धनिनश्च धनेशवत्.
तेज कृसानु रोष महिषेसा, अघअवगुन धन-धनी धनेसा.
हिताय सर्वलोकस्य केतूदयसमोदय:,
कुम्भकर्णसमा एते स्वपन्तु स्याच्छुभं यदि.
उदय केतु सम हित सबही के, कुंभकरन सम सोवत नीके.
परकार्यविनाशाय त्यजंति निजविग्रहम,
हिमोपला विनश्यन्ति नाशं कृत्वा यथा कृषे:.
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं, जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं.
वन्दे खलं शेषसमं सरोषं मुखै: सहस्रै: परदोषवार्ताम्,
करोति य: पापमथो शृणोति सहस्रकर्णै: पृथुराजतुल्य:.
बंदौ खल जस शेष सरोषा, सहस बदन बरनै परदोषा.
पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना, पर अघ सुनै सहस दस काना.
पुन: शक्रसमं वन्दे खलं वज्रप्रियं सदा,
सहस्रनयनैर्दोषं य: परस्य प्रपश्यति.
बहुरि शक्र सम बिनवौं तेही, संतत सुरानीक प्रिय जेही.
बचन बज्र जेहि सदा पियारा, सहस नयन परदोष निहारा.

खलवंदना करने में साधु तुलसी को अन्य पुस्तक का सहारा लेना पड़े तो इस हालत में क्षम्य है. किंतु यह क्या? साधु और सज्जनों के वर्णन में भी परावलंबिता :

साधु चरित सुभ चरित कपासू, निरस बिसद गुनमय फल जासू.
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा,
नीरसान्यपि शोभन्ते कार्पासस्य फलानि च,
येषां गुणमयं जन्म परेषां गुह्यगुप्तये. **--वशिष्ठ रामायण**
मुद मंगलमय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथराजू.
आनंदमंगलमय: सत्समाजो विराजते,
लोके यो जंगमो तीर्थराजो निगद्यते. **--वशिष्ठ संहिता**
राम भगति जहं सुरसरि धारा, सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा.
रामभक्तिर्हि यत्रास्ति पुण्या भागीरथी प्रभो,
विचारो ब्रह्मणश्चैव तत्प्रचार: सरस्वती. **--पुलस्त्य संहिता**
विधि निषेधमय कलिमल हरनी, करमकथा रवि नन्दिनि बरनी.
निषेधप्रचुरा कर्मकथा विधिमयी तथा,
वर्ण्यते यत्र कालिंदी कलिकल्मषनाशिनी. **--पुलस्त्य संहिता**
हरिहर कथा विराजति बेनी, सुनत सकल मुद मंगल देनी.
हरिशंकरयोर्यत्र कथावेणी विराजते,
या वै श्रवणमात्रेण हर्षमंगलदायिनी. **--पुलस्त्य संहिता**

वट विस्वास अचल निज धरमा, तीरथराज समाज सुकरमा.

स्वकीयो यस्तु विश्वासस्त्वक्षयो वट उच्यते,
क्षेत्रस्याचलता धर्मः पुण्यात्मानः समाजिनः. —पुलस्त्य संहिता

रामचरितमानस की पंक्तिपंक्ति में अलंकार तथा उपमाएं हैं. उन सब का उदाहरण किसी लेख में तो दिया नहीं जा सकता. किंतु अध्ययन से मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि 80 प्रतिशत उपमाएं दूसरी पुस्तकों से ग्रहण की गई हैं. मानसकार ने दो ही प्रकार के कार्य किए हैं, विभिन्न संस्कृत रामकाव्यों में से अपनी पसंद के पदों का संग्रह और फिर उन का अनुवाद यदि तुलसी को अब तक लोग अनुवादकमात्र मानते होते तो किसी प्रकार का विवाद न उत्पन्न होता किंतु बीचबीच में 'मतिअनुरूप', 'जस मन बसई', 'बहुरि बिचार करौं' जैसे पद डाल देने से एक व्यापक भ्रम उत्पन्न हुआ कि रामचरितमानस अनूदित ग्रंथ नहीं बल्कि तुलसी का मौलिक काव्य ग्रंथ है, और तब ये चोरी के अनुवाद चिंतनीय हो उठते हैं. इस प्रकार के संदर्भ जिन्हें ढूंढने हों उन्हें अधिक श्रम नहीं करना पड़ेगा. वे किसी संस्कृत के पुस्तकालय में जाएं और रामकथा पर उपलब्ध कोई भी संस्कृत ग्रंथ उठा लें और उसे रामचरितमानस से मिला कर पढ़ते जाएं. समान प्रसंग में अनुकरण के उदाहरण मिलते जाएंगे. एक पुस्तक समाप्त कर इसी प्रकार दूसरी, फिर तीसरी उठाएं, उदाहरणों के बोझ से आप घबरा उठेंगे. मात्र 15-20 रामकथाकाव्यों के ही अवलोकन पर आप को यह भलीभांति ज्ञात हो जाएगा कि 'मानस' की सुललित रचना का मर्म क्या है?

गलत धारणाएं

जो समालोचक इस प्रकार से अध्ययन नहीं करते वे भ्रांति में फंस जाते हैं. हड़बड़ी में हम असंबद्ध प्रलाप रक बैठते हैं. इस मनोवैज्ञानिक सत्य का साहित्यिक उदाहरण रावण का वह कथन है जो सेतुबंध के समाचार पर उस के दसों मुखों से घबराहट में निकल पड़ा था—

सुनत स्रवन बारिधि बंधाना, दसमुख बोलि उठा अकुलाना.
बांध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु वारीस,
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस.

अब इस उक्तिवैचित्र्य पर यदि कोई समालोचक तुलसी को मनोविज्ञान का विद्वान बताने लग जाए, मानव स्वभाव के अध्ययन में उन की गहरी पैठ की तारीफ करने लग जाए तो वह भ्रमित हो गया. यदि उस ने इस प्रकार का अध्ययन किया होता तो निम्नलिखित श्लोक उस के दृष्टिपथ में आया होता जिस का मात्र अनुवाद तुलसी ने प्रस्तुत कर दिया है :

श्रुत्वा सागरवंधनं दशशिरः सर्वैर्मुखैरेकदा,
तूर्णं पृच्छति कीर्तिकान् स चकितो भीत्या परं संभ्रमात्.
बद्धः सत्यपांनिधिर्जलनिधिः कीलालधिस्तोयार्धः,
पाथोधिर्जलनिधिः पयोधिरुदधी वारांनिधिर्वारिधिः.

मैं एक समालोचक का मत पढ़ रहा था. उन्होंने लिखा था कि तुलसी के संमुख सीता के नखशिखवर्णन की समस्या थी. काव्यकार अपने काव्य की नायिका का नखशिखवर्णन न करे यह कैसे हो सकता है. किंतु तुलसी की काव्यनायिका सीता जगज्जननी जो थीं. तुलसी जननी का नखशिखवर्णन करें! तुलसी वह गलती नहीं करना चाहते थे जो कालीदास "कुमारसंभव" में कर गए थे कि "जगत: पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ" लिख कर शिवपार्वती को पितामाता घोषित कर के भी आठवें सर्ग में उन का संभोगवर्णन भी कर डाला. मातापिता के अंतरंग संबंधों का वर्णन पुत्र करे यह कहां तक श्लील होगा, अत: तुलसी ने नखशिखवर्णन की अनोखी रीति निकाली. सीता के नखशिखवर्णन के अधिकारी केवल राम ही हो सकते थे, मर्यादा का तकाजा था और अवसर! हुलिया तो पूरा बतलाना पड़ता है जब वस्तु गायब हो गई हो. सीताहरण के बाद राम ढूंढने चलते हैं, लतातरु से पता पूछते हैं. हुलिया बतलाना पड़ेगा या नहीं? और यहां तुलसी राम के मुख से सीता का नखशिखवर्णन करा देते हैं. कितना सटीक अवसरान्वेषण है :

हे खग मृग हे मधुकर स्रेनी, तुम देखी सीता मृगनैनी.
खजन सुक कपोत मृग मीना, मधुप निकर कोकिला प्रवीना.
कुंद कली दाड़िम दामिनी, कमल सरद ससि अहिभामिनी.
वरुन पास मनसिज धनु हंसा, गज केहरि निज सुनत प्रशंसा.
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं, नेकु न संक सकुच मन माहीं.
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू, हरषे सकल पाइ जनु राजू.

—अरण्य कांड 29

यह विप्रलंभ श्रृंगारवर्णन सचमुच जिस कवि का है वह श्रद्धास्पद है और अवसरान्वेण, कथन का आयोजन सब कुछ प्रशंसनीय है, इस में दो मत नहीं. किंतु यह तुलसी का हो तब तो! समालोचक को हनुमन्नाटक के उसी प्रसंग का निम्नलिखित श्लोकद्वय देखना चाहिए था जहां से मात्र अनुवाद कर के तुलसी ने अपना काव्यकलेवर अलंकृत कर लिया :

रे वृक्षा: पर्वतस्था गिरिग़हनलता वायुना वीज्यमाना,
रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनय: शोकशुक्रेण दग्ध:.
बिंबोष्ठी चारुनेत्री सुविपुलजघना बद्धनागेंद्रकांचीं,
हा सीता केन नीता मम हृदयगता को भवान्केन दृष्टा.
मध्योऽयं हरिभि: स्मितं हिमरुचा नेत्रे कुरंगीगणै:,
कांतिश्चम्पककुड्मलै: कलरवो हाहा हृत: कोकिलै:.
मातंगैर्गमनं कथं कथमहो हंसैर्विभज्याधुना,
कान्तारे सकलैर्विनाश्य पशुभ्रन्नीतासि भो मैथिलि.

सीताहरण के ही प्रसंग की अन्य उपमाएं देखिए. सीता को रावण ले जाना चाहता है, जैसे सिंहनी को खरगोश ले जाना चाहे या जैसे अग्निहोम

में देवताओं के लिए बने पुरोडाश को गधा खा जाना चाहे. दोनों उपमाएं अध्यात्म रामायण की हैं :

जिमि हरि बधुहि छुद्र सस चाहा,
पुरोडास चह रासभ खावा.
न मां धर्षयितुं शक्तो हरेर्भार्यां शशो यथा,
रासभो मंत्रपूतं तु पुरोडाशमिवाध्वरे.

सीता रावण के साथ कुररी तरह विलाप करती हुई गई:

विलपति अति कुररी की नाईं.

यहां कालिदास सहायता को आ गए हैं :

सा मुक्तकंठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द्र विग्ना कुररीव भूयः. —रघुवंश

छोटीछोटी अनेक चुटीली उपमाओं को तुलसी ने आंख मूंद कर उतार लिया है, जैसे उन्हें कोई चिंता ही न रही हो कि कभी लोग इन्हें पकड़ेंगे तो **क्या कहेंगे? अयोध्या लौटने पर सुमंत की कैसी स्थिति थी :**

मांजि हाथ सिर धुनि पछिताई, मनहु कृपन धन रासि गंवाई.
—अयोध्या कांड 143

हस्तयोर्मर्दनं कृत्वा शिरः संताड्य चाकरोत्,
पश्चात्तापं महामंत्री नष्टेऽर्थे कृपणो यथा. —आनंद रामायण

विप्र विवेकी वेदविद संमत साधु सुजाति,
जिमि धोख मद पान कर सचिव सोच तेहि भांति. —अयोध्या कांड 144

विवेकी वेदविद् विप्रः सुजातिः साधुसम्मतः,
यथा च मदिरां पीत्वा मंत्री शोचति वै तथा. —वशिष्ठ रामायण

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी, पति देवता करम मन बानी.
रहै करमबस परिहरि नाहू, सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू.

यथा कुलोद्भवा साध्वी प्रवीणा पतिदेवता,
मनसा कर्मणा वाचा नारी कर्मवशात् प्रियम्,
त्यक्त्वा वियोगजं दुःखं सहते मंत्रिणस्तथा. —वशिष्ठ रामायण

हृदय न विदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतम नीर,
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि जम जातना सरीर. —अयोध्या कांड 146

शुष्के नीरे यथा पंकं तथा हृन्न विदीयते,
अतो जानामि दैवेन दत्ता मे यमयातना. —पुलस्त्य संहिता

दशरथ अयोध्या में किस शोचनीय अवस्था में थे :

लेइ उसांस सोच एहि भांती, सुरपुर ते जनु खसेउ जजाती.

खैर, यह तो वाल्मीकि रामायण की उपमा थी और इस पर तो तुलसी का मौरुसी हक था :

अतदर्हं महाराजं शयानमतथोचितम्,
ययातिमिव पुण्यांते देवलोकात्परिच्युतम्.

राम वन से लौट कर अयोध्या आ रहे हैं. अयोध्यावासी स्वागत में कोलाहल कर रहे हैं. तुलसी ने समुद्र में ज्वार उठते देखा हो या न देखा हो, चंपू रामायण में दी गई उपमा की नकल कर के समालोचकों की दृष्टि में पर्यटक भी बन गए :

राका ससि रघुपतिपुर सिंधु देखि हरषान,
बढ़्यौ कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान. —उत्तर कांड 3

राकाशशिनमिव रघुपतिमालोक्य नगरसिंधु,
वनितावीचिभिः परिरम्यमाणो निर्भरामोद विदत.

नारदमोह प्रकरण में इंद्र की स्वार्थपरता पर करारा व्यंग्य है और बड़ी अच्छी उपमा दी गई है जिसे लोगों ने रोजमर्रा के प्रयोग में भी तुलसी के नाम पर ग्रहण कर लिया है :

सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज,
छीन लेइ जनि जानि जड़ तिमि सुरपतिह न लाज. —बाल कांड 125

किंतु वे लोग यह नहीं जानते कि यह शिवपुराण से अनूदित है :

शुष्कमस्थि गृहीत्वा श्वा सिंह दृष्ट्वा पलायितः,
विचार्येत्थं स्वमनसि किमिदं न ग्रहीष्यति.

अनुवाद की भाषागत भूल भी देखिए. तुलसी श्वान द्वारा सिंह के देखने को 'निरखि' शब्द से व्यक्त करते हैं. निरखि में प्रशंसा तथा मुग्धता का भाव होता है जो यहां अपेक्षित नहीं. अतः 'स्वान निरखि मृगराज', 'श्वा सिंह दृष्ट्वा' का सही अनुवाद न बन पड़ा.

इन उदाहरणों से पिष्टपेषण करना ठीक नहीं. अतः और उदाहरण प्रस्तुत करना उचित नहीं, और आवश्यक भी नहीं. जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है पाठक रामकथा की कोई भी संस्कृत पुस्तक उठा कर देख लें और अपने को आश्वस्त कर लें कि तुलसी ने कितनी अधिक मात्रा में दूसरे कवियों के अलंकार चुराए हैं. मूल कथानक की बात और थी. किंतु यह क्या? कविकर्म की जो एकमात्र उपलब्धि है, और कवि की जो नितांत व्यक्तिगत मौलिकता है उस का भी अनुवाद और वह भी बिना नाम लिए, कृतज्ञताप्रकाश किए! साहित्य का यह गर्हित अपराध है और तुलसी इस के अभियुक्त हैं. ●

तुलसी का विद्रोह

भले ही तुलसीदास उच्च कोटि के भक्त और महाकवि रहे हों, लेकिन जहां तक उन की समाजनीति का संबंध है, उन से बढ़ कर दकियानूसी धार्मिक प्रवृत्तियों का अंधानुकरण करने वाला और कोई नहीं हुआ. यह ठीक है कि तुलसी में अपने युग की सामाजिक राजनीति के प्रति तीव्र विद्रोह की भावना थी, पर उन का विद्रोह नए समाज की रचना के लक्ष्य को ले कर नहीं, बल्कि दकियानूसी ब्राह्मणवादी व्यवस्थाओं को फिर से स्थापित करने के लिए था. यद्यपि अनेक बार तुलसी के आलोचकों ने इसे दलीलें दे कर साबित किया है तथा उन के प्रशंसकों ने भी कभी मुक्त स्वर में तो कभी दबे स्वर में इसे स्वीकारा है, फिर भी व्यवहार में अकसर तुलसी को इस आरोप से बचा कर उन्हें हिंदू जाति व संस्कृति के रक्षक और दलित मानवता के उद्धारक के रूप में याद किया जाता है.

कुछ प्रगतिशील आलोचक तुलसी की तरफदारी करते हुए जिस ढंग से उन के केवल सबल पक्ष को ही उभारते हैं और उन के दुर्बल पक्ष से या तो बिलकुल कन्नी काट जाते हैं या उसे महत्त्वहीन कह कर नजरंदाज कर देते हैं. उस से धैर्यवान पाठकों तक को बड़ा क्षोभ होता है.

तुलसीदास के प्रशंसक जो कुछ भी कहते हों, पर यह निश्चित है कि यदि तुलसी पुनरुद्धारक थे तो ब्राह्मण संस्कृति के, मर्यादा के, पोषक थे तो जातिप्रथा की विभेदपूर्ण मर्यादा के, और नायक थे तो दलितों के नहीं, बल्कि ब्राह्मणशाही आंदोलन के. इस संदर्भ में उन के काव्यों—विशेष रूप से 'रामचरितमानस' का बेलाग अध्ययन हमें इसी नतीजे की ओर ले जाता है.

तुलसी की अभिव्यक्ति के सामाजिक आधार भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार रहे. भक्ति आंदोलन मूल रूप में एक ओर सदियों से सामंतशाही व पुरोहित वर्ग के शोषण तथा दूसरी ओर विदेशियों के अत्याचार के दोहरे चक्र के नीचे पिसती उस भारतीय जनता का विद्रोही स्वर था, जो अपनी मुक्ति के लिए बेकरार हो उठी थी.

यही कारण है कि शुरू में इस आंदोलन ने वह सब कुछ तीखे स्वर में नकार दिया, जो गलत था, बंधन और विषमता में डालने वाला था. नामदेव, रैदास, नानक और कबीर आदि के स्वर में शोषित जनता जाग्रत हो उठी. पंडितों व मुल्लाओं तथा मुसलिम व हिंदू सामंतों की शक्ति निर्बल होने लगी और वे मानव मूल्य स्थापित होने लगे जो दोनों धर्मों में मानवहित को ही सर्वश्रेष्ठ कहते थे. लेकिन अफसोस, भक्ति आंदोलन का यह प्रवाह ऐतिहासिक कारणों से बहुत दिनों तक चल न सका.

अकबर ने मुसलमान पुरोहित वर्ग की शक्ति को कम करने के लिए हिंदू सामंतों को मिलाया और उन्हें ऊंचेऊंचे पद दिए. हिंदुओं को धार्मिक स्वतंत्रता और यहां तक कि पुराने और नए मंदिरों को बनवाने की छूट भी मिली. मथुरा के पठान और धर्मांध शासक को हटा कर उस ने बल्लभाचार्य को अपना मित्र बनाया.

इस मुसलिम और हिंदू सामंती मिलीभगत का फल यह हुआ कि भक्ति आंदोलन में जननेतृत्व समाप्त हो गया और सामंतवाद के पोषक ब्राह्मणवाद को वैष्णव सुविधाओं के आधार पर फिर पनपने का मौका मिला.

ब्राह्मणवाद के प्रवक्ता

चूंकि अब हिंदुओं का इसलाम के अंतर्गत जाने का खतरा पहले से कम हो गया था इसलिए प्राचीन वेदमर्यादा यानी वर्णाश्रमयुक्त ब्राह्मण नेतृत्व वाली सामाजिक मर्यादा के गौरव गान फिर आरंभ हुए और हिंदू समाज को परंपरागत, किंतु कुछ उदार ब्राह्मणवादी आधारों पर पुनर्गठित करने की कोशिश की गई. कबीर आदि ने पुराने बंधनों को तोड़ने के लिए विद्रोह का नारा बुलंद किया था परंतु जिन पर इस का बहुत कुछ प्रभाव पड़ भी रहा था, वे कुछ छूटें दे कर फिर कस दिए गए. कहने की आवश्यकता नहीं कि तुलसीदास इस उदार ब्राह्मणवादी आंदोलन के सब से बड़े प्रवक्ता थे.

यह बात उस समय और साफ हो जाती है, जब हम कबीर आदि की पूर्ववर्ती निर्गुण भक्तिधारा की तुलना सावधानी से तुलसी की सगुण भक्तिधारा से करते हैं. यह सही है कि सगुण भक्तिधारा ने निर्गुण भक्तिधारा के दबाव से उस की अनेक जनवादी बातें स्वीकार कीं, लेकिन अपने पुरातनवादी रूप के द्वारा सामाजिक क्षेत्र में उस की क्रांतिकारिता को कुंठित कर के समय की सूई को पीछे ले जाने की कोशिश भी की.

फिर इसलामी खतरे के कारण शोषित और दलित जनता को उस समय कुछ छूटें मिलीं, लेकिन बाद में जब यह संकट टल गया तो ये छूटें एकाएक कर के छीन ली गईं. इस की पुष्टि इस बात से हो सकती है कि जाति प्रथा जितनी दृढ़ आज है, उतनी नामदेव दर्जी, सेना नाई, चोख कहार, रैदास चमार और कबीर जुलाहे के समय में न थी. ('स्थायी मूल्य और मूल्यांकन' :

डाक्टर रामविलास शर्मा, पृष्ठ 36.)

वास्तव में हमारे यहां ब्राह्मण नेतृत्व बहुत चतुर और प्रबुद्ध रहा है. उस ने परिस्थितियों के भंवर में पड़ कर समयसमय पर स्वयं को बचाने के लिए वर्णव्यवस्था को उदार बनाने की कोशिश भी की है किंतु जहां दबाव कम हुआ, उस ने उसे चुपके से फिर ज्यों का त्यों बना देने में तनिक देर नहीं लगाई.

प्रतिभा पर कलंक

इस संदर्भ में जब हम तुलसी के काव्य की छानबीन करते हैं तो उन की नीयत अपनेआप स्पष्ट हो जाती है. वर्णव्यवस्था का समर्थन, ब्राह्मणों के महात्म्य का वर्णन तथा शूद्र नारी की निंदा के बारे में जो अनेक उक्तियां उन के काव्यों में, विशेषतः 'रामचरितमानस' में देखने को मिलती हैं, वे उन की उज्ज्वल काव्य प्रतिभा पर निश्चय ही कलंक हैं. इन से ही क्षुब्ध हो कर अकसर उन पर वर्णव्यवस्था का भोंडा समर्थन व पंडेपुजारियों की वकालत करने तथा जातीय रागद्वेष की हामी भरने का आरोप लगाया जाता है, जो असत्य नहीं है. शूद्र निंदा संबंधी उन के कथन वाकई बड़े अशोभनीय हैं.

इन आरोपों को सिद्ध करने के लिए तुलसी के काव्य से अनेक उद्धरण सरलता से दिए जा सकते हैं. जहां तक कलिकाल के प्रभाव से वर्णाश्रम हानि तथा देवविप्रश्रुति विरोध की बात का संबंध है, वह इस विषय पर इतना और इतनी बार कहते हैं कि शक होने लगता है कि कहीं उन की नजरों में कलियुग की मुख्य पीड़ा वर्णाश्रम हानि तथा देवविप्रश्रुति विरोध आदि ही तो नहीं है.

मानसकार शोषित जनता के उत्पीड़न से उतना व्यथित नहीं लगता, जितना ब्राह्मण संस्कृति के विघटन से परेशान मालूम होता है. विप्र (ब्राह्मण), धेनु (गाय), सुर आदि के प्रति तुलसी के मन में विशेष पक्षपात का भाव है. यह बात इस से साबित हो जाती है कि 'रामचरितमानस' में उन्होंने इस बात की बारबार घोषणा की है कि राम इन के हितैषी हैं, इन के लिए ही जन्म लेते हैं और संकट सहते हैं.

गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रियकंता.—बालकांड, 185.1

(हे गायों व ब्राह्मणों का हित करने वाले, असुरों का विनाश करने वाले, समुद्र की कन्या--लक्ष्मी के प्रिय स्वामी, आप की जय हो.)

जय सुर विप्र धेनु हितकारी, जय मद मोह कोह भ्रम हारी.

--बालकांड, 284.1

(हे देवता, ब्राह्मण और गाय का हित करने वाले, आप की जय हो. हे मद, मोह, क्रोध और भ्रम को हरने वाले, आप की जय हो.)

विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार.—बालकांड, 192

(ब्राह्मण, गाय, देवता और संतों के लिए भगवान ने मनुष्य का अवतार लिया.)

भगति भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल,
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहि जगजाल. —अयोध्याकांड, 93

(कृपालु रामचंद्रजी भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गाय और देवताओं के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण कर के लीलाएं करते हैं, जिन के सुनने से जगत के जंजाल मिट जाते हैं.)

गो द्विज धेनु देव हितकारी, कृपासिंध मानुष तन धारी.—सुंदरकांड, 38.2

(कृपा के समुद्र भगवान ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गाय और देवताओं का हित करने के लिए ही मनुष्य शरीर धारण किया है.)

निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गो द्विज लागि.—किष्किंधाकांड, 26

(देवता, पृथ्वी, गाय और ब्राह्मणों के लिए प्रभु अपनी इच्छा से अवतार लेते हैं.)

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं, विप्र धेनु हित संकट सहहीं.
—अयोध्याकांड, 130.1

(जो अवगुणों को छोड़ कर सब के गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गाय के लिए संकट सहते हैं.)

'रामचरितमानस' में ही प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से ब्राह्मण महातम्य का इतना और ऐसा वर्णन हुआ है कि कभीकभी लगने लगता है कि उस में रामपदप्रेम यानी राम की श्रेष्ठता से बढ़ कर न सही, उस से थोड़ा ही घट कर यदि कुछ है तो विप्रपदप्रेम यानी ब्राह्मण की श्रेष्ठता ही है. उदाहरणार्थ कुछ अंश उद्धृत हैं :

मंगल मूल विप्र परितोषू, दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू.
--अयोध्याकांड, 125.2

(ब्राह्मणों का संतोष सब मंगलों की जड़ है और भूदेव ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों कुलों को भस्म कर देता है.)

भगति कि साधन कहउं बखानी, सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी.
प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीती, निजनिज कर्म निरत श्रुति रीती.
--अरण्यकांड, 15.3

(मैं भक्ति के साधन विस्तार से कहता हूं. यह सुगम मार्ग है जिस से जीव मुझे तो सहज ही पा जाते हैं. पहले तो ब्राह्मणों के चरणों में अत्यंत प्रीति हो और वेद की रीति के अनुसार अपनेअपने वर्णाश्रम कर्मों में लगा रहे.)

मन क्रम वचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव,
मोहि समेत विरंचि सिव, बस ताके सब देव. —अरण्यकांड, 33

(मन, वचन और कर्म से कपट छोड़ कर जो भूदेव ब्राह्मणों की सेवा करता है, मुझ समेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उस के वश में हो जाते हैं.)

ते नर प्रान समान मम, जिन्ह के द्विज पद प्रेम. —सुंदरकांड, 48

(जिन्हें ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है, वे मनुष्य मेरे प्राणों के समान हैं.)

पुन्य एक जग महुं नहिं दूजा, मन क्रम वचन विप्र पद पूजा.
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा, जो तजि कपटु करई द्विज सेवा.

—उत्तरकांड, 44.4

(जगत में पुण्य एक ही है, दूसरा नहीं. वह है—मन, कर्म और वचन से ब्राह्मणों के चरणों की पूजा करना. जो कपट का त्याग कर के ब्राह्मणों की सेवा करता है, उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं.)

सुनु मम वचन सत्य अब भाई, हरितोषन व्रत द्विज सेवकाई.

—उत्तरकांड, 108.6

(हे भाई, अब मेरा सत्य वचन सुनो, द्विजों की सेवा ही भगवान को प्रसन्न करने वाला व्रत है.)

द्विज निंदक बहु नरक भोग करि, जग जनमइ बायस सरीर धरि.

—उत्तरकांड, 120.12

(ब्राह्मणों की निंदा करने वाला व्यक्ति बहुत से नरक भोग कर फिर जगत में कौए का शरीर धारण कर के जन्म लेता है.)

ब्राह्मणों के महत्त्व की स्थापना का यह प्रयास सारे हिंदी साहित्य में अनूठा है. किंतु तुलसी को इतने से ही संतोष न हुआ. ब्राह्मण की श्रेष्ठता की स्थापना के लिए उन्हें शूद्र निंदा भी आवश्यक लगी. यह उन का सब से घिनौना पक्ष है. 'रामचरितमानस' के ये शब्द किसी महाकवि के प्रतीत न हो कर एक साधारण असहिष्णु कट्टर ब्राह्मण के मालूम पड़ते हैं :

सापत ताड़त परुष कहंता, विप्र पूज्य अस गावहिं संता.
पूजिअ विप्र सील गुन हीना, सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना.

—अरण्यकांड, 33.1

(शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूजनीय है, ऐसा संत कहते हैं. शील और गुण से हीन ब्राह्मण भी पूजनीय है लेकिन गुणों से युक्त, ज्ञान में निपुण शूद्र भी पूजनीय नहीं है.)

ढोल गंवार सूद्र पसु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी.

—सुंदरकांड, 58.3

(ढोल, गंवार, शूद्र, पशु और नारी ये सब दंड के अधिकारी हैं.)

सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना, बैठि बरासन कहहिं पुराना.

—उत्तरकांड, 99.5

(शूद्र नाना प्रकार के जपतप और व्रत करते हैं तथा ऊंचे आसन—व्यास गद्दी—पर बैठ कर पुराण कहते हैं.)

(नोट : ऊपर दिए गए सारे उद्धरण और उन के अर्थ गीता प्रेस, गोरखपुर के 'रामचरितमानस' (सटीक) के मझले आकार वाले 17वें संस्करण मे उद्धृत हैं.)

जातिप्रथा के समर्थक

तुलसी प्राचीन वर्णव्यवस्था के जिस गुणगान द्वारा ब्राह्मणों को बचाने की असफल कोशिश करते हैं, उस से उन के परवर्ती दूषित रूप यानी जातिप्रथा के ही कट्टर समर्थक सिद्ध होते हैं. उन के काव्यों में पाई जाने वाली अनेक उक्तियां उन की घोर अगतिशील और यथास्थितिवादिता को बेनकाब करने के लिए काफी हैं. फिर भी हमारे कतिपय आलोचकों के मन में यह भ्रम बना हुआ है कि तुलसीदास में उदार और जनवादी तत्त्व भली प्रकार मौजूद हैं. इस की पुष्टि करने के लिए राम द्वारा शबरी के यहां जा कर उस के जूठे बेर खाने, वशिष्ठ द्वारा केवट को गले लगाने, निषाद को राम के मुख से 'भरत सम' भ्राता कहलवाने, 'कवितावली' (उत्तरकांड, 106-107) और 'विनयपत्रिका' (पद 76, 106) में जातिवाद के प्रति लापरवाही और व्यंग्योक्तियां करने आदि के प्रमाण दिए जाते हैं.

किंतु यहां यह प्रश्न उठता है कि जब तुलसी जातिपांति और ऊंचनीच के भेदभाव के हक में नहीं थे तो उन्होंने अपनी रचनाओं में वर्णव्यवस्था की हानि पर पीड़ा क्यों व्यक्त की है? विप्रपद पूजा को बहुत बड़ा धर्म क्यों कहा है? और शूद्रों द्वारा अपना वर्ण त्यागने तथा ब्राह्मणों की बराबरी करने पर क्षोभ क्यों प्रकट किया है? उन के विचारों में यह अंतर्विरोध कैसा? क्या इस की सफाई में कोई व्याख्या हो सकती है, कोई स्पष्टीकरण हो सकता है?

तत्कालीन वातावरण

इसे समझ लेना बहुत कठिन नहीं है, बशर्ते हम तुलसी के युग के सामाजिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक वातावरण को भली प्रकार समझ लें. यह बात हम में से बहुत से लोगों को आज कितनी ही तीखी क्यों न लगे, लेकिन इस में जरा भी शक नहीं है कि धार्मिक व उपासना संबंधी रियायतों व छूटों के कारण सामाजिक कट्टरता व विषमता की रक्षा की कोशिश हमारे सांस्कृतिक इतिहास की मुख्य प्रवृत्ति रही है. तत्कालीन भक्ति आंदोलन को बढ़ावा देने वाले रामानुजाचार्य तथा रामानंद जैसे व्यक्ति भी इस से बच न सके. इन की भक्ति भी केवल उच्च वर्ण वालों के वास्ते थी, शूद्रों के लिए तो उन्होंने प्रपत्ति मार्ग की व्यवस्था की थी जो भक्ति का एक निम्न विकल्प था.

रामानंद ने हालांकि भक्ति का द्वार सब के लिए खोल दिया, लेकिन वेद पढ़ने का अधिकार शूद्रों के लिए अमान्य ठहराया तथा जातिप्रथा को सामाजिक व्यवस्था के रूप में कायम रखा.

यद्यपि तुलसी इसी परंपरा का अनुगमन कर रहे थे, फिर भी जहां रामानुजाचार्य तथा रामानंद को अपने समय में थोड़ा आगे होने के कारण क्षम्य माना

जा सकता है, वहां तुलसी को ऐतिहासिक दृष्टि से उन के अंधानुकरण के आरोप से बरी नहीं किया जा सकता. इस के अलावा मानव मात्र की सामाजिक समता की पुकार भी, जिस का बीड़ा पूर्ववर्ती कबीर, नामदेव, नानक आदि ने उठाया था, तुलसी में कहीं दिखाई नहीं देती. उन्होंने शूद्रों को अधिक से अधिक भक्ति के क्षेत्र में छूट दी थी. उन के विचारों में पाए जाने वाले अंतर्विरोध की यही तर्कसंगत व्याख्या हो सकती है.

नारी के प्रति संकीर्णता

नारी के प्रति घोर संकुचित मनोवृत्ति तुलसी के दकियानूसी सामाजिक अंधानुकरण का एक और पक्का सबूत है. उन के 'रामचरितमानस' तथा अन्य ग्रंथों में विभिन्न प्रसंगों में ऐसी अनेक उक्तियां हैं जो किसी भी देश और काल की नारी के प्रति किसी भी रूप में न्यायिक नहीं हो सकतीं. उन्होंने नारी की प्रकृति, उस के चरित्र, बुद्धिविवेक, आचारविचार एवं व्यवहार सभी की निंदा की है.

तुलसी के समर्थकों के द्वारा कभीकभी इन निंदाभरी उक्तियों को संतमत का प्रभाव तथा परंपरा का अनुगमन मात्र कह कर टालने और हलका कर के प्रस्तुत करने की कोशिश की जाती है. किंतु ऐसे लोगों से यहां यह पूछा जा सकता है कि संतमत और परंपरा में अन्य अनेक बातें भी तो थीं, आखिर तुलसी ने उन्हें क्यों नहीं अपनाया? नारी के संबंध में ही बहुत पहले कहा गया था: "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता." इस धारणा को वह परंपरा के नाते ग्रहण कर सकते थे पर उन्होंने नारी की पूजा के बदले उस की हीनता व ताड़ना आदि का ही उल्लेख अधिक किया.

असल बात यह है कि नारी के बारे में तुलसी की दृष्टि अधिकांश में मध्यकाल के साधारण पुरुष की ही धारणा है. शूद्रों के समान नारी को भी तुलसीदास ने केवल भक्ति के क्षेत्र में समानाधिकार दिया था, सामाजिक क्षेत्र में नहीं.

यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं:

कैलाश निवास के समय जब पार्वती शिव से रामकथा सुनना चाहती हैं, तब तुलसी पार्वती से कहलवाते हैं :

अब मोहि आपनि किंकरी जानी, जदपि सहज जड़ नारी अयानी.
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहु, जो मो पर प्रसन्न प्रभु अहहु.

(यद्यपि स्त्रियां स्वभाव से ही मूर्ख और ज्ञानहीन होती हैं, पर अब मुझे अपनी दासी जान कर, यदि मुझ पर प्रसन्न हैं, तो जो कुछ मैं ने आप से पूछा है, वह सब कहें.)

दशरथ की मृत्यु के पश्चात तुलसीदास भरत से कहलवाते हैं :

विधिहु न नारि हृदयगति जानी, सकल कपट अध अवगुन खानी.

(स्त्री के हृदय की गति को विधाता भी नहीं जान सकता. स्त्री का हृदय सभी तरह के कपट, पाप और अवगुणों की खान होता है.)

नारी का अपमान

सीताहरण के बाद राम को रास्ते में भीलनी मिलती है. उस समय वह तुलसीदास के इशारे पर नारी निंदा करती है :

अधम से अधम अधम अति नारी, तिन्ह मंह मैं मतिमंद अधारी.

(हे पाप का नाश करने वाले, जो नीचों से नीच हैं, स्त्रियां उन से भी नीच हैं. मैं भी मंदबुद्धि और गंवारिन हूं.)

केवल इतना ही नहीं, एक स्थान पर स्वयं राम कहते हैं :

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि.

(स्त्रियां अवगुणों की जड़, पीड़ा देने वाली और सब दुखों की खान हैं.)

अंत में निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भले ही भक्ति के क्षेत्र में तुलसी ने उदार दृष्टि अपनाई हो, पर सामाजिक विधान में उन्होंने जो एक विशेष वर्ग को विशेषाधिकार दिए, शूद्रों व नारियों को निचली श्रेणी दी तथा मर्यादा के नाम पर दूषित जाति प्रथा की तरफदारी की, वह घोर दकियानूसी होने के कारण अक्षम्य है. कुल मिला कर उन का दृष्टिकोण प्रबुद्ध ब्राह्मणवाद, कट्टर ब्राह्मणवाद से भी अधिक खतरनाक सिद्ध हुआ क्योंकि इस ने ब्राह्मणशाही के उखड़ते हुए पैर एक बार फिर सदियों के लिए देश की धरती पर मजबूती से जमा दिए.

तुलसी का मानस

संवत 2031 में, रामनवमी के दिन तुलसी द्वारा रचित 'रामचरित मानस' के चार सौ वर्ष पूरे हो गए. राष्ट्रीय स्तर पर 'रामचरित मानस' के चतुश्शती समारोह का आयोजन हुआ. इस के लिए एक राष्ट्रीय समिति बनाई गई थी. इस समिति के कार्यकारिणी के सदस्यों में डाक्टर कर्णसिंह, सेठ गोविंददास और श्रीसत्यनारायण सिन्हा को छोड़ कर, अन्य सात सदस्य ब्राह्मण वंश के ही थे. हालांकि इन सभी सदस्यों की प्रसिद्धि एवं योग्यता में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं थी, लेकिन लगता है कि तुलसी के इस कथन "पूजिअ विप्र..." की दुर्गंध इस संगठन से निकल रही थी.

इस समिति का एक भी सदस्य न अहिंदी भाषी था और न ही मध्य, दक्षिण अथवा किसी अहिंदी क्षेत्र विशेष का प्रतिनिधित्व करता हुआ. तब क्या समझा जाए कि हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि में एक वर्ग विशेष के लिए लिखा गया 'मानस' का प्रदर्शनमात्र करना ही इस 'मानस' चतुश्शती समारोह का ध्येय था?

इस समारोह के ध्येयप्राप्ति से संबद्ध 'प्रतिष्ठानपत्र' में कहा गया था "पिछले चार सौ वर्षों से 'रामचरित मानस' कोटिकोटि नरनारियों के हृदय को आलोकित करता रहा है तथा उस के सामाजिक जीवन में ज्योतिस्तंभ के समान मार्गदर्शक रहा है इसलिए तुलसी और 'मानस' के प्रति श्रद्धा अपेक्षित है."

अब देखना है कि 'मानस' में तुलसी द्वारा उपर्युक्त ध्येय की पूर्ति कहां तक हो पाई है.

तुलसी को चिंतक, दार्शनिक, समन्वयवादी, लोक नायक, कविकलाकार आदि गुणों से विभूषित किया जाता है. कहा जाता है कि तुलसी ने 'नानापुराण निगमागमों' की बात को 'मानस' में उतारा है. इस के अलावा 'कुछ और' भी कहा है और यही 'कुछ और' कहना तुलसी की अपनी विशेषता है. यह भी कहा जाता है कि तुलसी ने 'मानस' में तत्कालीन समाज का जीताजागता चित्र खींचा

है, भ्रष्ट होती हिंदू जाति के उद्धार के नुसखे बताए हैं, एक अनोखे 'रामराज्य' की कल्पना की है.

लेकिन समग्र 'मानस' पढ़ जाने के बाद भी मन में कोई बात ढंग से जमती नहीं और न कोई साफ खाका ही सामने आता है. हां, भक्ति का एक बहकावा, जो मात्र गरीब हिंदू परिवारों की झोपड़ियों तक ही सीमित है, 'मानस' में प्रतिष्ठित किया गया है.

देहात का आदमी हूं. सुना है, 'मानस' के राम की अंधी भक्ति में कुछ भावुक भक्त इतने आत्मविभोर हो जाते हैं कि वह यह कहते हुए अपनी आंखों से आंसू बहाने लगते हैं : "बरसात का मौसम है. भारत ने राम की कमरी छीन ली है. न जाने किस पेड़ के नीचे मेरे राम भीजते होंगे!"

लगता है कि इसी बुनियाद पर भारतीय भाषाविद विदेशी विद्वान जार्ज ग्रियर्सन ने कहा होगा कि भारत के गांवों में जितना प्रचार और प्रसार 'मानस' का है, उतना इंगलेंड में बाइबिल का भी नहीं है. ग्रियर्सन महोदय का क्षेत्र उत्तरी भारत ही था और विशेषकर 'मागधी' और 'अर्द्ध मागधी' भाषाओं से निकली बोलियों पर वह कुछ लिख रहे हैं. बुद्धिजीवियों में 'मानस' का क्या रूप है, इस का उन्हें पता नहीं था.

अब समय आ गया है कि 'मानस' का सही खाका सामने आना चाहिए. जब तक यह सार्वभौमिक, सामाजिक कल्याण के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं होता, तब तक इस की उपयोगिता नहीं मानी जाएगी.

जिन गुणों के लिए तुलसी सराहे जाते हैं, उन में से एकएक की चर्चा यहां जरूरी है.

तुलसी को दार्शनिक कहा जाता है. उन की जानकारी की सराहना करते हुए यह कहा जाता है कि उन्होंने तत्कालीन प्रचलित सभी भारतीय दर्शन-पद्धतियों की बात 'मानस' के माध्यम से कही है. 'अद्वैत,' 'विशिष्टाद्वैत,' 'शुद्धाद्वैत,' 'द्वैताद्वैत,' 'निगुणसगुण' की बहती धाराओं से उन्होंने विद्वानों को खुश कर दिया है. लेकिन इन में से कौन सा संप्रदाय, कौन सा दर्शनमार्ग वह उचित एवं उपयोगी समझते हैं, 'मानस' में कहीं भी स्पष्ट वर्णित नहीं है. लगता है कि वह 'विशिष्टाद्वैती' हैं. लेकिन बात उभरती है 'अद्वैत' की. सगुण के प्रति उन की आस्था है, लेकिन प्रतिपादित करते हैं वह निर्गुण की बात. फिर वह सगुण और निर्गुण के भेद को भी नहीं मानते. कर्म, ज्ञान और भक्ति की बात वह जरूर उठाते हैं, लेकिन उसी घुमाव और अस्पष्टता के साथ. भक्ति और ज्ञान में भी वह भेद नहीं मानते—'भगतहि, ज्ञानहि नहिं कछु भेदा,' लेकिन भक्ति को सहज व उत्तम और ज्ञान को दुरूह व दूसरी पंक्ति का मानते हैं. इसी लिए वह कहते हैं :

'ज्ञान पंथ कृपान के धारा'—ज्ञान का रास्ता तलवार पर चलने के समान है, और भक्ति :

'राम भगति सोई मुकुति गोसाईं, अनइच्छित आवइ बरि आई.'

जीवन में मुक्ति पाने के लिए राम की भक्ति जरूरी है और वह मन की इच्छा मात्र से ही भगवान की कृपा से बरबस मिल जाती है.

कहने का मतलब यह है कि 'मानस' में जीवनदर्शन की कोई दिशा न स्पष्ट वर्णित है और न उन में से किसी को अपनाने की ही स्पष्ट बात कहीं पर उरेही गई है. 'उत्तर कांड' का उत्तरार्द्ध ऐसे ही वाग्जालों से भरा पड़ा है.

कहा जाता है कि तुलसी युगद्रष्टा थे. वह महान चिंतक थे. लेकिन चिंतक के सारे प्रयास सार्वभौमिक होते हैं. चिंतन का अर्थ ही है सर्वव्यापी सत्य का उदघाटन. चिंतक की यह लाचारी ही समझिए कि वह कभी भी किसी व्यक्ति विशेष अथवा वर्ग विशेष की बात ही नहीं उठाता. उस का चिंतन भले ही उस के युग में मान्यता न प्राप्त कर सके, कालांतर में वह सर्वग्राही होता ही है. तुलसी चिंतक की हैसियत से खरे नहीं उतरते. उन्होंने 'मानस' में जाति अथवा वर्ग विशेष की हिमायत ही नहीं की, उस का पूरा पोषण भी किया है. अपने समर्थन में उन्होंने प्रतिपक्ष की घोर निंदा की है :

पूजिअ विप्र सकल गुन हीना, सूद्र न गुनगन ज्ञान प्रबीना. (अरण्यकांड)

सभी गुणों से हीन भी विप्र (ब्राह्मण) सदा पूजा करने योग्य है पर ज्ञानबुद्धि से भरपूर भी शूद्र सम्मान के लायक नहीं है :

बुद्धि बल सील सत्य सब मीना, बंसी सम तिय कहहिं प्रबीना.

(अरण्यकांड)

राम नारियों की निंदा करते हुए नारद को समझाते हैं कि पुरुष में विद्यमान बुद्धि, बल, शील और सत्य आदि सद्गुणों का स्त्रियां वैसे ही गला घोंट देती हैं जैसे बंसी मछली के गले में घुस कर उस के प्राण ले लेती है.

राखिय नारी यद्यपि उर माहीं, युवती शास्त्र नृपति बस नाहीं.

(अरण्यकांड)

राम लक्ष्मण से कहते हैं कि अत्यधिक प्रेम के कारण नारी को चाहे अपने हृदय में ही क्यों न रखा जाए, वह पुरुष के वश में कभी नहीं रहती.

अधम जाति मैं विद्या पाए, भयऊं यथा अहि दूध पिलाए. (उत्तरकांड)

काग गरुड़ से कहता है कि विद्या पाने से नीच जाति का अहं वैसे ही बढ़ जाता है जैसे दूध पिलाने पर सर्प में विष बढ़ता है.

नारि स्वभाव सत्य कवि कहई, अवगुन आठ सदा उर रहई,
साहस, अनृत, चपलता, माया, भय, विवेक, अशोच, अदाया.

(लंकाकांड)

रावण मंदोदरी से कहता है कि कवियों ने नारियों के स्वभाव में जिन आठ अवगुणों को बताया है वह बिलकुल सत्य हैं. नारियों के आचरण में साहस, झूठ, चपलता, प्रपंच, भय, मूर्खता, अपवित्रता और निष्ठुरता; ये आठ गुण हमेशा ही मौजूद रहते हैं.

तब फिर उपर्युक्त बातों के आधार पर तुलसी को समन्वयवादी या लोकनायक का पद देना कहां तक उचित है? कहा जाता है कि बुद्ध के बाद भारतीय समाज के लोकनायक तुलसी थे. दरअसल बुद्ध लोकनायक माने जा सकते हैं, लेकिन तुलसी नहीं.

भारत का लोकनायक वही हो सकता है जो भारत की अधिकांश जनता की आस्थाओं, इच्छाओं, मान्यताओं का समन्वय कर, एक सर्वग्राह्य मार्ग का निर्माण कर सके. बुद्ध रूपवान थे. संपत्ति वाले थे. वह सभी विद्याओं, कलाओं के जानकार एक राजकुमार थे. सुखवैभव की सभी सामग्रियां उन के चरण चूमती थीं. उन्हें पत्नी भी परम सुंदरी मिली थी. लेकिन बुद्ध ने सहजता से इन सभी को छोड़ दिया. वनवन घूम कर घोर तपस्या की. ज्ञानप्राप्ति के बाद जातिविहीन, वर्गविहीन समाज की रचना में अपना जीवन लगा दिया.

क्या तुलसी ने भी ऐसा कुछ किया? उन का 'मानस' सांप्रदायिकता की दुर्गंध वर्गसंघर्ष की दुर्भावना से भरा हुआ है. सवर्ण होने के नाते उन्होंने इस से इतर वर्णों की निंदा की है. पत्नी की फटकार से ही उन्होंने असहजता से संन्यास ग्रहण किया था. इसी लिए नारियों के संबंध में उन्होंने उपर्युक्त घृणा से भरी ये बातें कही हैं.

किसी भी महान ग्रंथ को पढ़ने के बाद और खास कर यदि वह कोई काव्य ग्रंथ हो तो हृदय पर उस का एक समन्वित प्रभाव होता है, मन में एक उद्वेलन पैदा होता है. 'मानस' पढ़ने के बाद हृदय पर कोई समन्वित प्रभाव पड़ता अनुभव नहीं होता. मानसकार ने अपने ग्रंथ का समापन अधोलिखित दोहे से किया है.

कामहिं नारि पिआरि जिमि लोभहि प्रिय जिमि दाम,
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम. (उत्तरकांड)

कवि निहोरा मांगता है कि जैसे कामी पुरुष को नारी, लोभी को धन अत्यंत प्रिय होता है, उसी प्रकार हे राम, तुम मुझे हमेशा प्यारे लगते रहो.

उपर्युक्त कथन की वाहवाही में 'मानस' समर्थक खिल उठते हैं. कहते नहीं अघाते कि 'वाह, तुलसी ने क्या कमाल का लिखा! ' लेकिन वे नहीं सोचते कि तुलसी का यह कथन उन की ग्रंथियों में व्याप्त कामकुंठा का द्योतक है. और यदि प्रभाव की दृष्टि से भी इस कथन की सार्थकता को समझा जाए तो लगेगा कि पाठक का इस से न 'काम' के प्रति ही कोई लगाव हो पाता है और न ही 'निर्वेद' के प्रति कोई निष्ठा जागती है. यह कथन निपट बकवास बन कर ही रह जाता है.

तुलसी का 'मानस' मानव जगत नहीं, धार्मिक और कल्पना की जगत है. मानव जगत की रचना वर्गसंघर्ष समाज की रचना के मध्य ही हो सकती है, ऐसा तुलसी ने 'मानस' में कहीं नहीं किया है.

'मानस' का आरंभ देवीदेवताओं की वंदना से आरंभ होता है, जिस में

स्थानस्थान पर कवि की स्वयं की गर्वोक्तियां भी मिलीजुली हैं. और कवि कहता है.

कवि विवेक एक नहिं मोरे, सत्य कहऊं लिखि कागद कोरे. (बालकांड)

बिना लिखे कागज पर हस्ताक्षर कर के मैं कह सकता हूं कि मुझे कवि की बुद्धि और प्रतिभा एकदम है ही नहीं.

और दूसरी ओर उसे अपनी कवित्वशक्ति का पूरा अहसास भी है, जिसे वह अपने भावी आलोचकों को चेतावनी देते हुए कहता है:

खल परिहास होइ हित मोरा, काल कहहिं कल कंठ कठोरा.
नृप किरीट तरुनी तन पाई, लहहिं सकल सोभा अधिकाई.
तैसेहि सुकवि कवित बुध कहहीं, उपजहिं अनत, अनत छबि लहहीं.
(बालकांड)

यद्यपि मणि, माणिक्य और मुक्ता क्रमशः सांप, पर्वत और हाथी के मस्तक से प्राप्त होते हैं, लेकिन उन की वहां कोई शोभा नहीं होती. राजाओं के मुकुट और सुंदरियों के नए शरीर पर जब वे धारण किए जाते हैं, तभी उन की शोभा बढ़ती है. उसी तरह अच्छे कवियों की कविताएं पैदा तो कहीं और होती हैं और उन के अर्थ की सुंदरता कहीं और खिलती है.

समग्र 'बालकांड' इतनी अलौकिक कथाओं से भरा है जिन की न कोई सार्थकता है और न उपयोगिता. साहित्य वह है जिस का युग के अनुकूल मूल्यांकन करने पर वह खरा उतरे. 'मानस' निरा अलौकिक काव्य सा लगता है. लौकिक धरातल की बात उस में बहुत कम कही गई है.

'बालकांड' में 'मानस' की कथा का आरंभ दुरूह सांग रूपक के माध्यम से किया गया है, जिस में कवि की कवित्व-शक्ति का दंभ ही दिखता है, रस की धार उस से नहीं निकलती.

ऐसा कहा गया है कि 'मानस' के राम शील, शक्ति और सौंदर्य के रूप में चित्रित हैं. लेकिन इन में से कोई भी रूप कहीं भी साफ उभरता नजर नहीं आता. शीलवान वह है जो शक्ति होते हुए भी अपने आचरण में इतना संयत रहे कि समाज उस पर उंगली न उठा सके. 'मानस' के राम ऐसे नहीं बन पाए.

सुग्रीव और बालि दोनों भाइयों में मनमुटाव हुआ. राम ने अपने स्वार्थ के लिए सुग्रीव को अपनी ओर कर लिया और बालि को बाणों से बेधा. एक बार भी उन्होंने प्रयास तक नहीं किया कि दोनों भाइयों को एक साथ बैठा कर उन का विभेद मिटा दें. कुछ बातें बालि की भी सुन लें. राम से अच्छे तो श्रीकृष्ण थे, जिन्होंने महाभारत के आरंभ से पहले स्वयं दूत बन कर कौरवों को समझाने और युद्ध से दोनों दलों को अलग रहने के लिए (चाहे दिखावे के लिए ही सही) कुछ प्रयास किया था. राम द्वारा बालि का वध हुआ. मरते समय आदमी प्रायः सच्ची बात बोलता है, हृदय की निष्कपट बात खोलता है.

बालि ने भी वही कहा :

धर्म हेतु अवतरहु, गोसाईं, मारेहु मोहि ब्याध की नाईं' (किष्किधाकांड)

राम की भर्त्सना करते हुए बालि कहता है कि हे राम, यदि आप ने धर्म के उद्धार के लिए अवतार लिया है तो मुझ पर बहेलिए की तरह निष्ठुर हो कर प्राणघातक बाण क्यों चलाया ?

राम के पास इस का कोई उत्तर नहीं था. झट से उन्होंने बालि पर महाभियोग लगाया.

अनुज बधू भगिनी सुत नारी, सुनु सठ कन्या सम ये चारी,
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई, ताहि बधे कछु पाप न होई.
(किष्किधाकांड)

राम बालि से अपनी सफाई देते हुए कहते हैं कि छोटे भाई की पत्नी बहन, पतोहू और पुत्री के समान है. इन में से किसी के ऊपर यदि कोई बुरी दृष्टि रखता है तो वह वध करने लायक है. ऐसे पापी के वध से पाप नहीं लगता.

लेकिन राम को लगा कि उन का यह महाभियोग बालि पर सत्य साबित नहीं हो रहा है, अन्यथा दूसरी बात कहने की तत्काल उन्हें जरूरत क्या थी? राम कहते हैं :

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना, नारि सिखावन करसि न काना.
(किष्किधाकांड)

ऐ मूर्ख बालि, तू अपने अभिमान में इतना चूर हो गया था कि अपनी पत्नी के सुझाव को तू ने अनसुना कर दिया.

फिर राम को लगा कि यह दूसरी बात भी शायद गलत निकली. उन्होंने तब तीसरी बात कही जिस में उन की अशीलता की पराकाष्ठा है.

मम भुज बल आश्रित तेहि जानी, मारा चहसि अधम अभिमानी.
(किष्किधाकांड)

राम अपना बखान करते हुए कहते हैं कि ऐ नीच बालि, मेरी भुजाओं के बल के सहारे पलने वाले सुग्रीव को तू ने मारने का दुसाहस क्यों किया?

बालि इस अभद्र व्यवहार और असंयमित बल के सामने चुप न रहता तो क्या करता? फिर राम की ओर से ऐसे व्यवहार की उम्मीद भी उसे नहीं थी.

हमें वैसा राम भी नहीं चाहिए जो गुणवान, बलवान होते हुए भी प्रेम की भूखी किसी नारी पर हाथ उठाए. उस के नाककान काट कर अपनी अभद्रता और अपनी खोखलाहट का प्रमाण पेश करे. भारतीय संस्कृति की दुहाई देने वाला कोई भी व्यक्ति किसी अबला को इस तरह की सजा देने की बात सोच ही नहीं सकता. राम जैसे शक्तिशाली पुरुष बड़ी सरलता से ऐसी किसी भी परिस्थिति का निवारण कर सकते थे लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया.

समग्र रामकथा की धुरी बस यही तो है कि एक राजकुमार ने अपनी पत्नी के छिन जाने पर रावण से युद्ध किया, उसे पराजित कर पत्नी को फिर प्राप्त

किया और फिर उसी पत्नी के चरित्र पर संदेह प्रकट किया. एक व्यक्ति के इस काम से समाज को क्या वास्ता? और फिर यह समाजगत भाव भी नहीं है जिस से प्रेरणा ली जा सके..

पत्नी से अलग होने पर भारतीय जनमानस का राम इतना रोया है कि वन के पेड़पौधे, पशुपक्षी, व्याकुल हो गए थे. क्या शक्तिसंपन्न किसी राष्ट्र-नायक के यही गुण होने चाहिए? उस के पीछे चलने वाले, उस से क्या सीख ले सकते हैं? एक कृष्ण थे, जिन की आंखों में कभी आंसू दिखे नहीं. हां, उन की आंखें उस समय गीली हुईं जब कोई अबला बड़ेबड़े महारथियों के बीच नंगी की जा रही थी. और उधर राम किसी अबला के नाककान काटने में अपने बल का प्रमाण पेश कर रहे थे.

तुलसी के राम के रूपवर्णन में शृंगार रस का उद्रेक नहीं हो पाता जो एक कवि के लिए भौतिक धरातल की बात कहने की सब से पहली और महत्त्वपूर्ण शर्त मानी जानी चाहिए. कहा जाता है कि तुलसी ने तो मर्यादित शृंगार का ही वर्णन किया है. बात समझ में नहीं आती कि शृंगार के साथ मर्यादा अथवा अमर्यादा का सवाल ही कहां उठता? शृंगार रस इस जमीन की चीज है, यह नरनारी के परस्पर आकर्षण की वस्तु है, इसलिए कविता में इस का वर्णन जमीन से छूता हुआ होना चाहिए. तुलसी ने ऐसा नहीं किया है. तब फिर पुष्पवाटिका में राम और सीता की आंखमिचौनी का दृश्य उपस्थित करने की जरूरत ही क्या थी? वहां भी शृंगार का केवल उभार भर हो पाया है, शृंगार रस पका नहीं है. तब फिर प्रश्न हो सकता है कि शृंगार के इस पूर्वानुराग की आवश्यकता ही क्या थी? 'मानस' के कथाप्रवाह में इस घटना की जरूरत क्या है?

राम और सीता के विवाह के समय भी तुसली शृंगार रस के अंतर्गत मन को छूने वाली कोई लौकिक आचार की बात नहीं कह पाए हैं. यह स्थल भी सूखा और अस्वाभाविक सा लगता है. कालिदास ने 'रघुवंश' नामक अपने प्रबंध काव्य में अज और इंदुमती के विवाह की बड़ी मनोरम झांकी उपस्थित की है. वधू चाहती है कि कैसे वर की एक अनुपम झांकी उसे मिल जाए और वर की कामना है कि कैसे आंख भर वह अपनी प्रिया को देख ले. लौकिक धरातल का ऐसा रस भरा वर्णन 'मानस' में कहीं भी वर्णित नहीं है. राम और सीता की जनकपुर से विदाई के अवसर पर क्या जनकपुर की स्त्रियों की हंसी-मजाक की बात की योजना 'मानस' में नहीं की जा सकती थी. ऐसा कुछ न करने के कारण तुलसी सहज कविधर्म से गिरे से मालूम पड़ते हैं.

भारत की बहुत बड़े समुद्र से तुलना की गई है क्योंकि बड़े समुद्र में जिस तरह अनेक छोटीछोटी नदियों के जल आ कर मिले रहते हैं, उसी तरह भारत में आर्य, अनार्य, द्रविड़, हूण, किरात, हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, न जाने कितनी जातियों की संस्कृतियां एकजुट हो कर जा मिली हैं. ऐसे विराट भारत

की मधुर एवं उपयोगी कल्पना 'मानस' में कहीं भी चित्रित नहीं है.

ऐसा लगता है, 'मानस' अलौकिक कल्पनाओं का लोक है, दुर्लभ स्वप्नों की चकाचौंध भर है. उत्तम काव्य की दृष्टि से भी प्रबंधकता की रसधार में बहने की गुंजाइश कहीं भी 'मानस' में नहीं है. यह केवल एक हवाई बात बनाता है, आकाशकुसुम की बात करता है, धरातल से इस का कोई लगाव नहीं दिखता.

कितने मौलिक?

तुलसीदास का 'रामचरित मानस' विद्वत समाज में एक मौलिक साहित्यिक रचना का सम्मान पाता रहा है, लेकिन इधर ज्योंज्यों तुलसी साहित्य के अध्येताओं की संख्या बढ़ रही है, इस की मौलिकता पर भी संदेह होने लगा है. तुलसी ने काफी कुछ अनुकरण और अनुवाद किया है और उन की इस कृति पर अन्य रचनाओं की भी छाया है. इस का आभास उन्हें भी था जिन्होंने इस शताब्दी के आरंभिक वर्षों में हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा. लेकिन वह तुलसी साहित्य से इतने अभिभूत थे कि तुलसी की मौलिकता उन्हें वैसी संदेहास्पद प्रतीत नहीं हुई, जैसी अब लोगों को प्रतीत होने लगी है.

आज जब इस विषय पर काफी कुछ सामग्री उपलब्ध हो गई है और होती जा रही है, हम देखते हैं कि तुलसी साहित्य का अधिकांश भाग पूर्ववर्ती संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और अवधी साहित्य से संकलित और अनूदित है. इस में मौलिकता नगण्य है. ऐसी स्थिति में यह सोचना जरूरी हो गया है कि क्या मानस एक मौलिक काव्यकृति है, या मात्र पौराणिक व धार्मिक संकलन है? यह भी विचारणीय है कि इस की रचना का श्रेय केवल तुलसी को मिलना चाहिए या उन के पूर्ववर्ती कवियों और आचार्यों को?

उपमाओं, अलंकारों, उद्‌भावनाओं, कथोपकथन की शैली, प्रसंग विशेष के प्रभावोत्पादक शब्दों, नएनए कथाप्रसंगों आदि के आधार पर ही किसी काव्यग्रंथ की मौलिकता देखीपरखी जाती है, क्योंकि मूल कथानक तो प्रत्येक महाकाव्य का रचयिता कहीं न कहीं से ग्रहण करता ही है. तुलसी ने अपने मानस में जिस साहस से दूसरे कवियों की मौलिक उपलब्धियों को भी ग्रहण कर लिया है, उस के कारण उन की रचना सीधे साहित्यिक तस्करी की कोटि में चली जाती है. यह विचारणीय है कि तुलसी को मानस का रचयिता कहा जाए या संपादक अथवा संकलनकर्ता और अवधी अनुवादक?

'नाना पुराण निगमागम सम्मत' की स्वीकारोक्ति में भी छल दिखाई देता है. तुलसी ने शुरू में वाल्मीकि की वंदना की और पुराण निगमागम का

नाम लिया. लेकिन इन से उन्होंने बहुत कम ग्रहण किया. पाठक ने जब तुलसी को इन से काफी भिन्न देखा तो वह उन की मौलिकता के विषय में आश्वस्त हो गया. तस्करी का यह सामान्य नियम है कि वस्तु जहां छिपाई जाती है, ढूंढने वाले को गड़बड़ा कर उस से विपरीत दिशा में खोजबीन करने के लिए मजबूर किया जाता है. तुलसी ने आधार ग्रहण किया 'अध्यात्म रामायण' का और वंदना द्वारा पाठक को भ्रमित कर दिया 'वाल्मीकि रामायण' की ओर. तुलसी ने उपमाएं, अलंकार, छंद, कथोपकथन शैली आदि अपनाई 'हनुमन्नाटक,' 'प्रसन्न राघव,' 'आनंद रामायण' और 'स्वयंभू रामायण' की और नाम लिया 'नाना पुराण निगमागम' का. फलस्वरूप शताब्दियों तक तस्करी का पता न चल सका.

यदि तुलसी इस अर्थ में सचमुच ईमानदार थे तो 'क्वचिदन्यतोऽपि' के स्थान पर अपने उपयोग में लाए गए इन सारे ग्रंथों का नाम दे सकते थे. इस संदर्भ सूची से मानस का कलेवर एक पृष्ठ और बढ़ जाता. लेकिन तुलसी को तो खुद अपने को मौलिक दिखाने का मोह था, फिर भला वह संदर्भ ग्रंथों का सही नाम क्यों देते?

रामचरित मानस के नामकरण में एक रूपक प्रस्तुत किया गया है कि रामचरित मानस एक मानसरोवर है, चारों घाट चारों संवाद हैं, चौपाइयां पुरइन पात सी फैली हुई हैं, दोहा, सोरठा और छंद बहुरंग कमल हैं आदि.

सुठि सुंदर संवाद वर विरचे बुद्धि विचारि,
तेइ यदि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि.
राम सीय जस सलिल सुधासम, उपमा बीचि विलास मनोरम.
पुरइन सघन चारु चौपाई, जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई.
छंद सोरठा सुंदर दोहा, सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा.
धुनि अवरेब कवित गुन जाती, मीन मनोहर ते बहु भांती.

—मानस बालकांड, 36

लेकिन यह रूपक तुलसीदास की मौलिक सूझ नहीं है. इसे उन्होंने जैन परंपरा के कवि स्वयंभूदेव के अपभ्रंश काव्य 'पउम चरिउ' से ग्रहण किया है. देखिए :

अक्सर वास जलोह मणोहर, सुयलंकार छंद मच्छोहर.
दीह समास पवाहा बंकिय, सब कय पायय पुलिणालंकिय.
देसी भाषा उभय तडुज्जल, कवि दुक्कर घण सबद सिलायल.
अथ्थ बहल कल्लोला णिठिय, आसा सय सम ऊह एरिट्ठिय.
राम कहा सरि एह सोहती.

—पउम चरिउ, पढमी संधि, धत्ता, 19

'पउम चरिउ' या 'स्वयंभू रामायण' से तुलसी ने बहुत कुछ ग्रहण किया है. मानस के बालकांड में पाई जाने वाली देवताओं और सज्जनों की स्तुति,

दुर्जनों और खलों की निंदा, कवि कर्म में अपनी अज्ञानता का वर्णन, पूर्व कवियों के प्रति कृतज्ञता का प्रदर्शन, सरस प्रकृति चित्रण, धार्मिक और नैतिक वातावरण के निर्माण आदि की बातें तुलसी को 'पउम चरिउ' की देन हैं. दोनों वर्णनों में भावसाम्य तो है ही, कहींकहीं शब्दसाम्य भी है. कल्पना का मूलाधार मिल जाने पर विस्तार करना सरल हो जाता है. तुलसी ने केवल संक्षेप और विस्तार करने में ही श्रम किया है. महापंडित राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक 'हिंदी काव्यधारा' का एक अंश इस संबंध में पठनीय है :

"तुलसी बाबा ने क्वचिदन्यतोऽपि से स्वयंभू रामायण की ओर ही संकेत किया है आखिर नाना पुराण निगमागम और रामायण के बाद ब्राह्मणों का कौन सा ग्रंथ बाकी रह जाता है, जिस में रामकथा आई है? क्वचिदन्यतोऽपि से बाबा का मतलब है ब्राह्मणों के साहित्य से बाहर 'कहीं अन्यत्र से भी' और अन्यत्र इस जैन ग्रंथ में रामकथा सुंदर रूप में मौजूद है."

जायसी के दोहाचौपाई की नकल

जिस समय तुलसीदास रामचरित मानस की रचना करने को तैयार हुए, उस समय जायसी की 'पद्मावत' लोकप्रिय हो रही थी. वह लोकभाषा अवधी में थी और दोहा व चौपाई की छंद योजना में लिखी गई थी. तुलसी की यह समस्या भी हल हो गई. उन्होंने भाषा और छंद जायसी से ग्रहण कर लिए. यहां तक तो गनीमत थी, पर तुलसी ने उपमाओं और उद्भावनाओं को भी यथावत ग्रहण करने में संकोच न किया. स्पष्ट करने हेतु प्रस्तुत है :

का सरवरि तेहि देहुं मयंकू, चांद कलंकी वह निकलंकू.
औ' चांदहि पुनि राहु गरासा, वह बिनु राहु सदा परगासा.

—पद्मावत, 16 (3-4)

बहुरि विचार कीन्ह मन मांही, सीय बदन सम हिमकर नाहीं.
जन्म सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंक,
सिय मुख समता पाव किमि चंद बापुरो रंक.
घटइ बढ़इ विरहिन दुखदाई, ग्रसै राहु निज संधिहि पाई.

——मानस बालकांड, 237

उद्भावना एक ही है. तुलसी का वर्णन विशद और परिमार्जित है, लेकिन मौलिकता तो जायसी की ही है. दरअसल तुलसी को पकापकाया माल मिल गया है.

कालिदास रचित ग्रंथों की छाप

जिन काव्यग्रंथों में रामकथा का वर्णन नहीं था, उन से भी तुलसी ने प्रसंगानुरूप शब्दों, सूक्तियों और उपमाओं को ग्रहण कर लिया है. 'कुमारसंभव' से शिवपार्वती का प्रकरण न्यूनाधिक रूप से लिया है. कालिदास ने पार्वती के 'उमा' और 'अपर्णा' नामों की काव्योचित व्याख्या अपने ग्रंथ 'कुमारसंभव' में की है. यथा :

उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा, पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम.

और—

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता, पराहि काष्ठा तपसस्तया पुन:.
तदप्यपाकीर्णमत: प्रियंवदा, वदंत्यपर्णेति च तां पुराविद:.

—कुमारसंभव, 5-28

इन में इस बाद वाली 'अपर्णा' की व्याख्या तुलसी ने यथावत अनुवाद कर ली है और अपनी ओर से तीन सहस संवत की गप्प जोड़ दी है :

बेल पाति महि परइ सुखाई, तीन सहस सवत सोइ खाई.
पुनि परिहरेउ सुखानेउ परना, उमहि नाम तब भयउ अपरना.

—मानस बालकांड, 73 (3-4)

रघुवंश में राजा कुश के शयनकक्ष में उजड़ी हुई अयोध्या नगरी मध्यरात्रि में एक नारी के वेश में प्रवेश करती है. तब कुश उसे आश्वस्त करने के लिए कहते हैं.

आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां, मन: परस्त्रीविमुखवृत्ति:.

—रघुवंश, 16-8

रघुवंशियों की इसी दर्पोक्ति को तुलसी राम के मुख से कहलवाते हैं :

रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ,

....

नहि लावहिं परतिय मन डीठी. —मानस, बालकांड, 230 (5-7)

मानस में अनेक स्थलों पर कालिदास की छाया है. कहीं पूरे तौर पर तो कहीं आंशिक. 'कृसतन शीश जटा एक बेनी, जपत हृदय रघुपति गुन श्रेनी' के रूप में अशोकवाटिका की सीता का विरहिणी रूप शकुंतला के निम्न वर्णन की नकल है :

वसने परिधूसरे वसाना, नियमक्षाममुखी धृतैकवेणि.
अति निष्करुणस्य शुद्धशीला, मम दीर्घं विरहव्रतं बिर्भात.

—अभिज्ञान शाकुंतलम्

जनकपुर से सीता की विदाई के अवसर पर राजा जनक उसी प्रकार दुखी होते हैं, जैसे शकुंतला की विदाई के अवसर पर कण्व. "वैक्लव्यं मम तावदृशमिदं स्नेहादरण्यौकश:," की नकल कर के ही तुलसी ने लिखा है :

रहे कहावत परम बिरागी.

संस्कृत साहित्य में बड़ी उत्तम कोटि की एक उपमा कालिदास ने 'रघुवंश' में इंदुमती स्वयंवर में दी है :

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ, यं यं व्यतीयाय पतिवरा सा.
नृपेंद्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे, विवर्णभावं स स भूमिपाल:.

—रघुवंश, 6-67

अब तुलसी के लिए समस्या थी कि वह इस का किस प्रकार उपयोग करें

क्योंकि इंदुमती स्वयंवर से सीता स्वयंवर की परिस्थिति भिन्न थी. लेकिन अनुकरण लोभी तुलसी की समस्या 'प्रसन्न राघव' के रचनाकार ने हल कर दी. प्रसन्न राघव में उस प्रसंग का वर्णन है :

कामक्रीडाभवनवलभी दीपिकेवाविरस्ति. —प्रसन्नराघवम्, 2-7

तुलसी ने 'कामक्रीडाभवनवलभी' का अनुवाद कर लिया. 'छविगृह' और चूंकि कालिदास की 'दीपशिखा' तो 'प्रसन्न राघव' की 'दीपिका' से अच्छी थी ही, इसलिए फिट कर दिया.

छविगृह दीपशिखा जनु बरई.

आनंद रामायण से शब्दसाम्य, भावसाम्य

मानस की अनेक अवांतर कथाएं जो सहसा पढ़ने पर तुलसी की मौलिक उद्भावनाएं प्रतीत होती हैं, कहीं न कहीं से उधार ली गई हैं. जिस प्रकार लोग मांगे हुए सामान से बरातों में अपने वैभव का हास्यास्पद प्रदर्शन करते हैं, उसी प्रकार तुलसी ने मांगे हुए कथानकों से मानस को अलंकृत कर के अपनी स्थिति काव्यशास्त्रीय दृष्टि से हास्यास्पद बना ली है. सतीमोह और नारदमोह का मूल उद्गम 'शिवपुराण' है. सीता स्वयंवर में सीता के मन की उथलपुथल, देवताओं की प्रार्थना, जनकपुर के नरनारियों का राम के प्रति प्रेम और सहानुभूति के भावों का वर्णन 'आनंद रामायण' से लिया गया है. यहां शब्दसाम्य और भावसाम्य देखा जा सकता है :

एतस्मिन्नंतरं सीता रामं दृष्ट्वा सभांगणे,
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं रत्नालंकार मंडिता.
हे शंभो, हे विधे, दुर्गे, हे सावित्री सरस्वति,
युष्माकं प्रार्थयाम्यद्य, प्रसार्य निज पल्लवम्.
सर्वैरेतन्महच्चापं करणीयं तु पुष्पवत्.

—आनंद रामायण, सारकांड, सर्ग 3

तब रामहि बिलोकि वैदेही, सभय हृदय बिनवति जेहि तेही.
मन ही मन मनाव अकुलानी, होहु प्रसन्न महेस भवानी.
करहु सफल आपनि सेवकाई, करि हित हरहु चाप गरुआई.
गननायक बरदायक देवा, आजु लगे कीन्हेउ तुअ सेवा.
बारबार बिनती सुनि मोरी, करहु चाप गुरुता अति थोरी.

—मानस, बालकांड, 256

और देखिए :

एवं दृष्ट्वा स्त्रियो रामं सभांगण विराजितम्,
न्यस्त कोदंड तूणीरं शिवचापाभिसम्मुखम्.
प्रार्थयामासुस्ताः सर्वाः ऊर्ध्वास्था ऊर्ध्वसत्कराः,
हे शंभो, हे रमाकांत, हे विधेऽस्मत्पुराकृतैः.
व्रतदानादि पुण्यश्च चापं सज्जीकरोत्यमुम्.

—आनंद रामायण, सारकांड, सर्ग 3

चलत राम सब पुर नरनारी, पुलक पूरि तन भए सुखारी.
बंदि पितर सुर सुकृत संभारे, जो कुछ पुन्य प्रभाउ हमारे.
तौ शिव धनु मृनाल की नाईं, तोरहु रामु गनेश गोसाईं.

—मानस, बालकांड, 254

अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित

'अध्यात्म रामायण' तुलसीदास के मानस से बहुत प्राचीन काव्यग्रंथ है. तुलसी ने अपने मानस की रचना में इस का सब से अधिक उपयोग किया है. कुछ ही अवांतर कथाएं ऐसी हैं जो 'अध्यात्म रामायण' से भिन्न हों, अन्यथा मानस का सारा दार्शनिक विवेचन, मूलकथा का संयोजन, राम के सगुणनिर्गुण रूप का विवेचन, त्रिदेवों की स्थिति, भक्तिज्ञान संबंधी ऊहापोह, सत्संग महिमा, मोक्षसाधन, वैराग्य निरूपण आदि अनेक प्रसंग 'अध्यात्म रामायण' से अनुप्रेरित हैं.

कहींकहीं मानस के कलेवर को तुलसी ने सीधे अनुवाद से भी सजाया और अलंकृत किया है. मंथराकैकई प्रसंग के वर्णन में तुलसी 'अध्यात्म रामायण' के कितने ऋणी हैं, यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा :

तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय कैकई प्रियवादिनी,
तस्यै दिव्यं ददौ स्वर्ण नूपुरं रत्नभूषितम्.
हर्षस्थाने किमिति मे कथ्यते भयमागतम्,
भरतादधिको राम: प्रियकृन्मे प्रियंवद:
कौशल्यां मां समं पश्यन् सदा शुश्रूषते हि माम्,
रामाद् भयं किमापन्नं तव मूढे वदस्व मे.

—अध्यात्म रामायण, सर्ग 2-54-56

प्रियवादिनि सिख दीन्हेउ तोही, सपनेउ तो पर कोप न मोही.
रामतिलक जो सांचेहु काली, देहु मांग मनभावत आली.
कौशल्या सम सब महतारी, रामहि सहज सुभाय पियारी.
प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे, तिनके तिलक क्षोभ कस तोरे.
हरष समय विषमय करसि कारण मोंहि सुनाउ.

—मानस, अयोध्याकांड, 15

अब देखिए :

ब्रूहि कं धनिनं कुर्याद् दरद्रि ते प्रियंकरम्,
धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम्.
ब्रूहि कं वधिष्यामि वधार्हो वा विमोक्ष्यते,
किमत्र बहुनोक्तेन प्राणान् दास्यामि ते प्रिये. —अध्यात्म रामायण, 3.12-13
कहु केहि रंकहि करहु नरेसू, कहु केहि नृपहि निकारहु देसू.
सकउ तोर अरि अमरउ मारी, काह कीट बपुरे नरनारी.

और भी--
भरतं मातुल कुले प्रेषयामास सानुजम्. --अध्यात्म रामायण, 2-60
पठये भरत भूप ननिअउरे. --मानस, अ. का.
ततोऽपि मरणश्रेयो यत्सपत्नया: पराभव:. --अ. रा., सर्ग 2-63
जियत न करब सवति सेवकाई. --मानस
मानुषीकरण चूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रकीयसी.
--अध्यात्म रामायण 6-3
मानुष करन मूरि कछु अहई. --मानस

'हनुमन्नाटक' से भावानुवाद

जितनी अधिक मात्रा में तुलसी ने 'अध्यात्म रामायण' से सामग्री ली है, उतनी ही उदारता से उन्होंने दामोदर मिश्र के 'हनुमन्नाटक' से भी सामग्री ली है. जनक के प्रण की घोषणा, लक्ष्मण का अमर्षपूर्ण प्रत्युत्तर, जटायु की मृत्यु पर राम की शोकसंकुल उद्भावना, सुमित्रा द्वारा लक्ष्मण को दिया गया आदर्श भ्रातृभाव का उपदेश, तुलसी का बहुचर्चित केवट प्रसंग, अंगदरावण संवाद, 'रामानुज लघु रेख खचाई' की उक्ति, मंदोदरी द्वारा रावण को सन्मार्ग पर चलने का उपदेश, हनुमान द्वारा राम से वियोगिनी सीता की दशा का वर्णन, वनपथ में ग्रामवधुओं द्वारा सीता की बातचीत का प्रसंग और अन्य अनेक अवांतर प्रसंग 'हनुमन्नाटक' से लिए गए हैं. इतनी अधिक सामग्री उधार देने वाले को तुलसी ने 'क्वचिदन्यतोऽपि' में रख दिया. क्या इसे साहित्यिक न्याय कहा जा सकता है?

कितना ही अधिक अनुकरण करने वाला साहित्यकार क्यों न हो, वह कुछ न कुछ अपने युग से प्रभावित होता ही है और उस की कृति में वह प्रभाव दृष्टिगोचर हो ही जाता है. हरिऔध के 'प्रियप्रवास' की राधा और मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' की उर्मिला युग का प्रभाव ग्रहण कर के लोकसेविका बन गईं. जहां सूरदास लिखते हैं : 'मधुवन तुम कत रहत हरे, कठिन वियोग श्यामसुंदर के क्यों नहि उकठि परे.' वहीं हरिऔध लिखते हैं. 'पत्रों पुष्पों रहित विटपी विश्व में हो न कोई.' यह है साहित्यकार पर युग का प्रभाव. लेकिन तुलसी? तुलसी पुस्तकों के अध्येता कितने ही क्यों न रहे हों, साधु होने के कारण वह लोकजीवन से कटे हुए थे. यही वजह है कि उन के काव्य में समकालीन दरबारी संस्कृति, जो मुगल दरबारों में विकसित हो रही थी, भी व्यक्त न हो सकी.

तुलसी का अंगद रावण के दरबार में उतना ही उद्धत है जितना 'हनुमन्नाटक' के रचयिता का, क्योंकि तुलसी को केवल अनुवाद करना था, युग के अनुरूप परिवर्तन नहीं. क्या आप एक प्रतापी राजा के दरबार में गए हुए दूत से राजा के प्रति 'रे शठ' का संबोधन सुनना पसंद करेंगे? क्या 'हनुमन्नाटक'

या तुलसी के अंगदरावण संवाद का वर्णन दरबारी शालीनता और श्लीलता के अनुरूप है? क्या इस वर्णन में दोनों साहित्यकारों की प्रतिभा अवयस्क नहीं प्रतीत होती? 'हनुमन्नाटक' के रचनाकाल में तो यह क्षम्य भी थी लेकिन तुलसी तो सुधार कर सकते थे. पर मौलिक दृष्टि और चिंतन के अभाव में वह करते ही क्या!

किस तरह उन्होंने अनुवाद किया है, निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है :

रेरे रावण, रावणाः कति बहूनेतान्वयं शुश्रुमः,
प्रागेकं किल कार्तवीर्य नृपतेर्दोर्दंड पिंडीकृतम्.
एकं नर्तनदापितान्नकवलं दैत्येंद्र दासीगणै,
रन्यं वक्तुमपि त्रपामह इति त्वं तेषु कोऽन्योऽथवा.

—हनुमन्नाटक, अंक 8-32

कहु रावन रावन जग केते, मैं निज श्रवन सुने सुन जेते.
बलिहि जितन एक गएउ पताला, राखेउ बांधि सिसुन्ह हयसाला.
एक बहोरि सहसभुज देखा, धाई धरा जिमि जंतु विशेखा.
एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की कांख,
इन मंह तैं रावण कवन सत्य कहेउ तजि मांख.

—मानस, लंकाकांड 23

ग्रामवधुओं वाले प्रसंग में तुलसी की वर्णनसमर्थता और नारीशील की अभिव्यंजना की बड़ी ही प्रशंसा की जाती है लेकिन यह प्रसंग भी तुलसी का मौलिक नहीं है. इसे 'हनुमन्नाटक' से लिया गया है. देखिए :

पथि पथिक वधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना,
कुवलय दलनील कोऽयमार्ये तवेति.
स्मित विकसित गंड व्रीडविभ्रांत नेत्रा,
मुखमवनिमयंती स्पष्टमाचष्ट सीता. —हनुमन्नाटक, अंक 3-16

......सरद सरोरुह नैन.
कोटि मनोज लजावन हारे, सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे.
बहुरि वदन विधु आंचल ढांकी, प्रियतन चितय भौंह करि बांकी,
खंजन मंजु तिरीछे नैनिन, निज पिय कहयो तिन्हहि सिय सैननि.

—मानस, अयोध्याकांड 116

रामचंद्र को मनुष्य नहीं, ईश्वर का अवतार बतलाने के लिए रावण को अंगद बड़े प्रभावशाली ढंग से फटकारता है :

राम मनुज कस रे सठ बंगा, धन्वी कामु नदी पुनि गंगा.
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा, अन्नदान अरु रस पीयूषा.
वैनतेय खग अहि सहसानन, चिंतामनि पुनि उपल दसानन.
सेन सहित तव मान मथि वन उजारि पुर जारि,

कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि.
—मानस, लंकाकांड 25-26

लेकिन यह सब वर्णन 'हनुमन्नाटक' से अनूदित है. देखिए :

रे रे रावण दीनहीन कुमते, रामोऽपि किं मानुषः
किं गंगापि नदी गजः सुरगजोऽप्युऽच्चैश्रवाः किं हयः
किं रंभाप्यबला कृतं किमयुगं कामोपि धन्वी तु किम्,
त्रैलोक्यं प्रकट प्रताप विभवः किं रे हनुमान्कपिः. —हनुमन्नाटक 8-24

हनुमान की करामात पर राम आश्चर्य करते हैं कि अकेले हनुमान लंका में इतनी सफलता कैसे प्राप्त कर सके? इस अवसर का हनुमान का उत्तर तुलसी ने 'हनुमन्नाटक' से अनुवाद कर लिया है :

शाखामृगस्य शाखाया : शाखां गंतुं पराक्रमः, यत्पुनर्लांधितोंभोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव. —हनुमन्नाटक 6-44

शाखामृग कै बड़ि मनुसाई, शाखा ते शाखा पर जाई.
—मानस, सुंदरकांड-32

तुलसी को अपने मानस की रचना करते समय एक और बहुत उपयोगी ग्रंथ मिल गया था—जयदेव कृत 'प्रसन्न राघव.' जहां जंचा वहां इस से भी तुलसी ने अनुवाद कर लिया. लक्ष्मणपरशुराम संवाद, धनुभँग के अवसर पर जनक का संशय, अशोक वाटिका में हनुमान और सीता का वार्त्तालाप, सीता के अंगूठी देने, सीता का विरह निवेदन, रावण और सीता की बातचीत आदि का वर्णन 'प्रसन्न राघव' की नकल है. उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण दिए जा रहे हैं :

मंदोदरीमपि विमुंचति राज्यमेतद, प्युन्मदं तव पदाब्जतले करोति.
किं जल्पितेन बहुना, सुमुखि त्वदर्थे, स्वान्युच्छिनत्यपि शिरांसि पुनर्दशास्यः
—प्रसन्नराघव 6-28

कह रावण सुनु सुमुखि सयानी, मंदोदरी आदि सब रानी.
तव अनुचरी करौं पन मोरा, एक बार विलोकु मम ओरा.
—मानस, सुंदरकांड 8

तब सीताजी कहती हैं :

सीता : अपि खद्योतभासपि समुन्मीलति पद्मिनी?
—प्रसन्नराघव, 6-28 के बाद का गद्य.

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा, कबहुं कि नलिनी करइ विकासा.
—मानस, सुंदरकांड 8

और भी :

विरमविरम रक्षः किं मुधा जल्पितेन, स्पृशति नहि मदीयं कंठसीमानमन्यः
रघुपति भुजदंडादुत्पल श्यामकांते, दशमुख! भवदीयान्निष्कृपाद्वा कृपाणात्.
—प्रसन्नराघव 6-30

स्याम सरोज दाम सम सुदर. प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर.
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा, सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा.

—मानस, सुंदरकांड 9

अनुवाद में तो कुछ परिश्रम भी पड़ता होगा, इसलिए कहींकहीं तुलसी को सीधे श्लोक ही रख लेने में संकोच नहीं हुआ. आज वह सब तुलसी के ही नाम पर चल रहा है. बेचारे जयदेव न तो अपना काव्य कापीराइट कानून में रजिस्टर करा पाए थे, न वल्दियत और सकूनत (जिसे तुलसी छिपा गए हैं) के अभाव में तुलसी पर कोई सम्मन ही कटवा सकते थे :

चंद्रहास हर मे परितापं. रामचंद्र विरहानल जातं
त्वं हि कांतिजित् मौक्तिक चूर्णं, धारय वहसि शीतलांभम्

—प्रसन्नराघव 6-33

चंद्रहास हर मम परितापं, रघुपति विरह अनल संजातं.
सीतल निसित वहसि वर धारा, कह सीता हर मम दुख भारा.

—मानस, सुंदरकांड 9

भला एक कवि को दूसरे कवि की उपमा भी सीधे चुरानी चाहिए? चंद्रोदय की छवि का वर्णन देखिए :

मयूख नखत्रुटत्तिमिर कुंभिकुंभस्थलो—च्छलत्तरलतारकाकपटकीर्ण
मुक्तागण:
पुरंदरहरिद्दरी कुहरगर्भ सुप्तोत्थित. स्तुषाराकर केसरी गगन काननं गाहते.

—प्रसन्नराघव 7-61

(अर्थ—किरण रूपी नाखूनों से छिन्न होते हुए अंधकार रूपी हाथी के मस्तक पिंड से मोतियों जैसे तारकगणों को छितराते हुए पूर्वदिशा रूपी गुफा के अंदर से सो कर उठा हुआ चंद्र रूपी सिंह आकाश रूपी वन में प्रवेश कर रहा है.)

कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरसि असंक,
पूरब दिशि गिरि गुहा निवासी, परम प्रताप तेज बल रासी.
मत्त नाग तम कुंभ विदारी, ससि केसरी गगन वन चारी.
बिथुरे नभ मुक्ताहल तारा, निसि सुंदरी केर सिंगारा.

—मानस, लंकाकांड 11

नीति संबंधी उक्तियां

तुलसीदास ने रामचरित मानस में नीति संबंधी कई उक्तियों को अविकल रूप से 'हितोपदेश,' 'चाणक्य नीति,' 'योगवाशिष्ठ,' 'मनुस्मृति,' 'सूक्ति-रत्नाकर,' 'पंचतंत्र,' 'भर्तृहरि नीति शतक,' आदि ग्रंथों से अनुवाद कर जगहजगह पर उन का उपयोग किया है. राम और नारद की अरण्यकांड की अप्रत्याशित भेंट में राम ने नारी की जो चारित्रिक अभिव्यंजना की है, वह

नारी के अन्वेषण में लगे हुए विरह विकल राम के मुख से हर पाठक को अनुचित और अप्रासंगिक लगती होगी. लेकिन शायद तुलसीदास ने उसी दिन योगवाशिष्ठ पढ़ा था और उस की 'कुछ अच्छी' बातों का समावेश करना उन्हें बहुत जरूरी लगा, जिस से इस प्रसंग की रचना हो गई.

दार्शनिक सिद्धांतों का वर्णन तुलसी ने किस तरह अन्य ग्रंथों से ग्रहण किया है, इस के संबंध में एक उदाहरण प्रस्तुत है :

अपाणिपादो जवनोग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरन्यं पुरुषं महान्तम्.
—श्वेताश्वतरोपनिषद 19

इसे तुलसी ने निम्न प्रकार से अनूदित किया है :

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना, कर बिनु कर्म करै विधि नाना.
आनन रहित सकल रस भोगी, बिनु बानी वक्ता बड़ जोगी.
तन बिनु परस नयन बिनु देखा, गहइ घ्रान बिनु बास अलेखा.
—मानस, बालकांड 117

एक बार एक पुलिस इंस्पेक्टर एक अपराधी को धमका रहा था कि अभी सत्संग में सब कुछ बतला दोगे. मैं ने पूछा कि कैसा सत्संग, तो दरोगाजी ने बतलाया कि सत्संग का मतलब है मारपीट. मैं ने कहा कि मारपीट को 'सत्संग' कहने की प्रेरणा आप को कहां से मिली, तो उन्होंने तुलसी का निम्न दोहा सुनाया. यह दोहा लंकिनी द्वारा हनुमान की मुष्टिकावृष्टि के बाद कहा गया है :

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिच तुला इक अंग,
तुले न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्संग.

स्पष्ट है कि हनुमान का जो सत्संग लंकिनी को अभी प्राप्त हुआ था, वह 'मुठिका एक ताहि कपि हनी' द्वारा व्यक्त हो चुका है, इसलिए दरोगाजी सत्संग का अर्थ मारपीट ठीक समझे हैं. तुलसी की दृष्टि में उस समय निम्न श्लोक आ गया था जिस का अनुवाद उन्होंने कर दिया :

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवं, भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः
—श्रीमद्भागवत 1-18-13

'श्रीमद्भागवत' में कृष्ण जन्म के अवसर पर वर्णित छंदों का तुलसी ने राम जन्मोत्सव के अवसर पर उपयोग कर लिया है :

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदाजलरुहश्रिया, द्विजालिकुसंनाद स्तबका वनराजयः
ववौ वायुः सुखस्पर्श पुष्पगंधवहः शुचिः, मनांस्यासन प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम्.
जगुः किन्नरगंधर्वास्तुष्टुवः सिद्धचारणाः मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः
—श्रीमद्भागवत 10-3 (3-6)

सीतल मंद सुरभि वह बाऊ, हरषित सुर संतन मन चाऊ.
वन कुसुमित गिरि गन मनियारा, स्रवहि सकल सरिताऽमृत धारा.

गगन विमल संकुल सुर जूथा, गावहिं गुन गंधर्व बरूथा.
बरसहि सुमन सुअंजलि साजी, गहगहि गगन दुदुंभी बाजी.

--मानस, बालकांड 190

जिन्होंने हरिकथा नहीं सुनी, उन की इंद्रियां किस प्रकार बेकार हैं, इस का तुलसी ने ऐसा वर्णन किया है कि भक्त अभिभूत हो उठते हैं :

जिन हरिकथा सुनी नहि काना, श्रवन रंध्र अहि भवन समाना.
नयनन संत दरस नहिं देखा, लोचन मोरपंख कर लेखा.
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला, जे न नमत हरिगुरु पद मूला,
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी जीवित शव समान ते प्रानी.
जो नहिं करइ राम गुन गाना, जीह सो दादुर जीह समाना.
कुलिस कठोर निठुर सोई छाती, सुनि हरि चरत न जो हरषाती.

--मानस, बालकांड 112

लेकिन यह पूरा वर्णन और सभी उपमाएं 'श्रीमद्भागवत' से अविकल रूप से अनुवाद की गई हैं.

बिले बतोरुक्रम विक्रमान् ए न श्रण्वन्त: कर्णपुटे नरस्य,
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगाय गाथा:
भार: परं पट्ट किरीट जुष्टम प्युत्युत्तमांगं न नमेन्मुकुंदम्
शावौ करौ नो कुरुत: सपर्यो: हरेर्लसत्कांचन कंकणौ वा
बर्हायिते ते नयने नराणां लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षतो ए.
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजो क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यो
जीवंछवो भागवतांघ्रिरेणु: न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु
श्री विष्णु पद्यामनुजस्तुलस्या: श्वसंछवो यस्तु न वेदगंधम्

श्रीमद्भागवत 2-3 (20-23)

तुलसी ने 'उत्तर रामचरित' का भी उपयोग किया है. एक उदाहरण प्रस्तुत है :

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि,
लोकोत्तराणां चेतांसि को न विज्ञातुमर्हहित. **--उत्तर रामचरित, अंक 2-7**
कुलिशहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहि चाहि,
चित्त खगेस रघुनाथ अस समुझि पेरं कहु काहि.

'भगवद्गीता' के 'यदायदाहिं धर्मस्य' का अनुवाद तो 'जबजब होहि धरम के हानी' के रूप में प्रसिद्ध ही है, और भी अनेक अनुवाद हैं :

ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेर्जून तिष्ठति, भ्रामयंसर्वभूतानि यंत्रारूढ़ानि मायमा.

--गीता 18·61

उमा दारु जोषित की नाईं, सबहि नचावत रामु गोसाईं.

--मानस, किष्किंधा. 10-7

इन उद्धरणों के अतिरिक्त अनेक उद्धरण श्री गंगासहाय 'प्रेमी' के लेख

'तुलसी साहित्य : अनुवादों की नुमाइश' शीर्षक लेख में दिए गए हैं.

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी के रामचरित मानस में मौलिक कुछ नहीं है, सब इधरउधर का लिया हुआ है. कहीं अविकल अनुवाद है, कहीं भावानुवाद है, कहीं छायानुवाद है और कहीं कथानक की चोरी है. महाकवि क्षेमेंद्र का निम्न छंद तुलसीदास पर खरा उतरता है :

छायोपजीवी पदकोपजीवी पादोपजीवी सकलोपजीवी,
भवेदथ प्राप्त कवित्वजीवी स्वोन्मेषतो वा भुवनोपजीव्य:

हो सकता है कि तुलसी में प्रतिभा रही हो, लेकिन उन की चिंतन प्रक्रिया में कहीं गड़बड़ी अवश्य थी जिस के कारण उन के काव्य में पुनरुक्ति, अनुवाद और परंपरा से प्राप्त ज्ञान का पुन:प्रकाशन मात्र ही हो पाया. वह संत कबीर की तरह किसी नए क्रांतिकारी विचार को प्रस्तुत नहीं कर सके. तुलसी की चिंतन प्रक्रिया में कहां गड़बड़ी थी, यह जान लेना बहुत जरूरी है.

सत्य के विपरीत भारतीय परंपरा में ज्ञान विकासमान नहीं माना गया है, बल्कि उलटे ह्रासमान माना गया है. सारा ज्ञानविज्ञान हमारे यहां देवों और ऋषियों का दिया हुआ बताया जाता है, जिस में कोई नयापन होने या कुछ जुड़ने की बात स्वीकार नहीं की जा सकती. हम मनुष्य देवों के दिए हुए उस ज्ञान में कोई वृद्धि नहीं कर सकते, क्योंकि वहां स्पष्ट घोषणा है कि 'जो यहां है वही सर्वत्र है, जो यहां नहीं है वह कहीं नहीं हो सकता.' 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्निहास्ति न तत्ववचित्.' ऐसी स्थिति में हम भारतीयों को सदा उसी मार्ग पर चलना होता है. मौलिकता पर हमारी परंपरा में प्रतिबंध है.

मौलिकता का मोह

इसी कारण यहां हजारों वर्षों तक प्रतिभाशाली विद्वान मात्र टीकाएं और व्याख्याएं लिखते हैं. वे किसी मौलिक ग्रंथ की रचना नहीं कर सके. इसी परंपरा में तुलसी भी है. तब फिर भला उन्हें संस्कृत साहित्य की काव्योचित कल्पनाओं, रूपकों, उपमाओं, कथाप्रसंगों के आयात और पुन:प्रकाशन में क्यों संकोच होता! यदि वह संस्कृत से अवधी पर न उतरे होते तो मानस की रचना न कर के किसी प्राचीन ग्रंथ की टीका लिखते.

लेकिन ऐसी बात नहीं कि तुलसी को मौलिक बनने का मोह नहीं था. 'कवि न होऊं नहि चतुर कहावौं' तो बस कहने की बात थी, कवि कहलाने की इच्छा थी. संस्कृत साहित्य की चुराई हुई उक्तियों को फिर से संस्कृत में लिखने पर भला कौन उस की सराहना करता, इसलिए उन्होंने लोकभाषा की शरण ली, जिस के पाठक आम तौर पर संस्कृत से अनजान थे और वहां यह मिलावटी माल ऊंचे दाम पर बिक सकता था. इसी कारण तुलसी को उस वर्ग में लोकप्रियता प्राप्त हो गई, लेकिन विद्वत समाज का आदर न मिल सका.

सारे भक्तिकाल और रीतिकाल में तुलसी की प्रशंसा के दो, केवल दो पद

हैं. एक भिखारीदास का 'तुलसीगंग दुवौ गए,' दूसरा वेनी कवि की घनाक्षरी—'वेद मन सोधिसोधि के पुरान सबै.' तुलसी के समकालीन मधुसूदन सरस्वती का एक संस्कृत छंद 'आनंद कानने कश्चित्...' भी मिलता है. इतने बड़े गरिमा ग्रंथ 'रामचरित मानस' के प्रणेता के प्रशंसकों की इतनी कमी का कारण क्या हो सकता है? केवल यही कि उस में कोई मौलिकता नहीं थी जिस की लोग प्रशंसा करते.

तुलसी इस अर्थ में युगद्रष्टा अवश्य थे कि उन्होंने समझ लिया था कि भावी पीढ़ी संस्कृत से और भी अनभिज्ञ होगी और उस युग के व्यक्ति यह तमीज ही न कर पाएंगे कि तुलसी का कितना अपना है और कितना मांगा हुआ, इसलिए उन्होंने दिनदोपहर संस्कृत ग्रंथों की अनुकृति शुरू कर दी.

निंदा के पात्र

जब तुलसीदास मानस की रचना करते समय उस में संस्कृत ग्रंथों से प्रचुर आयात व्यापार चला रहे थे, तब अयोध्या के पंडित क्षुब्ध हो गए. शायद तुलसी पहले कथावाचक थे और वह कुछ दिनों तक प्रसंगानुरूप संस्कृत उद्धरणों का उपयोग कथा को सुंदर बनाने के लिए करते रहे होंगे. फिर उन्होंने अवधी अनुवाद शुरू किया होगा. उस समय के पंडितों को इस प्रकार की काव्यशास्त्रीय चोरी पसंद न आई होगी, इसलिए अयोध्या में तुलसीदास निंदा के पात्र घोषित किए गए और उन्हें परेशानी भी भुगतनी पड़ी. इसे तुलसी ने बड़े अमर्ष और आक्रोश से व्यक्त किया है. उन्होंने ऐसे सभी संबोधनों का उल्लेख किया है, जो उस समय उन्हीं के लिए प्रयुक्त हो रहे थे.

धूत कहैं अवधूत कहैं रजपूत कहैं जोलहा कहैं कोऊ,
काहू के बेटी सों बेटा न ब्याहन काहू को जाति बिगार न सोऊ.

अंत में तुलसी को अयोध्या से भागना पड़ा. मानस में यह सोरठा है :

मुक्त जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अध हानि कर,
जहं बस शंभु भवानि, सो काशी सेइअ कस न.

बस यहीं से कथा काशी में जा कर लिखी गई है. काशी में भी उन के इस कार्य के अनेक आलोचक पैदा हो गए और वहां भी उत्पीड़न शुरू हो गया. सुना जाता है कि एक बार तुलसी पर लकड़ी से मार पड़ी थी और उन के सिर में चोट आई थी. उस के बाद अनेक वर्षों के लिए उन्होंने काशी को छोड़ दिया था. इतने बड़े 'गरिमा ग्रंथ' मानस के प्रणेता की उस के जीवनकाल में ही इतनी प्रताड़ना! आखिर क्यों लोग तुलसी को ढेले मारते रहे? इस का कारण मात्र वैयक्तिक ईर्ष्या नहीं हो सकती. इस का कारण यही था कि तत्कालीन पंडितों को संस्कृत और पूर्ववर्ती साहित्य का पर्याप्त ज्ञान था. उन्हें यह सहन नहीं हो पाता था कि कोई धूर्त संस्कृत और पूर्ववर्ती साहित्य को अपना कह कर प्रस्तुत करे.

यदि आज कोई भोजपुरी या बुंदेलखंडी में 'कामायनी,' 'प्रियप्रवास', 'लोकायतन,' 'उर्वशी,' आदि हिंदी काव्यों और प्रसाद, पंत, निराला, दिनकर आदि कवियों के काव्यगत भावों की अनुकृति कर के काव्य ग्रंथ लिखे तो क्या वह सुधीजनों का सम्मानित कवि बन सकता है? उस की आलोचना तो होगी ही.

तुलसी साहित्य आलोच्य विषय के रूप में माध्यमिक विद्यालयों से ले कर विश्वविद्यालयों तक पढ़ाया जा रहा है. तुलसी का कलापक्ष, भावपक्ष, शील-संविधान, भाषा वैशिष्ट्य, कथानक संगठन आदि विभिन्न शीर्षकों--उपशीर्षकों के अंतर्गत निबंध लिखे और लिखाए जाते हैं. जब वह तुलसी का अपना है ही नहीं तब उन के आधार पर इन निबंधों की रचना कितनी हास्यास्पद है, पहले विद्वान और शोधकर्त्ता यह तो निर्णय करें कि तुलसी का कितना अपना है. यानी तुलसी कितने मौलिक हैं? फिर उस के आधार पर तुलसी का मूल्यांकन किया जाना चाहिए. इस प्रकार के अन्वेषण में तुलसी मात्र भाषांतरकार नजर आएंगे और उन का काव्य मात्र पौराणिक परंपरा का संकलन घोषित होगा. ●

चार सौवीं जयंती

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा 'रामचरित मानस' के नाम से रची गई रामायण की रचना के 400 वर्ष पूरे होने पर लगभग चार वर्ष की तैयारी के बाद समस्त भारत में यह चतुश्शती समारोह मनाया गया. इन चार वर्षों से इस जयंती को मनाने के लिए भारत की केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों ने स्थानस्थान पर अपनीअपनी समितियां बनाई थीं. केंद्रीय सरकार की समिति राष्ट्रपति के संरक्षण में गठित हुई, अनेक केंद्रीय मंत्री और राजनयिक उस के सदस्य थे.

चार वर्ष की व्यापक तैयारी और धुआंधार प्रचार के उपरांत इस जयंती समारोह का अंतिम पर्व रामनवमी अप्रैल, 1974 के दिन मनाया गया था. दिल्ली में उस दिन केंद्रीय सरकार की समिति ने सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री राय की अध्यक्षता में मावलंकर हाल में एक सभा का आयोजन किया गया. राजधानी में इस उत्सव पर न तो कोई विशेष उत्साह ही जनता में था, न कोई विशेष सांस्कृतिक चेतना ही जागी, जिस की आशा की जाती थी. उत्तर प्रदेश में एक रिटायर्ड आई. सी. एस. अधिकारी द्वारा स्थापित जिला समितियों ने भी अपनेअपने आयोजन किए. वे मात्र लकीर पीटने जैसे नितांत फीके समारोह थे.

भारत से बाहर भारतीय और विदेशी नागरिकों द्वारा किए गए मानस चतुश्शती समारोहों में रूस तथा इंगलैंड में हुए समारोह उल्लेखनीय थे. इंगलैंड में भारतीय राजदूत श्री कौल के इस अवसर पर दिए गए सारगर्भित अंगरेजी वक्तव्य को बी. बी. सी. ने भी अपने कार्यक्रमों में प्रसारित किया था. उस भाषण में अंगरेजी के प्रयोग की बी. बी. सी. श्रोताओं ने कटु आलोचना की. विदेश में हुए समारोह तो औपचारिकता और शिष्टाचार से प्रेरित मात्र ही हो कर रह गए. इतने अधिक प्रचार और व्यय के बावजूद उस पर्व पर ऐसी निरुत्साहिता का कारण क्या हो सकता है? उत्तर आसान है. आज की पीढ़ी 'रामचरित मानस' को ही क्या, प्रत्येक अन्य बात को भी वैज्ञानिक दृष्टि से

देखना चाहती है. आने वाली पीढ़ियां तो और भी अधिक इस दृष्टिकोण को अपनाएंगी. क्या वास्तव में रामकथा संबंधी भारत और विदेशों में प्राप्य साहित्य के संदर्भ में 'रामचरित मानस' एक उच्च कोटि की रचना है, इस पर बिना अहंकार और लागलपेट के तनिक विचार कर लिया जाए.

रामकथा साहित्य

राम की भगवान के रूप में उपासना 800 वर्षों से अधिक पुरानी नहीं है. तुलसीदासजी ने 'रामचरित मानस' को आगमनिगम, देववेदांग आदि से लिया हुआ कहा है. किंतु न वेदों में राम कहीं भी वर्णित हैं, न उपनिषदों में. तुलसीदासजी ने 'मानस' को वाल्मीकि रामायण में वर्णित रामकथा से ही ले कर परिवर्धित व अलंकृत किया है.

बौद्ध ग्रंथों में राम बोधिसत्व के एक अवतार हैं तथा जैन धर्म में वे आठवें बलदेव के रूप में प्रतिष्ठित हैं. वाल्मीकि रामायण में वह भगवान के अवतार नहीं है.

संस्कृत में वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त लगभग 20 रामाख्यानक पूर्व काल में लिखे जा चुके हैं. इन में से लोमस रामायण, संव्रत रामायण, अध्यात्म रामायण, मुजुल रामायण, गौड़ीय रामायण, रामरहस्य, अगस्त्य रामायण, सुब्रह्म रामायण, सौर्य रामायण, चंद्र रामायण, रामायण चंपू आदि रामकथा से संबंधित संस्कृत रामायणों का उल्लेख 'हिंदुत्व' नामक ग्रंथ में है. महाभारत के वन पर्व में भी रामायण की पुरानी कथा है. पुराने 18 पुराणों में से प्रत्येक में रामकथा आई है. अध्यात्म रामायण और योगवशिष्ठ महारामायण अद्वैतवादी ग्रंथ हैं. विष्णु और नारायण के अवतार के रूप में राम की उपासना न उपनिषदों में है, न उक्त किसी संस्कृत रामायण में.

वाल्मीकि रामायण की कथा पर 'रामचरित मानस' की रचना से पहले संस्कृत में 'रघुवंश,' 'भट्टि काव्य,' 'महावीर चरित,' 'उत्तर रामचरित,' 'प्रतिभा नाटक,' 'जानकी हरण,' 'कुंदमाला,' 'अनर्घ राघव,' 'बाल रामायण,' 'हनुमन्नाटक,' 'अद्भुत रामायण,' 'आनंद रामायण' आदि ग्रंथ लिख गए. जो विभिन्न प्रांतों और देशों पर वाल्मीकि रामायण के प्रभाव के द्योतक हैं. रामकथा के अन्य भारतीय भाषाओं में 10वीं शती ईसवी की कवन कृत तमिल रामायण, 12वीं शती ईसवी की तेलुगु द्विपाद रामायण, 14वीं शती ईसवी की मलयालम रामचरितम, कन्नड़ी तोरावे रामायण, उड़िया बलरामदास रामायण, मराठी भावार्थ रामायण हैं. भारत के बाहर तिब्बत, श्री लंका, मध्य एशिया, हिंद चीन, श्याम, ब्रह्मदेश, बाली और यवद्वीप में प्रचलित रामकथा भी आठवींनौवीं शताब्दी ईसवी की हैं. इन में भी राम ईश्वरावतार नहीं हैं. लौकिक संस्कृत के जन्मदाता पाणिनि (450 ईसा पूर्व) ने राम का कहीं उल्लेख तक नहीं किया है.

श्री परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार रामावतार की कल्पना त्रावणकोर के आलवार संतों की 11वीं शताब्दी (ईसवी) की देन है. डाक्टर भंडारकर के अनुसार भी विष्णु के अवतार के रूप में रामकथा का प्रचलन 11वीं शताब्दी (ईसवी) में हुआ था. उत्तर भारत में मुसलिम अत्याचारों से क्षुब्ध हो कर स्वामी रामानंद ने राम की उपासना परब्रह्म के रूप में चलाई. रामानंदजी का जन्म प्रयाग में सन 1398 के लगभग हुआ. वह रामानुज संप्रदाय के वैष्णव थे. स्वयं रामानुज अपनेआप को द्रविड़ाचार्य के शिष्य मानते थे. द्रविड़ाचार्य नामक आचार्य आलवार के शठकोष या बकुलाभरण नामक आचार्य थे, जिन्होंने दक्षिण में रामभक्ति का प्रचार किया था.

स्वामी रामानंद ने रामानुज के वैष्णव संप्रदाय को अधिक उदार बना कर जो संप्रदाय चलाया, वह रामावत संप्रदाय कहलाता है. उन के शिष्यों में जाट, शूद्र, चमार, मुसलमान स्त्री आदि का समावेश हो सकता था. उन के विचार बड़े उदार थे. स्वामी रामनंदजी की शिष्य परंपरा में नरसिंहदासजी हुए और गोस्वामी तुलसीदास उन्हीं के शिष्य थे.

कबीर भी रामानंद के शिष्य थे किंतु कबीर का मत तुलसीदासजी के मत से बहुत अधिक व्यापक और उदार था. कबीर ने स्वयं कोई ग्रंथ नहीं लिखा. उन के शिष्यों ने उन के मुख से निकली वाणी को 'बलक्क रमैनी,' 'अक्षर भेद की रमैनी,' 'चौकाघर की रमैनी,' आदि रामकथा से संबधित रमैनियों (रामायणों) में लिपिबद्ध किया. कबीर रामकथा की इन रमैनियों को गागा कर सुनाते थे और राम नाम के साथ ही सत्यनाम को भी अपने भजन का विषय बनाते थे. वह एकेश्वरवादी थे, अवतार, मूर्ति, रोजा; ईद, मसजिद, मंदिर आदि को नहीं मानते थे. नानकपंथ, दादूपंथ आदि दस पंथ कबीर की ही निर्गुण निराकार उपासना से निकल पड़े.

द्रविड़ या असुर?

घुमंतू पशुपाल आर्यों का सिंधु नदी घाटी में अपने से उन्नत और सभ्य जिन अनार्यों से संपर्क हुआ वे पश्चिम के असीरियन (असुर) लोगों से भिन्न न थे. ये अनार्य या द्रविड़ अथवा असुर बहुदेववादी, मूर्तिपूजक थे. सूर्य, चंद्र तथा शिश्नदेव (लिंग) के उपासक तथा प्रजनन (फर्टिलिटीकल्ट) कर्मकांडी थे. द्रविड़ कही गई जातियां सिंधु घाटी अथवा बैबीलोनिया की दजलाफुरात घाटी और मिस्र की नील नदी घाटियों में एकदूसरे की समसामयिक थीं. तत्कालीन पुरातात्त्विक सामग्री से इन तीन नदी घाटियों में पारस्परिक संपर्क के अनेक उदाहरण अब उपलब्ध हो गए हैं.

पुराविद् डाक्टर मजूमदार के अनुसार आज के हिंदू धर्म में 75 प्रतिशत

अंश अनार्य अथवा द्रविड़ है. पूजा, उपासना. भजन, भक्ति, योग आदि शब्द द्रविड़मूलक हैं. हिंदू धर्म के आदर्श ग्रंथ भागवत और विष्णु पुराण हैं. उन के अनुसार प्रलय के उपरांत मनु ने इस सृष्टि का आरंभ किया तथा वर्तमान अनवंतर के आदि मानव, वैवस्वत मनु द्रविड़ कुल में जन्मे थे. भागवत पुराण में कहा गया है :

'उत्पन्ना द्राविड़े चाहं कर्णाटे वृद्धि गता,
स्थिता किंचिमहाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता.'

(अर्थात भक्ति कहती है : मैं द्रविड़ कुल में जन्मी, कर्नाटक में बढ़ी, कुछ दिन महाराष्ट्र में रही, गुजरात में बूढ़ी हुई.)

वही श्लोक कुछ उलटफेर के साथ एक अन्य महत्त्वपूर्ण धर्मग्रंथ 'पद्म पुराण' में भी आता है. वाल्मीकि रामायण भी एक भक्ति काव्य है. रेवरैंड फादर कामिल बुलके के अनुसार राम, रावण तथा हनुमान क्रमशः आर्य, अनार्य तथा आदिवासी--इन तीन विभिन्न संस्कृतियों के आदर्श पुरुष रहे होंगे तथा तीनों के संबंध में पूर्व काल से ही अनेक आख्यान काव्य प्रचलित रहे होंगे. इन्हीं आख्यानों के आधार पर वाल्मीकि ने आदि रामायण की रचना की. प्राचीन काल में ये आख्यान राजाओं के सूतों द्वारा जन समारोहों, उत्सवों और राजदरबारों में गाए जाते होंगे.

काव्य शास्त्र का साधारण पंडित भी तुलसी कृत 'मानस' में यत्रतत्र अधकचरे वाक्य, अटपटी कल्पना और बेढंगी उपमाओं से अनेक दोष देख सकता है. प्रबंध काव्य का साधारण नियम है कि मुख्य नायक को ही प्रधानता दी जाए. 'मानस' की एक चौपाई है :

'भरत अमित महिमा सुनु रानी, जानहि रामु न सकहिं बखानी.'

(अर्थात रामचंद्रजी भी भरत की महिमा का वर्णन नहीं कर सकते.)

यदि ऐसा ही भरत का उदात्त चरित्र और यही निरूपण कवि को करना था तो इस ग्रंथ का नाम 'रामचरित मानस' न हो कर 'भरतचरित' होना चाहिए था.

मानस में काव्य दोष

छोटेमोटे काव्य दोष तो पगपग पर मिलते हैं. आरंभिक दोहे को ही लीजिए :

'श्री गुरुचरण सरोज रज निज मन मुकुरु सुधारि.'

इस दोहे में श्री गुरु के चरणकमलों की धूल से अपने मन रूपी आईने (शीशे) को सुधारना कैसा असंगत है! धूल से क्या आईना साफ किया जा सकता है? थोड़ी देर यह कल्पना कर लें कि चरण को कमल मान लिया गया है तो कमल की रज या पराग से भी आईना स्वच्छ नहीं किया जा सकता. फिर तो इस दोहे का स्वाभाविक अर्थ--मनरूपी आईने में से गुरु के चरणों

की धूल को झाड़ कर—यह हो जाता है.

'मानस' में कई बार तुलसीदासजी ने स्वयं कहा है कि वह कवि नहीं हैं तथा कविता का विवेक उन में नहीं है. यह उन की विनम्रता नहीं, सहज स्वीकारोक्ति है, क्योंकि वह शब्द और अक्षर...इन दोनों में क्या अंतर है, यह नहीं जान पाए. 'काव्य प्रकाश' के अनुसार 'शब्दार्थ काव्यं' अर्थात शब्द के विभिन्न अर्थों का आलंकारिक अभिव्यंजन ही काव्य है. तुलसीदासजी लिखते हैं :

'आखर अरथ अलंकृति नाना...' तथा दूसरे स्थल पर...'कविहि अरथ आखर बहु सांचा.'

लगता है कि काव्य के मूल 'शब्द' से गोस्वामीजी सर्वथा अपरिचित थे.

'रामचरित मानस' अशिक्षित या अर्धशिक्षित श्रोताओं को चौपाल या मंदिर में सुनाने के लिए रची गई दोहों, चौपाइयों में गाई जाने योग्य कथा है. उन दोहों, चौपाइयों के पदों की मात्राओं को समान रखने के लिए शब्दों को जिस मनमाने ढंग से तोड़ामरोड़ा गया है, वह किसी भी व्याकरण के नियम के अनुरूप नहीं है. आखिर उस अखरोटी में लिखित कविता भ्रष्ट ही हो जाएगी. 'मानस' में आज को आजू, समाज को समाजू, प्रकाश को प्रकाशू और मिथिलेस मिथिलेसू केवल तुक भिड़ाने के लिए कर दिया गया है. इसी भांति क्लेस को क्लेसू, नाथ को नाथा, हाथ को हाथा भी कर दिया गया है. यदि अपना ही यह नियम सर्वत्र होता तो भी ठीक था किंतु एक ही चौपाई में कहीं नाथ लिखा गया है तो कहीं नाथा, कहीं नरेशू तथा कहीं कठोर कठोरे हो गया है :

'सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे, अर्थ अमित अति आखर थोरे.'

इस चौपाई में भी 'शब्द' की जगह पर ,आखर' आया है और तुकबंदी के लिए थोड़े के साथ कठोर को भी कठोरे हो जाना पड़ा है.

सोवियत रूस में मानस समारोह

सोवियत रूस में भी 'मानस चतुश्शती' भारतीय राजदूत डाक्टर शेवलंकर की अध्यक्षता में मनाई गई· रूसी विद्वान और भारतविद्याविद् चेंसिलेव ने इस अवसर पर जो भाषण दिया, उस में 'मानस' का कहीं जिक्र भी नहीं हुआ. सारी चर्चा महाकाव्यों पर चल पड़ी. रूसी भी सभी पाश्चात्य विद्वानों की भांति 'मानस' की वास्तविकता से परिचित हैं. उस का काव्य और उस की साहित्यिकता किस कोटि की है, यह उन से छिपा नहीं है.

'मानस' की चतुश्शती का समारोह रूसियों के लिए उन के महान कवि और साहित्यकार पुश्किन की 175वीं जयंती का वर्ष भी था. एलेक्जेंडर पुश्किन रूस का पहला कवि था जिस की ख्याति अपने देश के सीमा क्षेत्र से बाहर यूरोप के अन्य देशों को भी प्रभावित कर गई. उस की विनोदप्रियता और उस के मृदु व्यंग्य ही अद्वितीय नहीं हैं, वरन वह मानव मात्र की समानता का समर्थक भी माना गया है, जब कि 'मानस' रूढ़िवादी परंपराओं का पोषक

और नारी तथा शूद्र को पशु तुल्य प्रदर्शित करता है. अतः इस समारोह में 'मानस' का पुश्किन की रचनाओं के साथ उल्लेख जगहंसाई का ही कारण होता. रूस की हिंदी पत्रिका 'सोवियत भूमि' में छपे समारोह के विवरण का निम्नलिखित वाक्य उल्लेखनीय है :

चेलिशेव ने कहा : 'रामायण के ऐतिहासिक महत्त्व को नजरअंदाज करना कठिन है. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि प्राचीन भारत के दोनों महाकाव्यों—रामायण और महाभारत के निर्माण में शायद कई सौ वर्ष लगे होंगे.' —स्पष्ट है कि यह उल्लेख वाल्मीकि रामायण के लिए है, न कि तुलसी कृत 'रामचरित मानस' के लिए.

तुलसी कृत 'मानस,' पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में, पुराणों की नकल मात्र है. उस में न तो कालिदास की सी सहज अनुभूति से प्रेरित काव्य कला है और न किसी गहन चिंतन से परिपुष्ट अध्यात्म का ही पुट है. 'मानस' में कैलास पर्वत पर एक विशाल वट वृक्ष के होने का वर्णन है :

'परम रम्य गिरिवरु कैलासू, सदा जहां सिवउमा निवासू.
तेहि गिरि पर वट बिटप बिसाला, नित नूतन सुंदर सब काला.'

शीत प्रधान यूरोप के विद्वान यह भली भांति जानते हैं कि समुद्र तट से 17,000 फुट की ऊंचाई पर स्थित कैलास पर्वत पर वृक्ष तो क्या, घास भी नहीं उग सकती. वहां विशाल वट वृक्ष कहां?

एक अन्य स्थल पर रथ की तेज गति का वर्णन करते हुए तुलसी ने असंभाव्य कल्पना की है :

'जे जल चलहिं थलहिं की नाई, टाप न बूढ़ वेग अधिकाई.'

(अर्थात वेग की अधिकता से रथ के घोड़े पानी में भी बिना डूबे हुए सरपट पार हो जाते हैं.)

'रामचरित मानस'—हिंदी पुराण'

वास्तव में 'रामचरित मानस' मध्यकालीन भक्ति धारा के अंतर्गत रचे गए पुराणों की भांति एक पुराण है. अंतर यही है, वह उस से पहले के संस्कृत के पुराणों का हिंदी अनुवाद है. 'मानस' में तुलसीदासजी ने वाल्मीकि वर्णित रामकथा को अनेक उपकथाओं और परंपरागत रूढ़ियों से अलंकृत करने का प्रयत्न किया है. जिन पुराणों का सहारा लिया गया है उन में 'नारद पुराण' और 'स्कंद पुराण' प्रमुख हैं.

पाणिनि के समय तक जब लौकिक संस्कृत का जन्म हुआ था, राम विष्णु के अवतार नहीं माने गए थे. वाल्मीकि रामायण भी गुप्तकालीन पुराण है, 'मानस' उस की एक भोंडी अनुकृति है. जैन साहित्य में राम 'पउम' के नाम से विदित हैं. विमल सूरि का 'पउम चरित' रामकथा की 'मानस' से बहुत पहले रची गई प्राकृत रचना है. इसी भांति मराठी में संत एकनाथ का मराठी

32/13

भावार्थ रामायण 16वीं शताब्दी (ईसवी) का है. 'मानस' की कविता उन रचनाओं के समक्ष काव्य प्रणयन का फीका प्रयास है.

भक्ति रस प्रधान 'मानस' के लिए स्वर्गीय दिनकरजी की यह उक्ति जो उन्होंने 'संस्कृति के चार अध्याय' में व्यक्त की है, ठीक ही बैठती है : 'भक्ति काल की रचनाओं में नवीनता और ताजगी जरूर है, क्योंकि यह सर्वथा नूतन प्रयोग था. मगर बाकी तो...वह संस्कृत का अनुसरण मात्र ही है. जब जाति का हृदय सूख जाता है तो कवि और कलाकार पुरानी चीजों पर पच्चीकारी और नक्काशी के चमत्कार दिखलाने लगते हैं.'

तुलसी के भगवान

गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के नायक राम को लोकस्रष्टा ईश्वर के रूप में प्रतिपादित किया है.

धरती पर मनुष्य की ही तरह जन्मे और जीवनभर मानवीय क्रियाकलाप करने वाले एक राजपुत्र को सर्वशक्तिमान ईश्वर के पद पर प्रतिष्ठित करना कोई आसान काम नहीं था. इस के लिए उन्होंने राम के जन्म को ले कर 'मानस' में कई चमत्कारी प्रसंग जोड़ उन्हें ईश्वर का अवतार सिद्ध करने की कोशिश की.

ग्रंथ में ऐसे अनेक स्थल हैं जहां स्वयं राम द्वारा व्यक्त करवाई गई चेष्टाएं न सिर्फ उन के ईश्वरत्व के प्रति संदेह उपजाती हैं, बल्कि उस का मजाक भी उड़ाती हैं.

तुलसी ने अपने राम को समदरसी यानी सब पर समान दृष्टि रखने वाला कहा है.

'समदरसी मोहि कह सब कोऊ.' (पृष्ठ 656)

'कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ.' (पृष्ठ 662)

ईश्वर का समदरसी होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि तुलसी के अनुसार सारे जीव ईश्वर के ही अंग हैं. पर राम के 'समदरसित्व' के प्रति तुलसी उन के जन्म के साथ ही संदेह उत्पन्न कर देते हैं. रामजन्म का एक कारण बताते हुए तुलसी कहते हैं. 'विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार.' (पृष्ठ 194) अर्थात ब्राह्मण, गौ, देवता और साधुओं के लिए भगवान ने मनुष्य का अवतार धारण किया.

यह बात काफी आश्चर्यजनक है कि राम के कृपापात्र केवल ब्राह्मण, गाय, देवता तथा साधु ही हैं. वे अन्य प्राणियों के लिए अवतार नहीं लेते. इस प्रकार का सौतेला व्यवहार करने वाले को समदरसी कैसे कहा जा सकता है?

विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण जनकपुर में ठहरे हुए हैं. एक दिन

पूजा के लिए फूल लेने दोनों भाई राजा जनक की पुष्पवाटिका में प्रवेश करते हैं. संयोगवश उसी समय गौरीपूजन के लिए सीता भी अपनी सहेलियों के साथ वहां पहुंच जाती हैं. इस प्रसंग का वर्णन कर तुलसी कहते हैं :

'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि, कहत लखन सन रामु हृदयं गुनि.
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही, मनसा बिस्व बिजय कहं कीन्ही.
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा, सिय मुख ससि भए नयन चकोरा.
भए बिलोचन चारु अचंचल, मनहुं सकुचि निमि तजे दिगंचल.
देखि सीय सोभा सुखु पावा, हृदय सराहत बचनु न आवा.'

(पृष्ठ 223)

हाथों के कड़े, करधनी और नूपुरों की आवाज सुन कर राम हृदय में विचार कर लक्ष्मण से कहते हैं—यह ध्वनि ऐसी आ रही है मानो कामदेव ने विश्व को जीतने का संकल्प कर के डंके पर चोट मारी है. ऐसा कह राम ने फिर कर उस ओर देखा.

सीता के मुखरूपी चंद्र को निहारने के लिए उन के नेत्र चकोर बन गए. सुंदर नेत्र स्थिर हो गए. मानो निमि ने सकुचा कर पलकें छोड़ दीं. सीता की शोभा देख कर राम ने बड़ा सुख पाया. हृदय में वह सीता की सराहना करते, किंतु मुख से वचन नहीं निकलते.

मन:स्थिति

अपनी इस विक्षुब्ध मनःस्थिति का वर्णन आगे चल कर राम इस तरह करते हैं. 'जासु बिलोकि अलौकिक सोभा. सहज पुनीत मोर मन छोभा.'

चूंकि ईश्वर काम, क्रोध, मोहादि विकारों से सर्वथा रहित है इसलिए राम का सीता के प्रति उक्त मोह उन के ईश्वरत्व के बारे में सहज ही संदेह जगाता है. सीता को अपलक देखते रह जाना और लक्ष्मण से उस के रूपलावण्य की प्रशंसा करना तक तो एक सीमा तक समझ में आता है, पर राम द्वारा सीता के दर्शन से सुख प्राप्त करना और हृदय में उस की सराहना करने जैसी बातें अलिप्त ईश्वर के साथ कतई मेल नहीं खातीं.

अन्य प्रसंग

एक और प्रसंग के अंतर्गत शाम को गुरु विश्वामित्र की आज्ञा पा दोनों भाई संध्या करने बैठते हैं. तभी पूर्व दिशा में सुंदर चंद्रमा उदित होता है. राम उसे सीता के मुख के समान देख कर सुख पाते हैं. फिर मन में विचार करते हैं कि यह चंद्रमा सीताजी के मुख के समान नहीं है. चंद्रमा का जन्म तो खारे समुद्र से हुआ और विष इस का भाई है. दिन में यह निस्तेज रहता है और फिर इस में कलंक भी है. चंद्रमा सीता के मुख की समानता कैसे पा सकता है? यह तो घटताबढ़ता विरहिणियों को दुख देने वाला है, राहु अपनी संधि में पा कर इसे

ग्रस लेता है.

उक्त आशय की चौपाइयां इस प्रकार हैं :

'बिगत दिवसु गुरु आयसु पाई, संध्या करन चले दोउ भाई.
प्राची दिसि ससि उगउ सुहावा, सिय मुख सरिस देखि सुख पावा.
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं, सीय बदन सम हिमकर नाहीं.
जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु, दिन मलीन सकलंक.
सिय मुख समता पाव किमि, चंदु बापुरो रंक.
घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई, ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई.'

(पृष्ठ 229)

विश्वामित्र सोचते होंगे कि भगवान राम अपने भक्तों के पथप्रदर्शन हेतु संध्यावंदन कर रहे हैं, लेकिन भगवान तो यहां सब कुछ भूल कर प्रेम के चक्कर में पड़े सीता के मुख की तुलना चांद से करने में निमग्न हैं!

अपनी चांद विषयक धारणा को मानस में जोड़ते वक्त तुलसी ने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा होगा कि एक समय ऐसा भी आएगा जब धरती का मानव चांद पर पैर रखने में सफल होगा और तब उन की यही चतुराई उन के उपास्य देव राम की सर्वज्ञता को समाप्त कर देगी.

भगवान कैसे?

और फिर आधुनिक युग का कोई भी तर्कशील मनुष्य ऐसे व्यक्ति को सर्वद्रष्टा और भगवान मानने को तैयार नहीं होगा जो कहता है कि चांद समुद्र से निकला है और उसे राहु लगता है.

राम ने राजा जनक की सभा में शिव का धनुष तोड़ दिया. धनुर्भंग की खबर सुन कर परशुराम दौड़े आए. पहले तो परशुराम ने बड़ी देर तक लक्ष्मण से वाक्युद्ध किया और राम के बीच में बोलने पर उन्हें भी बुराभला कह डाला. पर अंत में जब राम ने भी जोश में आ कर अपने कुल की वीरता का बखान आरंभ किया तो परशुराम के नेत्र खुल गए और वह बोले :

'राम रमापति कर धनु लेहू, खैंचहु मिटै मोर संदेहू.
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ, परसुराम मन बिसमय भयऊ.
जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात.
जोरि पानि बोले बचन प्रेम न हृदय समात.' (पृष्ठ 266)

(हे राम, हे लक्ष्मीपति! धनुष को हाथ में ले कर खींचिए जिस से मेरा संदेह मिटे. परशुराम धनुष देने लगे तो वह अपनेआप ही चला गया. परशुराम को बड़ा आश्चर्य हुआ. तब उन्होंने श्रीराम का प्रभाव जाना और उन का शरीर पुलकित हो गया. वह हाथ जोड़ कर बोले कि प्रेम हृदय में नहीं समाता.)

राम की ही तरह परशुराम को भी ईश्वर का अवतार बताया गया है. तुलसी के अनुसार, राम के युग में बच्चाबच्चा उन के रूप से परिचित था. इतना ही

नहीं, उन के शत्रु मारीच, कालनेमि, रावण व बालि आदि निशाचर तथा उन की पत्नियां मंदोदरी और तारा तक राम की शक्लसूरत देखे बिना केवल नाम सुन कर ही उन के अलौकिक व्यक्तित्व को जान गई थीं. पर दो युगों तक जीवित रहने वाले तप की मूर्ति परशुराम जैसे एक भगवान को भी राम को पहचानने में इतनी देर लगी!

राम ने जब गुरु वसिष्ठ के मुख से अपने अभिषेक आयोजन की खबर सुनी तो वह इस प्रकार सोचने लगे :

'जनमे एक संग सब भाई, भोजन सयन केलि लरिकाई.
करनबेध उपबीत बिआहा, संगसंग सब भयउ उछाहा.
बिमल बंस यहु अनुचित एकू, बंधु बिहाई बड़ेहि अभिषेकू.' (पृ. 343)

(हम सब भाई एक ही साथ जन्मे. खाना, सोना, लड़कपन के खेल, कर्णछेदन, यज्ञोपवीत और विवाह आदि उत्सव सब साथसाथ ही हुए. पर इस निर्मल वंश में यह एक अनुचित बात हो रही है कि सब भाइयों को छोड़ राज्याभिषेक एक बड़े का ही हो रहा है.)

राम का उक्त चिंतन उन के ही पूर्व कथनों जैसे : 'होइ है सोई जो राम रचि राखा,' 'राम कीन्ह चाहैं सोई होई' तथा 'उर प्रेरक रघुवंश विभूषण' पर एकदम पानी फेर देता है. जब राम की इच्छा और अंतःप्रेरणा के द्वारा ही सब कुछ हो रहा था तो फिर वह रघुकुल की परंपरागत राजव्यवस्था को क्यों करार दे रहे हैं.

भरत के आगमन पर

वनवास के दौरान राम ने जब भरत के आगमन की खबर सुनी तो पहले तो वह प्रसन्न हुए, लेकिन फिर सोच में पड़ गए कि आखिर भरत के वन आने का कारण क्या है? जब किसी ने आ कर कहा कि भरत के साथ बड़ी भारी चतुरंगिणी सेना भी है तब तो राम और भी अधिक चिंतित हो गए.

'बहुरि सोचबस भे सियरवनू. कारन कवन भरत आगवनू.
एक आइ अस कहा बहोरी. सेन संग चतुरंग न थोरी.
सो सुनि रामहि भा अति सोचू.' (पृष्ठ 514)

यहां राम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि भरत सेना के साथ किस उद्देश्य से आ रहे हैं. राम की यह अनिश्चित चित्तवृति उन की सर्वव्यापकता के लिए खुली चुनौती है. जो व्यक्ति अपने भाई की मनोदशा नहीं जान सका, उसे अंतर्यामी की उपाधि देना उस की खिल्ली उड़ाना है.

रामरावणयुद्ध हो रहा है. राम ने रावण के सिर अनगिनत बार काटे, पर कटते ही सिर फिर बढ़ जाते हैं :

काटत बढ़हिं सीस समुदाई, जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई.
मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा, राम बिभीषन तन तब देखा.
उमा काल मर जाकीं ईछा. सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा.

सुनु सरबग्य चराचर नायक, प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक.
नाभिकुंड पियूष बस याकें, नाथ जियत रावनु बल ताकें. (पृष्ठ 540-41)

(काटते ही सिरों का समूह बढ़ जाता है. जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है. शत्रु मरता नहीं और परिश्रम बहुत हुआ. तब राम ने विभीषण की ओर देखा. शिवजी कहते हैं—हे पार्वती! जिस की इच्छा मात्र से काल भी मर जाता है वही प्रभु सेवक की प्रीति की परीक्षा ले रहे हैं. विभीषण ने कहा—हे सर्वज्ञ, हे चराचर नायक, हे शरणागत वत्सल, देवता और मुनियों को सुख देने वाले सुनिए! इस के नाभिकुंड में अमृत का निवास है. हे नाथ, रावण उसी के बल पर जीता है.)

राम के चरित्र को हानि

तुलसी को यह आभास हुआ होगा कि चूंकि राम रावण को मारने के लिए ही अवतरित हुए हैं, इसलिए उन के द्वारा विभीषण से रावण की मृत्यु के रहस्य की याचना की बात पढ़ कर पाठक अवश्य ही संदेह में पड़ जाएंगे. अतः वह शिवजी के मुख से प्रेम परीक्षा वाली बात कहलवाकर तुरंत प्रसंग के बीज डाल देते हैं. पर यह बात राम की ईश्वरत्व रक्षा करने के बजाए उसे नुकसान ही ज्यादा पहुंचाती है.

जीवों के जीव और घटघटवासी राम, जिन की इच्छा के बगैर कुछ नहीं हो सकता, वह ही विभीषण के प्रेम को नहीं जान सके और उन्हें उस की परीक्षा लेने की जरूरत पड़ी! क्या विभीषण के हृदय में उन का निवास नहीं था?

इन असंगतियों के अलावा भी रामचरितमानस में राम के व्यक्तित्व को हानि पहुंचाने वाला एक और तत्त्व है और वह है—तुलसी के कुछ पूज्य व्यक्तियों की राम द्वारा उच्चता प्रमाणित करवाने की लोभवृत्ति. गुरु और ब्राह्मण नामधारी साधारण मनुष्यों की पगपग पर स्थूल सेवा तथा पदवंदना करने के साथ-साथ ही राम उन का स्मरण करते हुए भी नजर आते हैं. राम जनक की सभा में, राम द्वारा धनुष तोड़े जाने के समय का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं :

'गुरहि प्रनामु मनहि मन कीन्हा, अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा.'
(पृष्ठ 249)

सोने की तैयारी में राम :

'सुमिरि संभु गुर बिप्र पद किए नीदबस नैन.' (पृष्ठ 329)

युद्धस्थल में राम रथ पर चढ़े तब :

'अस कहि रथ रघुनाथ चलावा, बिप्र चरन पंकज सिरु नावा.' (पृष्ठ 826)

ऊपर की दोनों पंक्तियों में गुरु के स्मरण की बात तो स्पष्ट है ही, अंतिम चौपाई के विप्रचरण वंदन का तात्पर्य भी प्रणाम ही है, क्योंकि युद्धस्थल में अपनी चरणवंदना करवाने के लिए राम के समक्ष किसी ब्राह्मण की उपस्थिति का उल्लेख नहीं किया गया है.

उक्त उदाहरणों को देखते हुए तुलसी के भगवान राम अंधविश्वासी में कैद उस मनुष्य से ज्यादा नहीं ठहरते जो परंपरागत संस्कारों के बोझ से लदा हुआ है और पगपग पर अवास्तविक जयजयकार करता, सिर झुकाता हुआ चलता है.

लेकिन यह तथ्य किसी भी रामभक्त को स्वीकार्य नहीं हो सकता, क्योंकि हिंदू जनमानस की कमजोरियों के मर्मज्ञ तुलसीदास ने शंकरजी के मुख से कहलवा दिया है कि मन, बुद्धि और वाणी के द्वारा राम की तर्कना नहीं की जा सकती.

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी, मत हमार अस सुनहि भवानी.' (पृ. 138)

अभिप्राय यह है कि राम की ईश्वरता तर्क और बुद्धि द्वारा किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होती. फिर भी वह निस्संदेह ईश्वर हैं.

फिर भी अगर कोई प्रबुद्ध व्यक्ति केवल श्रद्धा के सहारे ही राम को ईश्वर मानने को तैयार न हो तो उसे हतोत्साहित करने के लिए शिवजी का यह दूसरा कथन दंडविधान के रूप में लागू होता है.

'उमा राम गुण गूढ़ पंडित मुनि पावहिं विरति.

पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि विमुख न धर्म रति.' (पृष्ठ 595)

(हे पार्वती! राम के गुण (चरित्र) रहस्यपूर्ण हैं. पंडित और मुनि उन्हें सुन कर वैराग्य प्राप्त करते हैं. परंतु जो भगवान से विमुख हैं और जिन का धर्म में प्रेम नहीं है, वे महामूर्ख उन्हें सुन कर मोह (संदेह) को प्राप्त होते हैं.)

अब कोई रामभक्त राम पर संदेह कर के पंडित, मुनि और वैराग्यवादी के समाज से बहिष्कृत हो महामूर्खों की कतार में खड़े होने का जोखिम क्यों उठाना चाहेगा?

एक षड्यंत्र

राम को ईश्वर मनवाने के लिए तुलसी द्वारा फैलाया गया जाल यहीं पर ही समाप्त नहीं होता. धर्मभीरु पाठकों को ठीक मार्ग पर जाने से रोकने के लिए उन्होंने विभिन्न कथाओं के रूप में एक आतंक का वातावरण पैदा किया है.

काकभुशुंडि ने राम की सर्वव्यापकता पर संदेह किया तो भयाक्रांत हो उसे ब्रह्मलोक तक भागना तथा राम के पेट में घुसना और निकलना पड़ा.

गरुड़ को भ्रम हुआ तो उसे काकभुशुंडि के पास रह कर दीर्घकाल तक रामकथा सुननी पड़ी.

सती के अविश्वास ने तो उस की जिंदगी ही बरबाद कर दी. बेचारी को पतिपरित्यक्त हो आग में जल कर मरना पड़ा. फिर जब पार्वती के रूप में जन्मी तो अपने पूर्व स्थान पर पहुंचने यानी शिवजी की अर्धांगिनी बनने के लिए उसे कई हजार वर्ष तक घोर कठिन तप करना पड़ा.

अब ऐसे में साधारण आदमी की क्या औकात जो राम के ईश्वरत्व में संदेह कर सके.

तुलसी के भगवान :

आलोचनाओं व आपत्तियों का उत्तर

सरिता में प्रकाशित मेरे लेख 'तुलसी के भगवान' के संबंध में कुछ आलोचनाओं और आपत्तियों का उत्तर देने के पश्चात मूल लेख के संबंध में ही मुझे कई और पाठकपाठिकाओं की प्रतिकूल प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुई हैं.

प्रकाशित लेख में एक संदर्भ है : "यह आश्चर्य की बात है कि ईश्वर के कृपापात्र केवल ब्राह्मण, गाय व देवता और साधुमहात्मा ही रहे हैं. और वह बार-बार इन्हीं लोगों के लिए जन्म लेता रहा है, दूसरों के लिए नहीं. सृष्टि का नियंता कहला कर भी जो भगवान प्राणियों के प्रति इस प्रकार का सौतेला व्यवहार करता है उसे समदर्शी कैसे कहा जा सकता है? मेरी इस अभिव्यक्ति पर आलोचकों ने घोर आपत्ति प्रकट की है. वे राम को समदर्शी सिद्ध करने के लिए तुलसी के मानस की इस चौपाई का उद्धरण देते हैं :

'विप्रधेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार.'

आलोचकों ने इस चौपाई में 'संत' शब्द को संपूर्ण चराचर जगत का प्रतिनिधि कहा है, और—'सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरणी' का उल्लेख कर 'धरणी' शब्द को यावत चराचर जगत का पर्याय बताते हुए प्रकारांतर से राम को सिद्ध करने की चेष्टा की है.

"साधु वर्ग में समस्त सज्जन लोग तथा निज कर्त्तव्य पालन करने वाले तथा असाधु में कामी, चोर आदि आते हैं. उन्होंने केवल असाधु का नाश करने हेतु समदर्शी अवतार लिया था."

"वेद पुराण में ब्राह्मण, गौ और देवता को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है और धरती से कवि का तात्पर्य एक ग्रह से नहीं बल्कि धरती पर निवास करने वाले समस्त जडचेतन पदार्थों से है."

ये दोनों ही तर्क समीचीन नहीं हैं. तुलसी के साधुसंतों तथा सांसारिक जनों में आकाशपाताल का अंतर है. जो संत भगवान को विशेष प्रिय हैं उन के लक्षण

स्वयं भगवान राम के मुख से सुनिए :

'षट बिकार जित अनघ अकामा, अचल अकिंचन सुचि सुखधामा.
अमितबोध अनीह मितभोगी, सत्य सार कबि कोबिद जोगी.'
सावधान मानद मदहीना. धीर धरम गति परम प्रबीना.
गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह.
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुं देह न गेह.
जप तप ब्रत दम संजम नेमा, गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा.
श्रद्धा छमा मयत्री दाया, मुदिता मम पद प्रीति अमाया.
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना, बोध जथारथ बेद पुराना.
दंभ मान मद करहिं न काऊ, भूलि न देहिं कुमारग पाऊ. (पृ. 650)

समाज में उच्चतम चरित्र के धनी माने जाने वाले पुरुष भी जब उपर्युक्त गुणों से युक्त नहीं हो सकते, तो साधारण व्यक्ति की क्या औकात जो इन गुणों से युक्त होने का दावा कर सके. तुलसी ने ये सारे लक्षण लंगोटी वाले साधुओं के लिए कहलवाए हैं. मगर इन में भी कोई साधु साधुत्व की इस कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता.

इस हिसाब से तो विश्व के सारे मनुष्य असाधु हुए. फिर पाठक का यह कहना कि राम ने केवल असाधुओं के नाश के लिए अवतार लिया, नितांत हास्यास्पद लगता है.

इसी प्रकार 'धरती' शब्द का अभिप्राय भी रामायण में तर्कसंगत नहीं है. रामचरितमानस में जब धर्म को अत्यंत हानि हुई तो पृथ्वी सोचने लगी :

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही. जस मोहि गरुअ एक परद्रोही.
(पृष्ठ 186)

पर्वतों, नदियों और समुद्रों का बोझ मुझे इतना भारी नहीं लगता, जितना भारी मुझे एक परद्रोही का लगता है.

पर्वतों, नदियों और समुद्रों का भार कौन धारण किए हुए है? अतः धरती शब्द से कवि का तात्पर्य धरती के निवासी जड़चेतन पदार्थ नहीं, अपितु इसी जड़ पृथ्वी से है जिस पर हम और आप निवास करते हैं.

हिंदू धर्म में ब्राह्मण, गौ और देवताओं को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है. इस कथन से पाठकों का आशय शायद यह है कि ईश्वर भी इन वर्गों पर विशेष कृपादृष्टि रखता है. पर यह दलील मेरे विचारों का खंडन करने के बजाए मंडन ही करती है, क्योंकि यह आचरण विषमदर्शी है और इस के धारक ईश्वर राम को समदर्शी कैसे मान लिया जाए?

इसी प्रसंग में एक पाठक ने पूछा है, "यदि भगवान ने साधु, ब्राह्मण या गौ की रक्षा के लिए जो दुखी तथा आतंकित थे तथा दुष्टों के विनाश के लिए मनुष्य रूप धारण किया तो इस में उन के समदर्शी होने में क्या त्रुटि रही? यदि वह दुष्टों तथा राक्षसों का साथ देते तब क्या समदर्शी होते?

त्रुटि यही है कि समदर्शी होते हुए भी उन्होंने कुछ जाति या वर्ग विशेष को ही प्राथमिकता क्यों दी? क्या अन्य प्राणी दुखी तथा आतंकित नहीं थे? क्या शेष सारे प्राणी दुष्ट तथा राक्षस ही हो गए थे?

जहां तक दुष्टों और राक्षसों का साथ देने का सवाल है तो दुष्ट और राक्षस आए कहां से जब कि जीव पूर्णतः परतंत्र एवं ईश्वर के संपूर्ण नियंत्रण में है? विश्वास नहीं तो पढ़ लीजिए इस आशय की कुछ चौपाइयां :

जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होई. (140)
रामकीन्ह चाहहिं सोइ होई, करै अन्यथा अस नहिं कोई. (143)
उमा दारु जोषित की नाईं. सबहि नचावत रामु गोसाईं. (665)
परबस जीव स्वबस भगवंता. (940)
उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन. (977)

फिर ईश्वर का यह व्यवहार क्या सौतेला नहीं कि कुछ जीवों को वह ब्राह्मण, गौ तथा देवताओं के विशिष्ट वर्ग में जन्म दें तथा कुछ को कुबुद्धि दे कर उन पर अत्याचार करवाएं. और फिर तथाकथित विशिष्ट वर्ग की चीखपुकार सुन निर्दोष किंतु कथित दुष्टों व राक्षसों के नाश के लिए धरती पर अवतार लें?

इस प्रकार पाठकों की सभी आपत्तियां निर्मूल हैं. रामचरितमानस के द्वारा राम को समदर्शी सिद्ध कर पाना कदापि संभव नहीं है.

इसी प्रकार पाठकों की अन्य सारी आपत्तियां भी मेरे लेख का मूल संदर्भ न समझ पाने के कारण उठाई गई हैं, जो एकदम अप्रासंगिक हैं. यथा :

"चूंकि राम पृथ्वी पर मनुष्य रूप धारण कर के आए थे, इसलिए उन का मनुष्य जैसा आचरण करना स्वाभाविक था."

"भरतागमन के समय तुलसीदास के कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि राम को भरत के मन की बात मालूम नहीं थी. वरन राम तो यह सोच कर व्याकुल हो रहे थे कि अगर भरत ने उन से वापस लौटने की जिद की तो उन्होंने पिता को जो वचन दिया है, उस का क्या होगा."

"अगर अचानक आप को खबर मिले कि आप का कोई अति प्रिय व्यक्ति आप को मारने आ रहा है तो आप भी सोचेंगे कि ऐसा हो नहीं सकता. उसी प्रकार (भरतागमन के समय) मनुष्य रूप भगवान को भी ऐसा संदेह हो सकता है."

विभीषण के संबंध में एक पाठक का स्पष्टीकरण है कि भगवान अपने भक्त को स्वतंत्र छोड़ कर परीक्षा लेते हैं कि वह उठना चाहता है या गिरना. वह यही बात देखना चाहते हैं कि जब विभीषण ने रावण की मृत्यु का भेद बता दिया तो वह परीक्षा में सफल हो गया, इस में काल्पनिक क्या है, यह आप का वहम और खोखलापन है.

तुलसी के राम बाह्य अचारण से तो एक आदर्श पुरुष हैं और वह तदनुकूल ही आचरण करते हैं, किंतु वास्तव में वह सर्वज्ञ, सर्वान्तिर्यामी एवं

उरप्रेरक संपू[illegible] हैं. [illegible] आलोचनाओं और आपत्तियों के उत्तर में उत्तरकांड 72 क व ख दोहों को दे कर स्पष्ट किया है.

इसी तथ्य को ध्यान में रख कर 'तुलसी के भगवान' लेख में मनुष्य राम नहीं ईश्वर राम अर्थात राम के बाह्य आचरण का नहीं उन की मनःस्थिति का अध्ययन किया गया है और उन से ईश्वर जैसे आचरण की नहीं वरन ईश्वर जैसे चिंतन की अपेक्षा की गई है, जो शतप्रतिशत उपयुक्त है, इसलिए मानवीय आचरण की दलील तथा भरत एवं विभीषण से संबद्ध सभी तर्क बेबुनियाद हैं. सर्वज्ञ, उरप्रेरक तथा सर्वान्तर्यामी व्यक्तित्व के साथ अनिश्चय, व्याकुलता तथा संदेह की मनोदशा का मेल कदापि नहीं हो सकता.

परीक्षा का प्रश्न उठते ही यह सिद्ध हो जाता है कि कोई भी परीक्षा किसी भी प्रकार तथा किसी भी अवस्था में क्यों न ली जाए परीक्षक को परीक्षार्थी के मन की बात का पता कभी नहीं रहता है. आलोचक के अनुसार राम ने विभीषण की यह इच्छा कि वह उठना चाहता है या गिरना न जान पाने के कारण ही उस की परीक्षा ली. इस में काल्पनिक बात यही है कि तुलसी ने राम को फिर भी अंतर्यामी जो कहा.

एक पाठिका ने धर्म और संस्कृति के दुर्भाग्य पर विलाप करते हुए लिखा है:

"समाज के एक बुद्धिजीवी द्वारा अपने धर्मग्रंथ का कृष्णपक्ष दर्शाया गया, जिसे पढ़ कर मानसिक दुख हुआ बल्कि अपने देश के, अपनी संस्कृति के दुर्भाग्य पर हुआ, जिस ग्रंथ को विदेशियों ने भी आत्मसात किया, जिस पर विदेशों में अब भी शोधकार्य चल रहा है, उस की श्रेष्ठता पर संदेह करना निराधार है.

"हिंदू धर्म का यह दुर्भाग्य उस के जन्मकाल से ही है. कुछ ने इस की महिमा का गुणगान किया तो कुछ ने समयसमय पर शंका उत्पन्न कर भ्रम पैदा करने की कोशिश की." लेकिन मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि जब अन्य धर्मों के लोग अपने धर्मों का पालन नियमपूर्वक करते हैं, तब हिंदू धर्मावलंबियों के सामने ही शंकाएं पहाड़ के रूप में हर वक्त क्यों मुंह बाए खड़ी रहती हैं?

"तुलसीदास द्वारा रचित रामायण का हर पहलू से अध्ययन न कर सिर्फ एक पहलू से उस का अध्ययन किया जाए और उसी के आधार पर संपूर्ण पुस्तिका को राम को ईश्वर मनवाने का एक षड्यंत्र मान लिया जाए, यह कहां तक उचित है? इस के लिए तुलसीदास को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि उन्होंने आरंभ में ही लिखा है:

"कबि न होउं नहिं चतुर कहावउं, मति अनुरूप राम गुन गावउं." (पृ. 44)

अगर हमारे किसी धर्मग्रंथ में कोई काला पक्ष है तो उसे क्यों न दर्शाया जाए? उसे अवश्य दर्शाया जाना चाहिए ताकि उस के दुष्प्रभाव से साधारण जनसमाज को बचाया जा सके और इस कार्य का उत्तरदायित्व समाज के

बुद्धिजीवियों पर ही है.

रामचरितमानस को विदेशियों ने आत्मसात किया, यह कोई अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बात नहीं है. क्या हिंदू लोग कुरान या बाइबिल नहीं पढ़ते? और इस का मतलब यह कैसे हो सकता है कि मात्र इसी लिए रामचरितमानस को सर्वोत्कृष्ट कृति मान लिया जाए.

अगर रामचरितमानस पर विदेशी शोधकार्य कर सकते हैं तो हम क्यों नहीं कर सकते? शोधकार्य का मतलब ही है वास्तविक तथ्यों का पता लगाना. मेरा लेख एक शोधलेख ही है.

अन्य धर्मों की अपेक्षा हमारे धर्म में बेसिरपैर की बातों, बेबुनियाद सिद्धांतों तथा खोखले और अनिष्टकारी आदर्शों का ढेर सब से बड़ा है. उन्हें ज्यों का त्यों आत्मसात करना सब के वश की बात नहीं है.

हमारे धर्म और हमारी संस्कृति के दुर्भाग्य के मूल कारण उस के आलोचक नहीं, बल्कि सदैव से वे लोग रहे हैं जो धर्म के नाम पर प्रत्येक अच्छी-बुरी बात का समर्थन न केवल स्वयं करते हैं, अपितु दूसरों को भी उस के लिए मजबूर करते रहे हैं. नरबलि तथा सतीप्रथा, जिन का स्मरण करने से आज भी एक सच्चे हिंदू का सिर शर्म से झुक जाता है, अभी तक बाकायदा हमारे धर्म का एक अंग बनी हुई थी. उन्हें किस ने दूर कराया—धर्म की बुराइयों के आलोचकों ने या आंख मूंद कर उस की महिमा का गुणगान करने वालों ने?

अगर हिंदू समाज में केवल उस की महिमा या गुणगान करने वाले ही होते तो संभवत: हिंदू धर्म अब तक मात्र बुराइयों का पर्याय बन कर रह गया होता.

दुनिया की एक सर्वमान्य बुराई जातिपांति आज भी हमारे धर्म का एक सशक्त अंग बनी हुई है. हम एक जानवर का जूठा खा लेते हैं, किंतु उस से पवित्र किसी अछूत नामधारी व्यक्ति का छुआ पानी भी नहीं पी सकते. क्या इस से बढ़ कर और कोई बुराई हो सकती है?

और इस जातिपांति और अस्पृश्यता की आलोचना क्या सिर्फ इसलिए नहीं की जानी चाहिए कि परम आदर्श ग्रंथ रामचरितमानस में इस का खुल कर समर्थन किया गया है?

बुरी बात हमेशा बुरी है, वह चाहे किसी धूर्त के 'मुख' से निकली हो या किसी देवता के मुख से, चाहे किसी सामान्य किताब में लिखी हो या किसी धर्मग्रंथ द्वारा समर्थित हो, जहर अपना असर दिखाएगा ही, चाहे वह किसी के भी हाथ से खाया जाए.

रामचरितमानस को ईसाइयों ने आत्मसात किया, इसलिए वह सर्वश्रेष्ठ और आलोचना क्षेत्र से परे हो गया. यह एक आत्मप्रवंचना और बहाना है. असलियत यह है कि हम हिंदू धर्म के विषय में बहुत अधिक दुराग्रही और

मोहतंद्राग्रस्त हैं तथा उसी अवस्था में रहना चाहते हैं. अगर हमें कोई जगाने की कोशिश करता है तो हम तरहतरह के उलटेसीधे तर्क दे कर उस का मुंह बंद करने की कोशिश करते हैं. वरना अगर हम सचमुच ईसाइयों पर इतना विश्वास रखते हैं तो उन से प्रेरणा ले कर अपने धर्म के कलंक जातिपांति व छुआछूत को क्यों नहीं तिलांजलि देते हैं, जब कि दक्षिण अफ्रीका में कालेगोरों के भेद को नष्ट कराने के लिए हम कटिबद्ध हैं.

एक छोटे से निबंध में किसी ग्रंथ के एक ही पहलू का अध्ययन संभव है. रामचरितमानस के संपूर्ण और सर्वांगीण विश्लेषण के अध्ययन के लिए 'विश्व-विजय प्रकाशन, एम-12 कनाट सरकस, नई दिल्ली' से प्रकाशित 'हिंदू समाज के पथभ्रष्टक तुलसीदास' नामक पुस्तक पढ़ने का कष्ट करें.

किसी वस्तु की वास्तविकता ज्ञात करने में तर्क और बुद्धि की सत्ता सर्वोच्च होती है. तुलसीदास कवि या चतुर कहाने के इच्छुक चाहे रहे हों या न रहे हों पर राम को ईश्वर मनवाने के वह प्रबल अभिलाषी थे. अतः उन्होंने तर्क और बुद्धि का गला घोंट कर हिंदू बुद्धि पर राम की ईश्वरता लादने की कोशिश की. उदाहरणार्थ कुछ चौपाइयों का अवलोकन कर लीजिए.

चरित राम के सगुन भवानी, तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी.
अस बिचारि जे तग्य बिरागी, रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी. (807)
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन. (742)
अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना, ते नर पसु बिनु पूंछ बिषाना (728)
जे मति मलिन बिषय बस कामी, प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी. (935)
मायाबस मति मंद अभागी. हृदयं जमनिका बहुबिधि लागी.
ते सठ हठ बस संसय करहीं, निज अग्यान राम पर धरहीं. (936)
निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी. प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी. (134)
बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहि न रामु.
राम कृपा बिनु सपनेहुं, जीव न लह बिश्रामु. (951)

इन चौपाइयों में तुलसी ने राम को बिना किसी तर्कवितर्क के ईश्वर मानने वालों को तत्वज्ञानी और विरक्त पुरुष कहा है तथा राम की ईश्वरता पर तर्क और बुद्धि का प्रयोग करने की चेष्टा करने वालों को मंदबुद्धि, कामी, विषयी, अभागा, दुष्ट तथा बिना सींगपूंछ का जानवर कहा है ताकि डर कर कोई राम की ईश्वरता में संदेह करने का साहस न कर सके. अपनी बात दूसरों से मनवाने की यह एक साजिश नहीं तो क्या आदर्श तरीका है?

इसी पाठिका ने संसार में ईश्वर के अस्तित्व का प्रश्न उठाते हुए उस के समाधान में लिखा है :

"हम यह मानने को मजबूर हैं कि कोई न कोई अदृश्य शक्ति जरूर है जिस के अधीन हो हम अच्छे या बुरे कर्मों को एक स्वचालित मशीन की तरह करते ही चले जाते हैं." इस अदृश्य शक्ति को पाठिका ने ईश्वर कहा है और

उसे न मानने वाले को एक अन्य स्थल में नास्तिक बताया है.

ईश्वर क्या है, यह एक पृथक लेख का विषय है. इस का विवेचन यहां संभव नहीं है.

यहां मैं इतना अवश्य स्पष्ट कर दूं कि लेखक यह नहीं मानता कि प्राणि-जगत किसी अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से स्वचालित मशीन की भांति काम करता है और न ही वह किसी अदृश्य ईश्वर की सत्ता को स्वीकारता है. केवल इस लिए अगर कोई उसे नास्तिक कहना चाहता है तो कह सकता है.

लेकिन अगर आलोचिका महोदया स्वयं अदृश्य ईश्वर की प्रेरणा वाली बात मानती हैं तो मैं तो हुआ ईश्वर की एक मशीन और मेरे माध्यम से स्वय ईश्वर ने 'तुलसी के भगवान' लेख लिखा. फिर उन्होंने मुझे गलत क्यों ठहराया?

नोट—इस लेख में पृष्ठ संख्याएं गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'रामचरित मानस सटीक, मझला साइज' से दी गई हैं. ●

दशरथ पुत्रों का जन्मकाल

दशरथ के चार पुत्र हुए. ये बच्चे कृत्रिम गर्भाधान द्वारा हुए थे. एक ही दिन रानियों ने यज्ञ का प्रसाद रूप चरु खाया था. एक वर्ष बाद कौशल्या के गर्भ से राम ने जन्म लिया. इस के दूसरे दिन भरत ने जन्म लिया. अगले दिन सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण और शत्रुघ्न जन्मे.

तुलसीदास ने रामजन्म की तिथि का निर्देश किया है :

'जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल,
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल.
नौमी तिथि मधु मास पुनीता, सुकल पच्छ, अभिजित हरिप्रीता,
मध्यदिवस अति सीत न घामा, पावन काल लोक बिश्रामा.'

(रामचरित मानस, बाल. पृष्ठ 191–92)

शेष भाई कब जन्मे, इस विषय में तुलसी ने कुछ नहीं कहा है :

'केकयसुता सुमित्रा दोऊ, सुंदर सुत जनमत भैं दोऊ.'

(राम, बाल. पृ. 195)

वाल्मीकि ने इस की अपेक्षा अधिक प्रमाणित और स्पष्ट विवरण दिया है :

'ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः,
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ. 8
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्च संस्थेषु पंचसु,
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्यता[illegible]बना सह. 9
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्व[illegible]बिद्व नमस्कृतम्,
कौसल्याऽजनयद्रामं सर्व लक्षण संयुतम्. 10
विष्णोरर्ध महभागं पुत्रमैक्ष्वाकवर्धनम्,
कौसल्या शुशुभे तेन पुत्रेणामित तेजसा. 11
यथा वरेण देवानामदितिर्वज्रपाणिना,

भरतो नाम कैकेऽयां जज्ञे सत्य पराक्रमः. 12
साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः,
पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः. 13
सार्पे जातौ च सौमित्री कुलीरे ऽभ्युदिते रवौ,
राज्ञः पुत्रा महात्मानश्चत्वारो जज्ञिरे पृथक. 14.
(वाल्मीकि रामायण, बाल कांड, सर्ग 18)

यज्ञ को समाप्त हुए छः ऋतुएं बीत गईं. बारहवें महीने अर्थात चैत्र में नवमी तिथि थी. अदिति देवता वाले अर्थात पुनर्वसु नक्षत्र में सूर्य, मंगल, शनि, गुरु और शुक्र उच्चावस्था को प्राप्त थे. अर्थात क्रमशः मेष, मकर, तुला, कर्क और मीन राशियों में आ गए थे. चंद्रमा बृहस्पति के साथ हो गए तथा कर्क लग्न का उदय हुआ. उस समय सारे संसार के लिए वंदनीय जगन्नाथ राम को कौशल्या ने जन्म दिया. वह दिव्य लक्षण युक्त थे. कैकेयी से सच्चे पराक्रम वाले भरत उत्पन्न हुए जो विष्णु के चौथे भाग थे और सब लक्षणों से युक्त थे. सुमित्रा ने सभी लक्षणों से युक्त लक्ष्मणशत्रुघ्न नामक दो वीरों को जन्म दिया. वे विष्णु के आधे भाग थे. प्रसन्न बुद्धि वाले भरत पुष्य नक्षत्र और मीन लग्न में उत्पन्न हुए. सुमित्रा के पुत्र अश्लेषा नक्षत्र और कर्क लग्न में सूर्योदय के समय उत्पन्न हुए. इस प्रकार चारों महात्मा पुत्र अलगअलग जन्मे.

वाल्मीकि के उक्त वर्णन से हम दशरथ के चारों पुत्रों का जन्मकाल सहज ही जान सकते हैं. राम का जन्म पुनर्वसु नक्षत्र में, भरत का पुष्य में और लक्ष्मणशत्रुघ्न का अश्लेषा नक्षत्र में हुआ. एक नक्षत्र आठ प्रहर अर्थात 24 घंटे रहता है. नक्षत्र 27 हैं और इस क्रम से आते हैं : अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती.

पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा नक्षत्रों में जन्म लेने के कारण हम कह सकते हैं कि राम से भरत एक दिन छोटे थे और लक्ष्मणशत्रुघ्न दो दिन छोटे थे, क्योंकि उक्त नक्षत्र क्रम से आते हैं.

चारों राजकुमारों की लग्न का भी विचार कर लेना चाहिए. राम कर्क लग्न में, भरत मीन लग्न में तथा लक्ष्मणशत्रुघ्न कर्क लग्न में पैदा हुए थे. बारह राशियों के नाम पर मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ, मीन क्रमशः बारा न आते हैं. एक लग्न पांच घड़ी अर्थात दो घंटा रहते हैं. रातदिन में सब लग्न ात जाते हैं. इस से राम तथा लक्ष्मणशत्रुघ्न के समान लग्न में जन्म लेने से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए.

एक दो दिन का अंतर कोई अंतर नहीं होता. इस से शरीर में कोई भिन्नता नहीं आ सकती. तुलसी ने अनेक स्थान पर इसे स्वीकार किया है. सभी भाइयों के संस्कार, शिक्षा, खेलकूद आदि साथ ही हुए थे.

'कछुक दिवस बीते एहि भांती, जात न जानिअ दिन अरु राती.
नामकरन कर अवसरु जानी, भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी.
सो सुख धाम राम अस नामा, अखिल लोक दायक बिश्रामा.
बिस्व भरन पोषन कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई.
जाके सुमिरन तें रिपु नासा, नाम सत्रुहन बेद प्रकासा.
लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार,
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार. (राम. बाल. पृ. 197)
'कछुक काल बीतें सब भाई, बड़े भए परिजन सुखदाई.
चूड़ाकरन कीन्ह गुर आई, बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई.
परम मनोहर चरित अपारा, करत फिरत चारिउ सुकुमारा.'
(राम. बाल. पृ. 201-2)

यहां तक तो तुलसीबाबा ने चारों राजकुमारों को साथसाथ रखा है. आगे चल कर वह इसे भूल गए हैं और यह मान कर चले हैं कि लक्ष्मण राम से बहुत छोटे थे तथा भरत शत्रुघ्न तो एकदम बच्चे थे. 'रामचरित मानस' में स्थान-स्थान पर तुलसी की इस भ्रांतमनोवृत्ति के दर्शन किए जा सकते हैं.

राम परशुराम से लक्ष्मण के विषय में कह रहे हैं :
नाथ करहु बालक पर छोहू, सूध दूधमुख करिअ न कोहू.
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना, तौ कि बराबरि करत अयाना.
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं, गुर पितु मातु मोद मन भरहीं.'
(राम. बाल. पृ. 260)

क्या कोई व्यक्ति अपने से दो दिन छोटे व्यक्ति को दूधमुंहा, अज्ञान, चंचल लड़का कह सकता है? इस कथन से लगता है कि राम प्रौढ़ अवस्था के थे और लक्ष्मण उन के सामने निरे बच्चे.

तुलसी की दृष्टि में राम लक्ष्मण की अवस्था का अंतर जनकपुरी के स्त्री-पुरुष भी देख रहे थे :
'थर थर कांपहिं पुर नर नारी, छोट कुमार खोट बड़ भारी.'
(राम. बाल. पृ. 262)

क्या दो दिन के छोटे बड़े बच्चों को लोग दूर से देख कर पहचान लेंगे?
राम ने लक्ष्मण को इस प्रसंग में कई बार बालक कहा है :
'अति बिनीत मृदु सीतल बानी, बोले रामु जोरि जुग पानी.
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना, बालक बचनु करिअ नहिं काना.
बररै बालकु एकु सुभाऊ, इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ. (रा. बा. पृ. 262)
परशुरामजी ने भी लक्ष्मण को छोटा कहा है. उन्हें भी दोनों में छोटाबड़ा स्पष्ट जान पड़ रहा था :
'बेगि करहु किन आंखिन्ह ओटा, देखत छोट खोट नृप ढोटा.'
(राम. बाल. पृ. 263)

परशुरामजी को बताया तो गया नहीं था कि राम बड़े हैं और लक्ष्मण छोटे हैं. यदि तुलसी दोनों की अवस्था में पर्याप्त अंतर मान कर नहीं चलते तो परशुराम उन में छोटाबड़ा कैसे निश्चित कर पाते. परशुराम से दोनों भाइयों का साक्षात्कार इस प्रकार कराया गया था :

'बिस्वामित्रु मिले पुनि आई, पद सरोज मेले दोऊ भाई.
राम लखनु दसरथ के ढोटा, दीन्ह असीस जानि भल जोटा.'

(राम. बाल. पृ. 255)

परशुराम को दोनों में कालेगोरे का अंतर करना चाहिए था. राम का मन परशुराम के सामने लक्ष्मण को बालक, लड़का आदि शब्द कहते अघाया नहीं है :

'प्रभुहि सेवकहि समरु कस, तजहु बिप्रबर रोसु,
बेषु बिलोकें कहेसि कछु, बालकहूं नहीं दोसु.
देखि कुठार बान धनु धारी, भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी.'

(राम. बाल. पृ. 264)

अपने से दो दिन छोटे लक्ष्मण के विषय में राम कह रहे हैं, 'उस ने वेष देख कर कुछ कह दिया होगा. इस में बच्चे का दोष नहीं है. लड़के ने आप को वीर सोच कर रिस की थी.' क्या बात है तुलसी के राम की! इस प्रकार की बात तो अपने से बीस वर्ष से कम छोटे व्यक्ति के लिए भी प्रायः नहीं कही जाती.

जब रामलक्ष्मण इस प्रकार नृपसमूह का मानमर्दन करने योग्य थे, उस समय भरतशत्रुघ्न खेलते फिरते थे. राम के विवाह का पत्र ले कर जब दूत अयोध्या पहुंचा तो भरतशत्रुघ्न भी भाइयों का समाचार जानने आए.

'खेलत रहे तहां सुधि पाई, आए भरतु सहित हित भाई.
पूछत अति सनेहं सकुचाई, तात कहां ते पाती आई.
कुसल प्रान प्रिय बंधु दोउ, अहहिं कहहु केहिं देस.
सुनि सनेह साने बचन, बाची बहुरि नरेस.
सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता, अधिक सनेहु समात न गाता.'

(राम. बाल. पृ. 271)

भरत गलियों की धूल में बच्चों में खेल रहे होंगे. साथ में रहे होंगे शत्रुघ्न. भाई का पत्र आने का समाचार सुन कर दोनों दौड़ आए. पता नहीं, बेचारे धोतीलंगोटी कुछ पहनते थे या तुलसीबाबा की दृष्टि में नंगे ही घूमते थे.

इसी प्रसंग में खेलने के साथसाथ दोनों के अबोध होने का दूसरा प्रमाण है दोनों का अपढ़ होना. भरतशत्रुघ्न के प्रश्न करने पर राजा दशरथ ने पत्र पढ़ कर सुना दिया. यदि भरतशत्रुघ्न पढ़ेलिखे होते तो राजा दशरथ पत्र उन के हाथ दे कर कहते, "लो, अपने भाई का पत्र तुम अपने आप पढ़ो."

तुलसीबाबा यह कैसे कहने देते? उन के विचार से भरतशत्रुघ्न अभी पढ़नेलिखने लायक उम्र के हुए ही नहीं थे.

कोई तुलसीभक्त प्रश्न कर सकता है कि रामलक्ष्मण भी बिना पढ़े हो

सकते हैं. फिर भरतशत्रुघ्न के अपढ़ होने में क्या आपत्ति है? पर बात ऐसी नहीं है. तुलसी के शब्दों में राम पढ़ने के लिए गुरु के पास गए थे.

'गुर गृहं गए पढ़न रघुराई, अलप काल बिद्या सब आई.'

(राम. बाल. पृ. 202)

तुलसी के हृदय में रहने वाले राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की अवस्था के इस विशाल अंतर को मैं नहीं समझ रहा होऊं, यह बात नहीं है. रामचरितमानस पढ़ने वाले सभी लोगों के मन में इसी प्रकार का चित्र बनता है. उन की कल्पना में राम की अपेक्षा लक्ष्मण अनेक वर्ष छोटे और भरतशत्रुघ्न तो एकदम अबोध रूप में उभरते हैं.

रामलीलाओं में जो बच्चे राम, भरत, शत्रुघ्न बनते हैं, उन की अवस्था का अंतर देख कर हम इस मनोवृत्ति को समझ सकते हैं. क्या किसी ने ऐसी रामलीला देखी है जिस में चारों भाई समान अवस्था के बालक बनते हों? वैसा करने पर लोग रामलक्ष्मण को पहचान भी नहीं सकेंगे, क्योंकि रामलक्ष्मण में कालेगोरे का अंतर नहीं रहता.

रामलीला के पात्रों में ही नहीं, यह बात रामलक्ष्मण भरतशत्रुघ्न के सभी चित्रों में भी स्पष्ट देखी जा सकती है. क्या कभी किसी ने ऐसा चित्र देखा है जिस में चारों भाई परस्पर एकदो दिन छोटे चित्रित हों?

हम ने यह बाल की खाल इसलिए निकाली है कि अब तक सभी रामभक्त राम और लक्ष्मण की मूर्ति की गलत कल्पना करते आए हैं.

हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि तुलसी अपने महाकाव्य के नायकों—रामलक्ष्मण के रूप की सही कल्पना नहीं कर सके. तुलसी के लिए तो भक्त लोग कहते हैं कि उन्होंने चित्रकूट में रामलक्ष्मण के दर्शन किए थे. क्या उस समय भी रामलक्ष्मण की अवस्था में भारी अंतर था? गीता प्रेस से प्रकाशित 'रामचरित मानस' में तुलसी के राम दर्शन का उल्लेख इस प्रकार है :

"संवत् 1607 की मौनी अमावस्या बुधवार के दिन उन के सामने भगवान श्री राम पुनः प्रकट हुए. उन्होंने बालरूप में तुलसीदास जी से कहा, "बाबा हमें चंदन दो." हनुमानजी ने सोचा—यह इस बार भी धोखा न खा जाएं, इसलिए उन्होंने तोते का रूप धारण कर के यह दोहा कहा :

'चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर,
तुलसिदास चंदन घिसें, तिलक देत रघुबीर.'

(पृ. 18)

इस भूमिका के अनुसार एक बार पहले भी तुलसी रामलक्ष्मण का दर्शन पा चुके थे, पर उन्हें पहचानने में भूल कर गए. वह प्रशंसा भी भूमिका लेखक के ही शब्दों में इस प्रकार है :

हनुमानजी ने कहा—"तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथ के दर्शन होंगे." इस पर तुलसीदासजी चित्रकूट की ओर चल पड़े.

चित्रकूट पहुंच कर रामघाट पर उन्होंने अपना आसन जमाया. एक दिन वह

प्रदक्षिणा करने निकले. मार्ग में उन्हें श्री राम के दर्शन हुए. उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुंदर राजकुमार घोड़ों पर सवार हो कर धनुषबाण लिए जा रहे हैं. तुलसीदासजी उन्हें देख कर मुग्ध हो गए. परंतु पहचान न सके. (पृ. 18)

क्या किसी की समझ में आ सकता है कि तुलसी जैसा रामभक्त अपने इष्टदेव को पहचानने में भूल करे. वह भी तब, जब उन्हें इस की पहले ही सूचना मिल चुकी थी. हमें इस प्रकार की कथाओं पर विश्वास नहीं है. यदि तुलसी रामलक्ष्मण के दर्शन कर के भी उन्हें पहचान नहीं पाए, तो इस का कारण उन के स्वरूप के संबंध में गलत कल्पना ही रही होगी.

तुलसी ने रामलक्ष्मण के आकार एवं अवस्था के बारे में गलत कल्पना कर के स्वयं तो धोखा खाया ही था, अनेक रामभक्तों और रामचरितमानस भक्तों को भी धोखे में डाल गए.

अगर आप लोगों को बुरा न लगे तो अपने मस्तिष्क से यह विचार और हृदय से यह कल्पना निकाल दीजिए कि राम वनवास के समय लंबेचौड़े थे, लक्ष्मण उन से बहुत छोटे बच्चे थे और भरतशत्रुघ्न तो एकदम खेलने वाले शिशु थे.

इस के स्थान पर यह निश्चय कीजिए कि चारों भाई लगभग समान अवस्था के थे. उन्हें देख कर छोटाबड़ा पहचानना संभव नहीं था. हम ने राम वनवास तक के रूप की बात इसलिए कही है कि न इस से आगे राम की अवस्था रामलीला वाले दिखाते हैं, न चित्र और न मूर्तियां. फिर जनसाधारण इस संबंध में कैसे कल्पना कर सकता है? वैसे राम वृद्ध भी हुए होंगे. उन के बाल भी पके होंगे और मुंह पर झुर्रियां भी पड़ी होंगी.

●●●

हिंदू समाज के पथभ्रष्टक तुलसीदास

संत कवियों की प्रशंसा की परंपरा चली तो आलोचकों ने तुलसी को हिंदी साहित्य का सूर्य और हिंदू समाज को स्थायी संबल देने वाला घोषित कर दिया. प्रशंसा की इस चकाचौंध में किसी ने यह सोचने की चेष्टा नहीं की कि तुलसी वास्तव में क्या थे ? वह हिंदू समाज के पथ-प्रदर्शक थे या पथभ्रष्टक ?

आश्चर्य की बात है कि विदेशियों की सलीमशाही जूतियों के नीचे कीड़ेमकोड़ों की तरह रौंदे जाने वाले हिंदुओं को पुरुषार्थ छोड़ कर राम भरोसे पड़े रहने और हिंदू समाज को अत्याचारी मान्यताओं का समर्थन करने का उपदेश देने वाले तुलसी को जनकवि कैसे कह दिया ?

हिंदू समाज को पथभ्रष्ट करने वाले इस संत कवि के साहित्यिक आडंबरों की पोल खोल कर उस की वास्तविकता पाठकों के सामने रखना ही इस पुस्तक का उद्देश्य है. आशा है इस से पाठकों को तुलसी साहित्य के बारे में एक नई दृष्टि से सोचने की प्रेरणा मिलेगी.

विश्वविजय प्रकाशन

8.00